राजवंश के साहित्यकार

राजवंश के साहित्यकार

जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय'

प्रभाश्री विश्वभारती प्रकाशन
इलाहाबाद (उ.प्र.)

ISBN : 978-93-83519-53-8

प्रकाशक
प्रभाश्री विश्वभारती प्रकाशन
52/डी.-16 वैष्णवी कॉलोनी
11 मोतीलाल नेहरू रोड
इलाहाबाद-211 002
मो. 09473614545, 08765802304
e-mail : prabhashrivishwbhartiprakashan@gmail.com
prabhashrivishwbhartiprakashan@yahoo.com
www.facebook.com/prabhashrivishwabhartiprakashan

●

प्रथम संस्करण : 2017

●

मूल्य :
पाँच सौ रुपये मात्र

© जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय'

●

मुद्रक :
एकेडमी प्रेस
602, दारागंज
इलाहाबाद-211 006

RAJVANSH KE SAHITYAKAR
by Jitendrakumar Singh 'Sanjay'
Price : ₹ 500.00

समर्पण

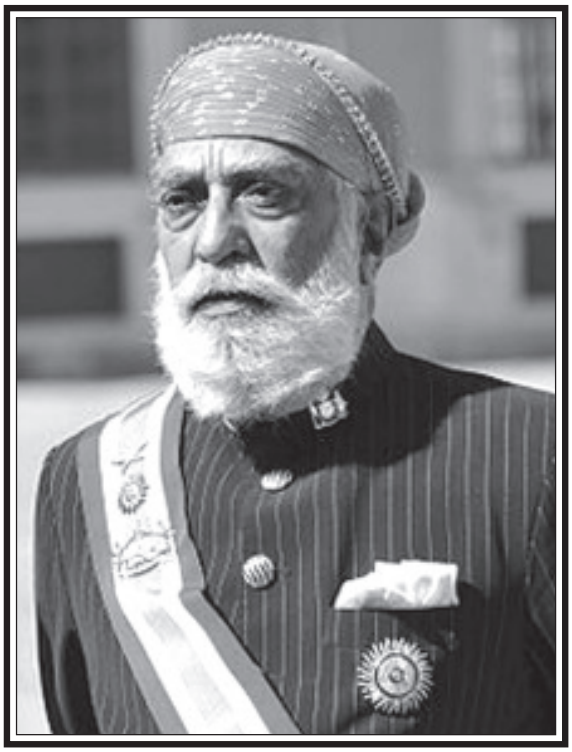

स्वातन्त्र्यचेता महाराणा प्रताप की कीर्ति-वैजयन्ती के संवाहक,
साहित्य-संस्कृति-कला के उन्नायक, सूर्यवंशी न्यास के रश्मिरथ
के संचालक, मेवाड़ राजवंश के संरक्षक, विद्याव्रती नरेन्द्र

श्रद्धेय श्रीजी अरविन्द सिंह मेवाड़

के

करारविन्द में सादर समर्पित।

– 'संजय'

अनुक्रमणिका

प्राग्वाचिक 9
छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' 37
राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' 49
महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' 59
राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' 79
महाराजाधिराज जय सिंह जू देव 88
राजा शिव सिंह एवं राजा कृष्णदत्त सिंह 108
राजा जसवन्त सिंह 115
महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह 120
महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव 134
राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' 150
राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय 'प्रताप' 161
महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा 166
महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' 183
राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' 205
रायबहादुर राजा रणधीर सिंह 214
महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव 225
महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह 250
राजा चक्रधर सिंह 260

❑❑

प्राग्वाचिक

ख्याता नराधिपतयः कवि संश्रयेण,
राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिम्।
राजा समोऽस्ति न कवेः परमोपकारी,
राज्ञो न चास्ति कविना सदृशः सहायः।।[1]

काव्यमीमांसाकार आचार्य राजशेखर की उपर्युक्त पंक्तियाँ कवि और राजा के परस्पराश्रयी व्यक्तित्व को भलीभाँति रेखांकित करती हैं। वस्तुतः भारतीय नरेशों ने ललित कलाओं के उत्कर्ष और संरक्षण के लिए अभूतपूर्व कार्य किया है। भारत की जिस गौरवशाली विरासत पर आज हमें गर्व है, वह तत्त्वतः राजाश्रय में पली बढ़ी है। भारतीय प्रजा ने राजा के व्यक्तित्व में सदैव भगवान् विष्णु के दर्शन किये हैं। भगवान् विष्णु की प्रभविष्णुता और लोकमंगल की अवधारणा ही भारतीय नरेशों के उदात्त चरित को गढ़ती है। इसके पीछे गौरवशाली अतीत है। वैदिककाल के ऋषियों द्वारा गढ़ा गया संविधान ही भारतीय नरेशों को लोकमंगल के पथ पर अग्रसर करता है। वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैदिकयुग के राजनीतिक जीवन में राजा और राजतन्त्र का महत्त्वपर्ण स्थान था। तत्कालीन भारतीय समाज में विद्यमान राज्यों का नियन्त्रण राजाओं के द्वारा होता था। उस युग में राजा के जो आदर्श, कर्तव्य, उत्तरदायित्व आदि थे, उनका परोक्ष रूप से उल्लेख वैदिक वाङ्मय में किया गया है। वैदिककालीन राजा के कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों को साधारणतया दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– 1. राज्य की आन्तरिक व्यवस्था, प्रजाहित–पालन आदि से सम्बन्धी कर्तव्य एवं 2. राज्य की वैदेशिक नीति से सम्बन्धित कर्तव्य। इन दोनों प्रकार के

1. आचार्य राजशेखर : काव्यमीमांसा, पृ. 67

कर्तव्यों की सुन्दर विवेचना ऋग्वेद के वरुण और इन्द्र से सम्बन्धित सूक्तों में की गयी है। वरुण देवता की कल्पना के समय वैदिक ऋषियों के मन में तत्कालीन नरेश की आदर्श गृहनीति का चित्र था और इन्द्र की कल्पना के समय उसकी विदेशनीति का चित्र।

ऋग्वेद में वरुण को नैतिकता का देवता माना गया है। वरुण का रथ सूर्य के समान प्रभास्वर है। वे अपने प्रासाद में बैठकर मनुष्यों के कर्मों का निरीक्षण करते हैं। उनके गुप्तचर समस्त लोकों का अवलोकन करते हैं। सूर्य उनके स्वर्ण-पक्षवाले दूत हैं। वे राजा हैं, विश्व के सम्राट् हैं। उनकी शक्ति, माया एवं उनके दिव्य साम्राज्य का उल्लेख वैदिक वाङ्मय ने अनेकशः हुआ है। वे भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था के संचालक हैं। उनके नैतिक नियम ऋत कहे गये हैं। ऋत का पालन देवताओं को भी करना पड़ता है। वरुण के उत्तम, मध्यम एवं अवर नामक पाशत्रयी को ऋत द्वारा ही तोड़ा जा सकता है। उनकी शक्ति इतनी बड़ी है कि उनके साम्राज्य के छोर तक न तो आकाश में उड़नेवाले पक्षी पहुँच सकते हैं और न भूमि पर प्रवाहित होनेवाली नदियाँ।

इन्द्र के विषय में ऋग्वेद में वर्णित है कि त्वष्टा द्वारा निर्मित वज्र को धारण कर एवं कभी कभी धनुष-बाण लेकर वे असुरों का मर्दन करते हैं। सोम का रसपान करते हुए मरुतों को साथ लेकर वे वृत्र या अहि पर आक्रमण करते हैं। जब घनघोर युद्ध होता है, तब पृथ्वी और आकाश प्रकम्पित होने लगते हैं। परिणामस्वरूप वज्र द्वारा वृत्र के टुकड़े टुकड़े होते हैं तथा रुका हुआ पानी स्वतन्त्र की गयी गायों के समान दौड़ पड़ता है। इस युद्ध में मरुत सदैव इन्द्र के साथ रहते हैं। अग्नि, सोम और विष्णु उनके सहायक हैं।

इस प्रकार वरुण और इन्द्र के आख्यान वैदिककालीन राजाओं की शासन-व्यवस्था, उनकी युद्ध-नीति आदि पर प्रकाश डालते हैं। जहाँ वरुणाख्यान के अन्तर्गत ऋत में अन्तर्निहित तत्कालीन लोकमंगल की सुदृढ़ और सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली के दर्शन होते हैं, वहीं इन्द्र सम्बन्धी सूक्तों से तत्कालीन राजाओं द्वारा प्रजाहित में दस्युओं से किये गये युद्ध का आभास होता है।

वैदिक वाङ्मय में राजा और उसके कार्यों से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख है। राजदरबार में राजन्य अथवा राजन् रहते थे, जो राजकुल के सदस्य और राजा के प्रबल समर्थक होते थे। राजपुरोहित राजा की धार्मिक

आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। ग्रामों का मुखिया ग्रामणी भी युद्धादि के अवसर पर राजा के लिए साहाय्य हुआ करता था। सूत राजा का रथ संचालित करता था। राजा के सेनापति को सेनानी कहा जाता था।

प्राचीन भारत में वंशक्रमागत और निर्वाचित दोनों ही प्रकार के राजाओं का उल्लेख मिलता है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, पुराण, रामायण, महाभारत प्रभृति में राजाओं से सम्बन्धित अनेक प्राचीन अनुश्रुतियों को न केवल सुरक्षित रखा गया है, अपितु उनकी वंशावलियाँ भी दी गयी हैं, जिनसे पता चलता है कि राजाओं के अधिकार बहुधा वंशक्रमागत ही होते थे, किन्तु वैदिक वाङ्मय में राजाओं के निर्वाचन के भी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।[2] वैदिककाल में प्रजा के प्रतिनिधियों की एक समिति राजा का निर्वाचन करती थी।[3]

वैदिक वाङ्मय एवं प्राचीन साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल से ही समाज में राजा की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। समाज में यह भावना विकसित होने लगी थी कि यदि राजा नहीं होगा, तो समाज अनियन्त्रित एवं असुरक्षित हो जायेगा और मात्स्यन्याय के अनुसार सशक्त अशक्त का विनाश कर डालेगा। इस परिस्थिति के निराकरण हेतु ही राजा की आवश्यकता हुई।[4] महाभारत राजा शब्द के व्युत्पत्त्यर्थ का सम्यक् निरूपण करता है- '**रञ्जिताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्द्यते।**'[5] वस्तुतः प्रजा का रंजन करना, उसे सुख-समृद्धशील बनाकर प्रसन्न करना ही राजा का प्रधान कर्तव्य है।

भारतीय साहित्य में राजा की दैवीय उत्पत्ति के अनेक आख्यान वर्णित हैं। इसके अनुसार राजा परमात्मा का अंश माना गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' में राजा को प्रजापति कहा गया है, क्योंकि उसके अधीन कितने ही व्यक्ति रहते थे।[6] उक्त

---

2. ऋग्वेद 10/173/1; अथर्ववेद 6/87/1; 3/4/2
3. ऋग्वेद 9/92/6; अथर्ववेद 5/19/5; 6/88/3
4. बौद्धायन धर्मसूत्र 9/10/1; वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड 67/31; मनुस्मृति 3/7/13-21
5. महाभारत, शान्तिपर्व 59/125
6. शतपथ ब्राह्मण 5/15/14

ग्रन्थ में चक्रवर्तिन् के चक्र को विष्णु के चक्र से सम्बन्धित माना गया है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में भी राज्याभिषेक के मन्त्रों में अग्नि, गायत्री, स्वस्ति, बृहस्पति प्रभृति देवताओं से राजा के शरीर में प्रवृष्ट होने की प्रार्थना की गयी है।[7] भगवान् वेदव्यास ने महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है कि नारायण ने अपने तेज से एक पुत्र उत्पन्न किया एवं उसे पृथु वैन्य का सातवाँ वंशज राजा बनाया। भगवान् विष्णु ने उसके शरीर में प्रवेश किया। इसलिए समस्त विश्व ने उसे परमात्मा समझकर उसका आधिपत्य स्वीकार किया।[8]

भारतीय मनीषा देव और नरदेव में कोई अन्तर नहीं करती। महाराज मनु ने राजा को नर रूप में देवता ही स्वीकार किया है–

बालोऽपि नावमान्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति।।[9]

राजा को देवता का अंश मानने के पीछे राजा की लोकमंगल–दृष्टि ही है। लोक के लिए समय समय पर राजा के द्वारा लिये गये उत्तम निर्णय ही राजा को देवता की कोटि में प्रतिष्ठित करते हैं। जो राजा प्रजा का उत्पीड़न करता है, उसे महाभारत कुत्ते के समान मार डालने का आदेश देता है।[10]

वैदिकयुग में राजपद के विकास में यज्ञयागादि धार्मिक कृत्यों का भी महनीय स्थान रहा है। राजपद के विकास के प्रत्येक सोपान राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, सर्वमेध आदि यज्ञों की मन्त्र–रश्मियों से आलोकित रहे हैं। भारतीय नरेशों ने इन्हीं यज्ञों के पवित्र धूम से न केवल अपनी गुरुता एवं महार्घता का

---

7. ऐतरेय ब्राह्मण 8/2/6
8. महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय 59
9. मनुस्मृति 7/8
10. अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायम्।
    तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम्।।
    अहं वो रक्षितेत्युक्त्वा यो न रक्षति भूमिपः।
    स संहत्य निहन्तव्यः श्वेव सोन्माद आतुरः।।
    –महाभारत, अनुशासनपर्व 61/32–33

प्रतिपादन किया था, अपितु पर्यावरण की संरक्षा में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। वस्तुतः इन्हीं पुनीत यज्ञों ने राजाओं को 'मूर्धाभिषिक्त' और 'चक्रवर्ती' की पदवी से अलंकृत किया था। '**राज्ञ एव राजसूयम्। राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति...**'[11] आदि मन्त्रों में कहा गया है कि राजसूय यज्ञ राजा का ही है। राजसूय यज्ञ करनेवाला ही यथार्थ में राजा बनता है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में ऐन्द्रमहाभिषेक-प्रकरण में बताया गया है कि क्षत्रिय राजा अभिषिक्त होने पर तथा अपने पुरोहित को समुचित आदर प्रदान कर सुकृत, आयु, प्रजा, इष्टापूर्ति आदि को सफलतापूर्वक प्राप्त होता है- **एतेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वाभिर्षिचेद्यां च रात्रीमजायेथा यां च प्रेतासि तदुभयमन्तरेणेष्टापूर्तं ते लोकं सुकृतमायुः प्रजां वृंजीयदिमे द्रुह्योरिति स य इच्छेदेवंवित्क्षत्रियोहं सर्वाजितीर्जयेयमहं सर्वाल्लोकान्विंदेयमहं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यमतिष्ठां परमतां गच्छेर्य साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यं ..... यदि ते द्रुह्योयमिति।**[12]

भारतीय परम्परा में जिस राजा की परिकल्पना की गयी है, वह वंशक्रमागत होते हुए भी निरंकुश नहीं है। भारतीय मनीषा राज्याभिषेक करते समय राजा को सम्बोधित करते हुए कहती है- 'तुम्हें जनता राजपद के लिए चुने। ये दिशाएँ तुम्हें चुनें। तुम राष्ट्र के कन्धे पर बैठो व उस स्थान से भौतिक समृद्धि का विकास करो।'[13] वस्तुतः इन सन्दर्भों से राजा की जिस सत्ता का बोध होता है, उसका विश्लेषण पाश्चात्य विचारों की ऊष्मा से सम्भव नहीं है। भारतभूमि पर शासन करनेवाला राजा भले ही वंशक्रमागत होता रहा है, किन्तु राज्याभिषेक के समय प्रजा-रंजन के जिस संकल्प को वह बार बार दुहराता है, उससे उसकी लोकतान्त्रिक निष्ठा प्रमाणित होती है। राजा प्रजा की भौतिक समृद्धि की ओर विशेष ध्यान देता था। यदि राजा अपने कर्तव्यों के निर्वहन में असफल होता था, तो उसे पदच्युत भी किया जा सकता था और क्षमा-याचना करने पर पुनः पदारूढ़ भी।[14] राजतन्त्र में भी लोकतन्त्र जैसी यह शुचिता केवल भारतीय नरेशों

---

11. शतपथ ब्राह्मण 5/1/1/12
12. ऐतरेय ब्राह्मण 8/15
13. अथर्ववेद 3/4/2
14. अथर्ववेद 3/4/6-7

के शासनकाल में ही सम्भव है। भारतीय नरेशों ने राजतन्त्र के सत्तासूत्र को लोकमंगल की धुरी से अनुस्यूत करने का कार्य किया है। वस्तुतः धर्ममूर्ति और गो-द्विज-संरक्षण-परायण जैसे विरुद भारतीय नरेशों के उदात्त चरित को रेखांकित करते हैं। भारतीय नरेशों की यह उज्ज्वल परम्परा लोकतन्त्र की ड्योढ़ी (Porch) तक आती है।

भारतीय नरेशों का एक मात्र उद्देश्य प्रजा का पुत्रवत पालन करना रहा है। भारत के राजा प्रजा से प्राप्त होनेवाले कर का सहस्र गुणा वापस करने के लिए सुविख्यात रहे हैं। महाकवि कालिदास ने भारतीय नरेशों की इसी प्रवृत्ति को रघुवंश के ब्याज से रेखांकित किया है-

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्त्रगुणं उत्स्त्रष्टुं आदत्ते हि रसं रविः।।[15]

लोकमंगल की ऐसी उदात्त भावना से आपादमस्तक आपूरित भारतीय नरेशों ने कविता के संरक्षण का महनीय कार्य किया है। राजकीय संरक्षण में भारतीय कवियों ने जिस वाङ्मय का सृजन किया है, वह चतुःसमुद्र से भी अधिक गहरा और हिमालय से भी अधिक ऊँचा है। भारतीय नरेशों का कवि-संरक्षक रूप तो जगत्प्रसिद्ध है ही, उनका कवि-रूप भी अत्यन्त मोहक और प्रौढ़ है। कवि-रूप में भी भारतीय नरेशों की एक गौरवशाली परम्परा है। सातवाहन नरेश हाल (504-499 ई. पू.), सम्राट् समुद्रगुप्त (320-269 ई. पू.), उज्जयिनी-नरेश राजर्षि भर्तृहरि (57 ई. पू.), कन्नौज-नरेश सम्राट् हर्षवर्धन (590-647 ई.), पल्लवराज महेन्द्रविक्रम वर्मन (600-630 ई.), केरल-नरेश कुलशेखर आळवार (800 ई.), धाराधराधिपति भोजदेव (1018-1060 ई.), कान्यकुब्जेश्वर महाराज मदनपाल (1100-1110 ई.), बान्धव-नरेश महाराज कर्णदेव (1186-1203 ई.), मेवाड़-नरेश महाराणा कुम्भा (1433-1468 ई.), बान्धवेश महाराज वीरभद्र देव (1554-1599 ई.) जैसे धर्मधुरीण शासकों से भारत की साहित्यिक चेतना आप्लावित रही है। महाराज हाल सातवाहन साहित्यिक अभिरुचि के कारण साहित्य-जगत् में कवि सम्राट् के रूप में प्रख्यात हैं। उनके नाम का उल्लेख पुराण वाङ्मय के साथ साथ 'लीलावती',

---

15. महाकवि कालिदास : रघुवंश 1/18

'सप्तशती', 'अभिधानचिन्तामणि' प्रभृति ग्रन्थों में हुआ है। कवि सम्राट् हाल सातवाहन ने प्राकृत भाषा में 'गाहा सतसई' ('गाथा सप्तशती') नामक सुविख्यात शृंगार-ग्रन्थ का संकलन एवं सम्पादन किया है।

सम्राट् समुद्रगुप्त कलात्मक अभिरुचिवाले शासक थे। अभिलेखों एवं सिक्कों से उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों की जानकारी मिलती है। उनके दरबार में बहुत से कवि थे। 'प्रयाग-प्रशस्ति' के प्रणेता हरिषेण कालिदास ने सम्राट् समुद्रगुप्त को 'कविराज' विरुद से अलंकृत किया है। प्राचीनकाल में कविराज की उपाधि अनेक भाषाओं में समान रूप से काव्य-रचना करनेवाले व्यक्ति को ही प्रदान की जाती थी। आचार्य राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में इस सन्दर्भ में लिखा है। 'कृष्णचरितम्' नामक काव्य का रचयिता सम्राट् समुद्रगुप्त को माना गया है। इस ग्रन्थ के आन्तरिक साक्ष्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है। सम्राट् समुद्रगुप्त महान् संगीतज्ञ भी थे। उनकी तुलना बृहस्पति, तुम्बरु, नारद जैसे संगीतकारों से की गयी है। स्पष्ट है कि वे वीणावादन में प्रवीण थे। सम्राट् समुद्रगुप्त के वीणावादक सिक्कों से भी उनका संगीत-प्रेम झलकता है। महाकवि हरिषेण कहते हैं कि उन्होंने अपनी गान्धर्व कला से तुम्बरु तथा नारद को भी लज्जित कर दिया। वे काव्य एवं शास्त्रों के अध्ययन में भी रुचि रखते थे। उसकी तीव्र बुद्धि कठिन शास्त्रों को भी समझ लेती थी। महाकवि हरिषेण ने उन्हें 'शास्त्रतत्त्वार्थभर्तु' कहा है। कला के प्रति भी सम्राट् समुद्रगुप्त की अभिरुचि थी। उनके समय में जो शुद्ध सोने के सिक्के प्रचलित किये गये हैं, उनका कलात्मक स्वरूप भी उत्कृष्ट है। पूर्व प्रचलित मिश्रित स्वर्ण मुद्रा का उन्होंने त्याग कर दिया। स्वर्ण मुद्राओं के प्रचलन से गुप्त साम्राज्य की भौतिक उन्नति का बोध होता है। वे धार्मिक-प्रवृत्तिवाले सहिष्णु व्यक्ति थे। उनके दानपत्रों एवं अभिलेखों से लगता है कि उनका झुकाव ब्राह्मण धर्म की तरफ था, लेकिन उनके मन में अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता थी। सम्राट् समुद्रगुप्त कृत 'कृष्णचरितम्' के उपलब्ध अंशों को गोंडल (काठियावाड़) के राजवैद्य जीवाराम कालिदास ने अपने महत्त्वपूर्ण विवरणों के साथ 1941 ई. में प्रकाशित किया था। कालान्तर में जिसे महामहोपाध्याय पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने 'संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास' के सातवें परिशिष्ट में प्रकाशित किया। 'कृष्णचरितम्' की पुष्पिका 'इति श्रीविक्रमांकमहाराजाधिराजपरमभागवत श्रीसमुद्रगुप्तकृतौ कृष्णचरिते कथा-प्रस्तावनायां मुनिकविकीर्तनम्' से सम्राट् समुद्रगुप्त के कवि-रूप का बोध होता

है। महाकवि हरिषेण कालिदास की प्रशंसा करते हुए सम्राट् समुद्रगुप्त लिखते हैं–

तुङ्गं ह्यमात्यपदमाप्तयशः प्रसिद्धं,
भुक्त्वा चिरं पितुरिहास्ति सुहृन्ममायम्।
सन्धौ च विग्रहकृतौ च महाधिकारी,
विज्ञः कुमारसचिवो नृपनीतिदक्षः।।
काव्येन सोऽघ रघुकार इति प्रसिद्धो,
यः कालिदास इति महार्हनामा।
प्रामाण्यमाप्तवचनस्य च तस्य धर्म्ये,
ब्रह्मत्वमध्वरविधौ मम सर्वदैव।।

चत्वार्यन्यानि काव्यानि व्यदधाच्चलधूनि यः।
प्राभावच्च मां कर्त्तुं कृष्णचरितं शुभम्।।

हरिषेणकविर्वाग्मी शास्त्रशस्त्रविचक्षणः।
यशोलभतकाव्यैः स्वैर्नाना चरितशोभनैः।।

येषां न केवलं काव्यं श्रेष्ठं धर्मार्थ कामदम्।
राजता वा राजनीतिरूपकर्त्री मनःस्थिता।।[16]

उज्जयिनी–नरेश योगिराज भर्तृहरि की साहित्य–साधना जगत्प्रसिद्ध है। ऐसा कौन साहित्य–रसिक होगा, जो राजर्षि भर्तृहरि कृत 'शतकत्रयी' की कीर्ति–कौमुदी से अपरिचित हो। महाकवि बाणभट्ट को संरक्षण प्रदान करनेवाले सकलोत्तरापथनाथ सम्राट् हर्षवर्धन का साहित्यानुराग अत्यन्त प्रसिद्ध है। 'नागानन्द', 'रत्नावली', 'प्रियदर्शिका', 'अष्टम्बा श्री चैत्य संस्कृत स्तोत्र', 'सुप्रभातस्तोत्र', 'बोधिसत्व–जीमूतवाहन–कथा' प्रभृति ग्रन्थों के प्रणेता के रूप में सम्राट् श्रीहर्षवर्धन प्रथितयशस्क तो हैं ही, साथ ही साथ बाँसखेड़ा एवं मधुवनपट्ट के उत्कीर्ण अभिलेख भी सम्राट् हर्षवर्धन के द्वारा ही रचे गये हैं। अभिलेख के अन्त में **'स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्रीहर्षस्य'** के द्वारा सम्राट् हर्षवर्धन इन अभिलेखों के स्वप्रणीत होने की घोषणा करते हैं। सम्राट् हर्षवर्धन की काव्य–शैली की

---

16. सम्राट् चन्द्रगुप्त : कृष्णचरितम् 2/15 : पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक : संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, परिशिष्ट 7, पृ. 98

प्रशंसा करते हुए ग्यारहवीं शताब्दी के कवि सोढ्ढल ने 'उदयसुन्दरीकथा' में लिखा है–

श्रीहर्ष इत्यवनिर्तिषु पार्थिवेषु,
नाम्नैव केवलमजायत वस्तु तस्तु।
श्रीहर्ष येष निज संसदि येन राज्ञा,
सम्पूजितः कनक कोटि शतेन बाणः।।[17]

पल्लवराज महेन्द्रविक्रम वर्मन ने 'मत्तविलास' और 'भगवदज्जुकीयम्' नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। कन्नौज के गहरवार वंशीय शासक महाराजाधिराज मदनपाल ने 'मदनविनोद निघण्टु' नामक वैद्यक ग्रन्थ का सृजन किया है। ग्रन्थारम्भ में महाराज मदनपाल ने स्वयं लिखा है–

तेन श्रीमदनेन्द्रेण निघण्टु मयमद्भुतम्।
कृत सुकृतिना लोकहिताय हि महात्मना।।
रोगाम्बुधौ मव जनस्य निमज्ज तोयः।
प्रीतिः प्रयच्छतु शुभानि च काशिराजः।।[18]

परमार–कुलतिलक धाराधरेन्द्र महाराज भोजदेव का रचना–संसार अत्यन्त विस्तृत है। लेखनी और कृपाण की ऐसी समन्वयी साधना अन्यत्र कहाँ मिलेगी! परमार–कुलतिलक महाराज भोजदेव ने कई विषयों के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण किया है। वे श्रेष्ठ कवि, दार्शनिक और ज्योतिषी भी थे। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' (व्याकरण), सरस्वतीकण्ठाभरण' (काव्यशास्त्र), 'शृंगारमंजरी', 'शृंगारप्रकाश' (काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र), 'चम्पूरामायण', 'चारुचर्या', 'व्यवहारसमुच्चय', 'राजमार्तण्ड' (पतंजलि के योगसूत्र की टीका), 'वृहद्राजमार्तण्ड' (धर्मशास्त्र), 'तत्त्वप्रकाश' (शैवागम), 'राजमृगांक' (चिकित्साशास्त्र) आदि ग्रन्थ महाराज भोजदेव की कीर्ति के स्थायी आधार हैं। उनकी राजसभा दिग्विजयी पण्डितों से सुशोभित रहती थी। महाराज भोजदेव की पत्नी राजमहिषी लीलावती स्वयं विदुषी शिरोमणि थीं। महाराज भोजदेव कृत 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

---

17. डॉ. आनन्दस्वरूप मिश्र : कन्नौज का इतिहास, पृ. 284
18. डॉ. आनन्दस्वरूप मिश्र : कन्नौज का इतिहास, पृ. 447

दीर्घापाङ्गं नयनयुगलं भूषयत्यञ्जनश्री-
स्तुङ्गाभोगौ प्रभवति कुचावर्चितुं हारयष्टिः।
मध्ये क्षामे वपुषि लभते स्थानकूर्पासलक्ष्मीः
श्रोणीबिम्बे गुरुणि रशनादाम शोभां बिभर्ति।।[19]

* * * *

गिरः श्रव्या दिव्याः प्रकृतमधुराः प्राकृतधुराः
सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम्।
विदग्धानामिष्टे मगधमथुरावासिभणिति-
र्निबद्धा यस्तेषां स इह कविराजो विजयते।।[20]

वस्तुतः महाराज भोजदेव जैसी प्रतिभाएँ विरल होतीं हैं। इसलिए प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र अपने नाराशंसीकाव्य 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' के 'महात्मस्तुतिः' प्रकरण के अन्तर्गत महाराज भोजदेव की अश्रुतपूर्व प्रतिभा की वन्दना करते हुए लिखते हैं–

जाते कन्दर्पशोभे वरवदनधरे सुन्धुसूनौ नु तस्मिन्
का का नो राजकन्या हृतरतिसुषमा तं वरीतुं चकाङ्क्ष।
लीलावत्याः कथा का स्वयमपि कमलाशारदे देवजाये
धाराधीशं नृदेवं स्वधवमधुधियाऽपश्यतां निर्विशङ्कम्।।

यश्शृङ्गारप्रकाशो बुधसदसि मतस्संयुगे सूत्रधारः
स्थापत्ये शालिहोत्रे स्थपतिबहुमतश्शारदाकण्ठहारः।
निष्णातो यन्त्रसिद्धावभिनयसरणौ सार्वभौमो नटानां
भोजोऽभूत्सर्वविद्याविबुधतरुरिहानेहसि श्लोककल्पः।।[21]

महाराणा कुम्भकर्ण (1433-1495 ई.) उपाख्य महाराणा कुम्भा विद्वानों

---

19. महाराजाधिराज भोजदेव : सरस्वतीकण्ठाभरण 1/160
20. महाराजाधिराज भोजदेव : सरस्वतीकण्ठाभरण 2/16
21. प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र : कस्मै देवाय हविषा विधेम : वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 1997 ई., पृ. 81, श्लोक सं. 6-7

एवं साहित्यकारों के आश्रयदाता ही नहीं, अपितु स्वयं विद्वान् साहित्यकार एवं संगीतज्ञ थे। ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में पारंगत महाराणा कुम्भा को वेद, स्मृति, मीमांसा का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें 'संगीतराज', 'संगीतमीमांसा', 'सूडप्रबन्ध' प्रमुख है। संगीतराज की रचना विक्रमाब्द 1509 में चित्तौड़ में की गयी थी, जिसकी पुष्टि कीर्ति-स्तम्भ प्रशस्ति से होती है। यह ग्रन्थ पाँच उल्लास में विभक्त है। इसमें लगभग 40 पूर्व आचार्यों का वर्णन मिलता है। महाराणा कुम्भा ने जयदेव कृत गीतगोविन्द की 'रसिकप्रिया टीका', 'संगीतरत्नाकार' की टीका एवं महाकवि बाणभट्ट कृत 'चण्डीशतक' की वैदुष्यपूर्ण टीका का सृजन किया है। गीतगोविन्द की टीका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पदों को गाये जानेवाले रागों को प्रथम बार निश्चित किया गया है। महाराणा कुम्भा ने 'कामराज रतिसार' एवं रसिकप्रिया के पूरक ग्रन्थ 'सुधाप्रबन्ध' का भी प्रणयन किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने चार नाटकों का भी सृजन किया है, जिसमें मेवाड़ी, कर्नाटकी और मराठी भाषाओं का भी प्रयोग हुआ है। महाराणा कुम्भा को वाद्ययन्त्रों की भी अच्छी जानकारी थी और उन्हें बजाने में भी वे निपुण थे। महाराणा कुम्भा के साहित्यावदान का सुन्दर वर्णन चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ के प्रणेता प्रशस्तिकार अत्रि ने किया है-

आलोड्याखिलभारतीविलसितं सङ्गीतराजं व्यधात्
औद्धत्यावधिरञ्जसा समतनोत् सूडप्रबन्धाधिपम्।
नानालङ्कृतिसंस्कृता व्यरचयच्चण्डीशतव्याकृतिं
वागीशो जगतीतलं कलयति श्रीकुम्भदम्भात् किल।।

येनाकारि मुरारिसङ्गतिरसप्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविन्दके।
श्रीकर्णाटक-मेदपाट-सुमहाराष्ट्रादिके योदन-
द्वाणीगुम्फमयं चतुष्टयमयं सन्नाटकानां व्यधात्।।[22]

---

22. प्रशस्तिकार अत्रि : चित्तौड़-कीर्तिस्तम्भ-अभिलेख, श्लोक सं. 157-158। ये श्लोक 'एकलिङ्गमाहात्म्य' में भी हैं। सरस्वती भण्डार, उदयपुर, प्रति संख्या 1477, पत्र 362

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में राजवंशीय साहित्यकारों का अद्वितीय योगदान है। राजा दरिया (ओडिशा), राजा चौरंगीनाथ (स्यालकोट), राजा चरपटराव (चर्पटीनाथ, चम्ब), राजा गोविन्द्रचन्द्र (गोपीनाथ, बंगाल) आदि ने अपनी वाणियों से नाथ-सिद्ध-साहित्य को समृद्ध किया है।

राजस्थान के विद्याव्यसनी नरेशों की एक गौरवशाली परम्परा है। गागरोन-नरेश महाराज प्रतापराव खींची 'सन्त पीपाजी' (जन्म : 23 अप्रैल, 1323 ई.) 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' के रचयिता बीकानेर-नरेश महाराज पृथ्वी सिंह राठौर (1549-1600 ई.), 'भाषाभूषण' के प्रणेता जोधपुर-नरेश महाराज जसवन्त सिंह (1626-1678 ई.), महाराज मान सिंह (1783-1843 ई.) उदयपुर-नरेश महाराणा जय सिंह (1681-1700 ई.), आमेर-नरेश महाराज जय सिंह (1688-1743 ई.), कृष्णगढ़-नरेश महाराज सामन्त सिंह 'नागरीदास' (1699-1757 ई.), जयपुर-नरेश महाराज सवाई प्रताप सिंह 'ब्रजनिधि' (1764-1803 ई.), कुशलगढ़-नरेश राजा पृथ्वी सिंह 'पीथल' (1746 ई.), भरतपुर-नरेश महाराज बदन सिंह (1722-1755 ई.), महाराज बलदेव सिंह (1823-1825 ई.), महाराज बलवन्त सिंह (1825-1853 ई.), राव कृष्णदेवशरण सिंह 'गोप', राव अजीत सिंह, राव यदुराज सिंह, मेवाड़-नरेश महाराणा जवान सिंह 'ब्रजराज' (1828-1838 ई.), महाराणा सज्जन सिंह (1874-1884 ई.), झालावाड़-नरेश महाराज राजेन्द्र सिंह (1900-1943 ई.), वर्तमान सिरोही-नरेश महाराव रघुवीर सिंह बहादुर प्रभृति ने अपने उज्ज्वल कृतित्व से हिन्दी-साहित्य के भाण्डागार को समृद्ध किया है। राजस्थान की तरह ही मध्यप्रदेश के शासकों का काव्यानुराग अपने कीर्ति-कलश से हिन्दी-भारती के मन्दिर को अलंकृत करता है। रीवा-नरेश महाराज जय सिंह जू देव (1764-1864 ई.), हिन्दी के प्रथम नाटककार महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव (1789-1854 ई.), महाराज रघुराज सिंह जू देव (1824-1879 ई.), रावेन्द्र लक्ष्मण सिंह (रीवा), रावेन्द्र बलभद्र सिंह (रीवा), ओरछा-नरेश महाराज देवी सिंह (1676 ई.), बुन्देलखण्ड-नरेश राजा दत्त सिंह (1724 ई.), पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल (1648-1731 ई.), राजकुमार पंचम सिंह (पन्ना), नरवरगढ़-नरेश महाराज आसकरण, महाराज राम सिंह (1773-1803 ई.), दतिया-नरेश महाराज पृथ्वी सिंह 'रसनिधि' (1660 ई.), चरखारी-नरेश महाराज विक्रमादित्य (1803-1829 ई.), विजयराघवगढ़-नरेश ठाकुर जगन्मोहन सिंह (1857-1899

ई.), सीतामऊ के महाराजकुमार रतन सिंह 'नटनागर' (1808–1864 ई.), महाराजधिराज सर राम सिंह 'मोहन' (1880–1967 ई.), महाराजकुमार डॉ. रघुवीर सिंह (1908–1991 ई.), नईगढ़ी–नरेश ठाकुर गोपालशरण सिंह (1891–1960 ई.), कुँवर सोमेश्वर सिंह (नईगढ़ी), कुँवर चन्द्रभूषण सिंह 'चन्द्र' (नईगढ़ी), बरदी–नरेश राजा अखण्डप्रतापबहादुर सिंह, रायगढ़–नरेश राजा चक्रधर सिंह (1905–1947 ई.) आदि के द्वारा रचित पुष्कल साहित्य ने वाङ्मयार्णव में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

तत्कालीन संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध सम्प्रति उत्तर प्रदेश के शासकों की साहित्य–साधना भी वरेण्य रही है। महाभारतकार सबलगढ़–नरेश राजा सबल सिंह चौहान (1670 ई.), असोथर–नरेश महाराज भगवन्त सिंह खींची (1700–1736 ई.), अमेठी–नरेश राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' (1709–1741 ई.), राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' (1741–1774 ई.), राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' (1842–1891 ई.), राजकुमार रणवीर सिंह (1899–1921 ई.), राजा रणञ्जय सिंह, माण्डा–नरेश राजा रुद्रप्रताप सिंह (1805–1827 ई.), बलरामपुर–नरेश महाराज दिग्विजय सिंह 'भूपविजय' (1819–1882 ई.), तिरवा–नरेश महाराज जसवन्त सिंह (1800–1815 ई.), काशी–नरेश महाराज चेत सिंह, काशिराज बलवान सिंह, भिनगा–नरेश राजा शिव सिंह (1768–1826 ई.), राजा कृष्णदत्त सिंह (1821–1862 ई.), महाराजकुमार बाबू रणञ्जयप्रतापबहादुर सिंह (1820 ई., देवगढ़), अगोरी–बड़हर–नरेश राजा तेजबली सिंह शाह बहादुर, ओयल–नरेश राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' (1850 ई.), महदौना (अयोध्या)–नरेश महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' (1830–1870 ई.), पडरौना–नरेश राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय (1802–1868 ई.), मझौली–नरेश राजा खड्गबहादुर मल्ल, बस्ती–नरेश राजा शीतलाबख़्श सिंह 'महेश', देवतहा के ताल्लुक़ेदार भैया जगत सिंह बिसेन, कालाकाँकर–नरेश राजा रामपाल सिंह (1848-1909 ई.), राजा रमेश सिंह (1875-1910 ई.), पद्मश्री कुँवर सुरेश सिंह (1910-1987 ई.), राजा दिनेश सिंह (1925-1995 ई.), सिंगरामऊ–नरेश ठाकुर संग्राम सिंह (1778-1838 ई.) रायबहादुर राजा रणधीर सिंह (1820–1895 ई.), राजर्षि कुँवर श्रीपाल सिंह (1910-2008 ई.) आदि की साहित्य–साधना प्रणम्य है। काँथा के इलाक़ेदार ठाकुर शिव सिंह सेंगर (1833–1878 ई.) कृत 'शिवसिंह सरोज' के बिना हिन्दी साहित्य का इतिहास ही अधूरा है। इसी तरह शाहमऊ–टेकारी के राजा बाबू गंगाबख़्श सिंह के

अनुज महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह के द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस की 'नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका' रामकथा-प्रेमियों के लिए वरदान-स्वरूप है।

बिहार के राजाओं की साहित्य-साधना भी प्रणम्य है। डुमराँव-नरेश महाराज जयप्रकाश सिंह के अनुज महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह (1786-1847 ई.), बरैली-नरेश राजा कमलानन्द सिंह 'साहित्य-सरोज' (1876-1910 ई.) एवं कुमार गंगानन्द सिंह (1898-1971 ई.) की साहित्य-साधना स्तुत्य है। बंगाल की वीरभूमि से राजवंशीय साहित्यकारों का प्रतिनिधित्व करनेवाले राजा राधाकान्तदेव बहादुर (1784-1867 ई.) संस्कृत भाषा के सर्वाधिक विशाल शब्दकोश की रचना करने के लिए सुविख्यात हैं। राजा राधाकान्तदेव बहादुर अनेक भाषाओं के विद्वान्, हिन्दू-संस्कृति के संरक्षण के पक्षधर एवं विचारक थे। उन्होंने 'शब्दकल्पद्रुम' नामक संस्कृत के आधुनिक महाशब्दकोश का प्रणयन किया है। राजा राधाकान्तदेव बहादुर गोपीमोहनदेव के पुत्र और राजा नवकृष्णदेव बहादुर के दत्तक पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। 'शब्दकल्पद्रुम' का पहली बार प्रकाशन 1828-1858 ई. में हुआ था। सात खण्डों में विभक्त यह पूर्णतः संस्कृत का एकभाषीय कोश है। इस कोश में यथासम्भव उपलब्ध संस्कृत के समस्त वाङ्मय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्त में परिशिष्ट भी दिया गया है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहसिक दृष्टि से भारतीय-कोश-रचना के विकासक्रम में इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। परवर्ती संस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशों पर इसका व्यापक प्रभाव विद्यमान है। यह कोश विशुद्ध शब्दकोश ही नहीं, अपितु अनेक प्रकार के कोशों का शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का सम्मिश्रित महाकोश है। इसमें बहुविध उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधाविधानों एवं पद्धतियों का परिचय दिया गया है। इसमें गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुवंत तिङन्त प्रातिपदिक या धातु नहीं। 'शब्दकल्पद्रुम' में पाणिनि-व्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गयी है। शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणों के समर्थन द्वारा अर्थ-निर्देश किया गया है। पर्याय भी दिये गये हैं। धातुओं से व्युत्पन्न क्रियापदों के उदाहरण भी दिये गये हैं। पदोदाहरण आदि भी हैं। शब्दों की विस्तृत व्याख्या में दर्शन, पुराण, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारों के लम्बे लम्बे उद्धरण भी दिये गये हैं। तन्त्र-मन्त्र, शास्त्र, स्त्रीत्न आदि से उद्धृत करते हुए अनेक सम्पूर्ण स्तोत्र, तान्त्रिक मन्त्र

आदि के भी विस्तृत अंश उद्धृत हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओं के परिभाषिक शब्दों का भी उन विद्याओं के विशेषज्ञों के सहयोग से सप्रमाण विवरण दिया गया है। इसमें कोश की रचना-परिपाटी के विषय में भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशों की सूची भी दी गयी है, जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्द-संग्रह किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशों में उल्लिखित, पर अनुपलब्ध कोशों अथवा कोशकारों के नाम भी भूमिका में दिये गये हैं। वस्तुतः 'शब्दकल्पद्रुम' के प्रणेता राजा राधाकान्तदेव बहादुर संस्कृत भाषा के निष्णात पण्डित होने के साथ ही बांग्ला, हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के अधिकृत विद्वान् भी थे।

छत्रपति शिवाजी के राष्ट्रानुरागी पुत्र छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले (1657-1686 ई.) की साहित्य-साधना एक ऐसे आकाश का सृजन करती है, जिसके नीचे लेखनी और कृपाण की कलाएँ विश्राम करती हैं। छत्रपति शिवाजी के वंशज तंजाऊर-नरेश शाहजी भोंसले (1684-1712 ई.) द्वारा हिन्दी, मराठी और तेलुगु में की गयी साहित्य-साधना प्रणम्य है। महाराज शाहजी ने हिन्दी में 'राधावंशीधरविलास नाटक' और 'विश्वातीतविलास नाटक' का प्रणयन किया है। यक्षगान शैली में लिखित इन नाटकों का ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है कि मूलतः तेलुगु-साहित्य की नाट्यविधा 'यक्षगान' को हिन्दी में अवतरित करने का श्रेय महाराज शाहजी कृत इन्हीं नाटकों को है। 'राधावंशीधरविलास नाटक' से एक गीत उद्धृत है-

सखि! सन्ध्या राग अरुन सुहावे।
माणिक्य जैसो वारुनि अबल मानु।
गिरिपर नाथ धुण्डति कर लिय दीप श्रोणि जो ऐसो सुहावति।
कमलिनीनाथ रूठ गया कहकर मुख म्लान होती।
कुमुदिनीनाथागमन सुन मुख स्मित पूर्ण होती।
खग देखो सब श्रेणि बाद के अपने घर चले हैं।
चकई मित्र वियोग से कामिनी ताज फिरे।।[23]

---

23. महाराज शाहजी : डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय' : भारतीय भाषा साहित्य और छन्द की भूमिका : अनुभव प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद : प्रथम संस्करण 2012 ई., पृ. 155

अरब सागर के अंक में द्वितीया के चन्द्रमा की तरह सुशोभित केरल की कमनीय भूमि के गौरव त्रावणकोर के यशस्वी शासक, दक्षिण भारत के प्रथम हिन्दी-कवि, गर्भश्रीमान् महाराजाधिराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा (1813-1846 ई.) की साहित्य-संगीत-साधना किसी से छिपी नहीं है। केरल का प्रबुद्ध वर्ग ही नहीं, अपितु आम आदमी भी गर्भश्रीमान् की कीर्ति-कथा का कीर्तन बड़े मनोयोग से करता है। अरब सागर के अंक में ही जडेजावंशी शासकों की यशःगाथा को गानेवाली कच्छ-भुज की वैभवशालिनी धरत्री है। कच्छ-भुज में ब्रजभाषा-काव्यशाला की स्थापना करके कविता को रोज़गार से सम्पृक्त करनेवाले महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' (1706-1760 ई.) का उज्ज्वल कर्तृत्व जगत्प्रसिद्ध है।

उत्कल प्रान्त के राजवंशीय शासकों में राजमुन्द्री-नरेश राजा रामानन्द पटनायक (1479-1535 ई.), ओडीशा-नरेश राजा प्रतापरुद्र, खुर्धा-नरेश गजपति राजा दिव्य सिंह, बड़खेमुण्डी-नरेश राजा पुरुषोत्तम अनंग भीमदेव (1729-1776 ई.), आठगढ़-नरेश राजा जगबन्धु हरिचन्दन (1740-1770 ई.), राजा धनंजय भंज, कवि सम्राट् राजा उपेन्द्र भंज (1665-1725 ई.) प्रभृति के योगदान स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

ओड़िया साहित्य के महान् कवि राजा उपेन्द्र भंज सन् 1665 ई. से 1725 ई. तक जीवित रहे। उन्हें 'कवि सम्राट्' कहा जाता है। उनके पिता का नाम राजा नीलकण्ठ भंज और पितामह का नाम राजा धनंजय भंज था। कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज के पितामह कुलाडगढ़-घुमसर के राजा धनंजय भंज स्वयं ओड़िया के श्रेष्ठ महाकवि थे। उन्होंने 'रघुनाथविलास' (महाकाव्य), 'त्रिपुरसुन्दरी', 'मदनमंजरी', 'अनंगरेखा', 'इच्छावती', 'रत्नपरीक्षा', 'अश्व और गजपरीक्षा' आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इसमें कुछ लक्षणग्रन्थ और चौपदीभूषण आदि संगीतग्रन्थ भी हैं।

राजा उपेन्द्र भंज के पिता राजा नीलकण्ठ भंज दो वर्ष तक शासन करने के बाद अपने भाई घन भंज के द्वारा राज्य से निकाल दिये गये। राजा नीलकण्ठ भंज के जीवन का अन्तिम भाग नयागढ़ में व्यतीत हुआ था। कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने नयागढ़ के निवासकाल में 'ओड्गाँव' के मन्दिर में विराजित देवता श्रीरघुनाथ को 'रामतारक' मन्त्रों से प्रसन्न

किया था और उनके ही प्रसाद से उन्होंने कवित्वशक्ति प्राप्त की थी। संस्कृत भाषा में न्याय, वेदान्त, दर्शन, साहित्य तथा राजनीति आदि सीखने के साथ ही उन्होंने व्याकरण और अलंकारशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था। नयागढ़ के राजा लड़केश्वर मान्धाता ने उन्हें 'वीरवर' उपाधि से भूषित किया था। पहले उन्होंने बाणपुर के राजा की कन्या के साथ विवाह किया था, किन्तु थोड़े ही दिनों बाद उनके दिवंगत हो जाने के कारण नयागढ़ के राजा की बहन लावण्यवती को उन्होंने पत्नी रूप में ग्रहण किया। कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज का दाम्पत्य जीवन पूर्ण रूप से अशान्त रहा। उनके जीवनकाल में ही द्वितीय पत्नी की भी मृत्यु हो गयी। स्वयं कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज 40 वर्ष की आयु में ही निःसंतान अवस्था में दिवंगत हुए।

राजा उपेन्द्र भंज रीतियुग के कवि हैं। उन्होंने लगभग पचास काव्यग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें से 20 ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। उनके लिखित काव्यों में 'लावण्यवती', 'कोटिब्रह्माण्डसन्दुरी' और 'वैदेहीशविलास' सुप्रसिद्ध हैं। 'वैदेहीशविलास' अत्यन्त अलंकारिक महाकाव्य है। इतने बड़े महाकाव्य की प्रत्येक पंक्ति 'व' (ओड़िआ या बंगला मे 'व' और 'ब' एक ही जैसे लिखे और पढ़े जाते हैं) से शुरू होती है। कई स्थानों पर लक्ष्मण के लिए 'बाबू' शब्द प्रयुक्त हुआ है। एक सम्पादक श्री बाबूराम शर्मा जी ने अपने नाम का गौरव बताने के लिए लिखा था कि अंग्रेज भारतीयों को बबून कहते थे, जिसका अपभ्रंश बाबू हुआ, किन्तु 'बाबू' का पुराना उदाहरण कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज के 'वैदेहीशविलास' में ही उपलब्ध है। एक पंक्ति है–

बाबू नाकश्री दान योग्य योषा कू।
बिहर कानन कर अभिनन्दन कू।।

अर्थात् लक्ष्मण जी ने शूर्पणखा को कहा कि राम का लिखित आदेश मिलने पर वे उससे विवाह कर सकते हैं। तब श्रीराम ने यह आदेश दिया– 'बाबू! इस स्त्री के सौन्दर्य के सामने स्वयं (नाक) का सौन्दर्य दान करने लायक है। इसके साथ कानन में विहार करो और अभिनन्दन करो। पर लक्ष्मण ने इसका अलग अर्थ समझा– इसके नाक की श्री काटने योग्य है (दान = काटना)। इसका कान काटो (बिहर = कान) तथा अभिनन्दन नहीं करना (न कर अभिनन्दन कू)। उपेन्द्र भंज के 'लावण्यवती' काव्य के विषय में एक लोकोक्ति

प्रचलित है। कहा जाता है कि नयागढ़ के राजा ने अपनी पत्नी शोभावती के नाम पर एक काव्य का प्रणयन करके अपने बहनोई कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज के पास भेजा। उपेन्द्र भंज ने वह काव्य पढ़ने के लिए अपनी पत्नी लावण्यवती को दिया। 'शोभावती' काव्य पढ़कर लावण्यवती को अपनी भाभी से जलन हो गयी। वो परेशान रहने लगीं। कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज लावण्यवती के मन का भाव समझ गये। उन्होने लावण्यवती से कहा– 'प्रिये! कुछ दिन प्रतिक्षा करो मैं तुम्हारे नाम पर इससे भी उन्नत काव्य की रचना करके तुम्हे सुनाऊँगा। दो महीने के बाद राजा उपेद्र भंज ने 'लावण्यवती' नामक काव्य लिखकर अपनी पत्नी को दिया। कहने के लिए राजा उपेन्द्र भंज ने अपनी पत्नी के लिए इस काव्य का प्रणयन किया है, परन्तु इसमें हर तरफ प्रकृति के सौन्दर्य का ही वर्णन मिलता है। इसलिए आज भी 'लावण्यवती' काव्य ओड़िआ साहित्य में मील का पत्थर बना हुआ है।

ओड़िया साहित्य में रामचन्द्र छोटराय से लेकर यदुमाणि तक 200 वर्ष पर्यन्त जिस रीतियुग का प्राधान्य रहा, राजा उपेन्द्र भंज उसी के सर्वाग्रगण्य कवि माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में महाकाव्य, पौराणिक तथा काल्पनिक काव्य, संगीत, अलंकार और चित्रकाव्य अन्तर्भुक्त हैं। उनके काव्यों में वर्णित विवाहोत्सव, रणसज्जा, मन्त्रणा तथा विभिन्न त्यौहारों की विधियाँ आदि उत्कल की बहुत–सी विशेषताएँ मालूम पड़ती हैं। उनकी रचना–शैली नैषध की–सी है, जिसमें उपमा, रूपकादि अलंकारों का प्राधान्य है। अक्षरनियम और शब्दपाण्डित्य से उनकी रचना दुर्बोध लगती है। उनके काव्यों में नारी–रूप–वर्णन में अनेक स्थलों पर अश्लीलता दृग्गत होती है, परन्तु वह उस समय प्रचलित विधि के अनुसार है। उस समय के काव्यों में शृंगार का ही प्राचुर्य रहता था।

दीनकृष्ण, भूपति पण्डित और लोकनाथ विद्याधर आदि विशिष्ट कविगण राजा उपेन्द्र भंज के समकालीन थे। इन समस्त कवियों ने राजा दिव्य सिंह के शासनकाल में ख्याति प्राप्त किया था। कवि–नरेश उपेन्द्र भंज के परवर्ती जिन कवियों ने उनकी रचनाशैली का अनुसरण किया उनमें अभिमन्यु, कविसूर्य बलदेव और यदुमणि प्रभृति माने जाते हैं। आधुनिक कवि राधानाथ और गंगाधर ने भी बहुत हद तक उनकी वर्णन–शैली अपनायी है।

ओड़िया साहित्य में महाराज उपेन्द्र भंज एक प्रमुख संस्कारक महाकवि थे। संस्कृतज्ञ पण्डितों के साथ प्रतियोगिता में उतरकर उन्होंने बहुत से आलंकारिक

काव्यों की भी रचना की। धर्म और साहित्य के बीच एक सीमा निर्धारित करके उन्होंने धर्म से सदैव साहित्य को अलग रखा। उनकी रचनाओं में ऐसे बहुत-से देवताओं का वर्णन मिलता है पर प्रभु जगन्नाथ का सबसे विशेष स्थान है। 'वैदेहीशविलास' उनका सबसे बृहद् महाकाव्य है, जिसमें प्रत्येक पंक्ति का प्रथमाक्षर 'व' ही है। इसी प्रकार 'सुभद्रापरिणय' और 'कला कउतुक' काव्यों की प्रत्येक पंक्ति यथाक्रम 'स' और 'क' से प्रारम्भ हुई हैं। उनके 'रसपंचक' काव्य में साहित्यिक रस, दोष और गुणों का विवेचन किया गया है। 'अवनारसतरंग' एक ऐसा काव्य है, जिसमें किसी भी स्थान पर मात्रा का प्रयोग नहीं हुआ है। शब्दप्रयोग के इस चमत्कार के अतिरिक्त उनकी इस रचना में और कोई मौलिकता नहीं है। उनके काव्यों में वर्णन की एकरूपता का प्राधान्य है। पात्र-पात्रों का जन्म, शास्त्राध्ययन, यौवनागम, प्रेम, मिलन और विरह सभी काव्यों में प्रायः एक से हैं। उनके कल्पनाप्रधान काव्यों में वैदेहीशविलास सर्वश्रेष्ठ है।

उन्होंने 'चौपदीभूषण', 'चौपदीचन्द्र' प्रभृति कई संगीतग्रन्थ भी लिखे हैं, जो उत्कल प्रान्त में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। उनकी संगीत पुस्तकों में रस और अलंकारों का प्राचुर्य है। कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज की कई पुस्तकें मद्रास, आन्ध्र, उत्कल और कलकत्ता विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम में गृहीत हैं। वैदेहीशविलास, कोटिब्रह्माण्डसुन्दरी, लावण्यवती, प्रेमसुधानिधि, अवनारसतरंग, कलाकउतुक, गीताभिधान, छन्दमंजरी, बजारबोली, चउपदी हारावली, छान्दभूषण, रसपंचक, रामलीलामृत, चौपदीचन्द्र, सुभद्रापरिणय, चित्रकाव्य बन्धोदय, दशपोइ, यमकराज चउतिशा और पंचशायक प्रभृति उनकी कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। निश्चय ही कवि सम्राट् उपेन्द्र भंज अपने पुष्कल साहित्य के कारण न केवल ओडिशा के, अपितु भारतीय साहित्य के हीरक हस्ताक्षर हैं। उपेन्द्र भंज ने 'स्वदेशे पूज्यते राजा' को 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' में परिणति किया है। सचमुच ऐसे ही नरपुंगवों से यह धरती अपना 'वसुमती' और 'वसुन्धरा' नाम सार्थक करती है।

राजवंशीय साहित्यकारों की उज्ज्वल परम्परा पंजाब की धरती में भी विद्यमान रही है। पटियाला-नरेश महाराज नरेन्द्र सिंह (1823-1862 ई.), महाराज राजेन्द्र सिंह (1872-1900 ई.), नाभा-नरेश महाराज रिपुदमन सिंह (1882-1942 ई.), कपुरथला-नरेश महाराज फ़तह सिंह अहलूवालिया (1820 ई.), मजीठा-नरेश सरदार लहना सिंह आदि ने अपनी ललित-कलित कविताओं से हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया है। वस्तुतः कवितांगना का शृंगार करनेवाले

भारतीय नरेशों की गौरवशाली परम्परा केवल राजतन्त्र तक ही सीमित नहीं रही। स्वतन्त्र भारत में भी राजा से राजनेता बने राजवंश के साहित्यकारों की एक अलग पहचान है। भारत के सातवें प्रधानमन्त्री राजाबहादुर विश्वनाथप्रताप सिंह (1931-2008 ई.) एक सहृदय कवि और प्रख्यात चित्रकार थे। उनकी हिन्दी-कविताओं का संग्रह 'एक टुकड़ा धरती एक टुकड़ा आकाश' प्रकाशित है। इस काव्य-संग्रह का उर्दू रूपान्तरण 'एक टुकड़ा ज़मीन एक टुकड़ा आसमान' शीर्षक से हुआ है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के जीवन-दर्शन को रेखांकित करते हुए उन्होंने 'यह सही है' संज्ञक पुस्तक सन् 1990 ई. में लिखा। अंग्रेजी कविताओं का संग्रह 'Every time I wak up' है। राजाबहादुर विश्वनाथप्रताप सिंह की कविताएँ उनके दर्शन एवं चिन्तन को व्यक्त करती हैं। 'मुफ़लिस' शीर्षक कविता राजनेता के रूप में उनकी मनोदशा को बहुत अच्छी तरह से प्रदर्शित करती है-

मुफ़लिस से
अब चोर बन रहा हूँ मैं
पर
उस भरे बाज़ार से
चुराऊँ क्या
यहाँ वही चीज़ें सजी हैं
जिन्हें लुटाकर
मैं मुफ़लिस बन चुका हूँ।[24]

जम्मू-कश्मीर के महाराजाधिराज हरि सिंह और महारानी तारा देवी के यशस्वी पुत्र महाराजाधिराज डॉ. कर्ण सिंह (1931 ई.) स्वतन्त्र भारत के महत्त्वपूर्ण राजनयिक हैं। केन्द्र सरकार के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पदों पर रहने के बावज़ूद महाराजाधिराज डॉ. कर्ण सिंह की पहचान पूरे विश्व में एक विद्वान् लेखक रूप में है। महाराजाधिराज डॉ. कर्ण सिंह ने श्री अरविन्द घोष के साहित्य

---

24. राजा विश्वनाथप्रताप सिंह : एक टुकड़ा धरती एक टुकड़ा आकाश : राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली : संस्करण 2000 ई., पृ. 81

पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त किया है। 1. Towards A New India (1974), 2. Population, Poverty and the Future of India (1975), 3. One Man's World (1986), 4. Essays on Hinduism (1987), 5.Humanity at the Crossroads (1988), 6. Autobiography (2 vols.,1989), 7. Brief Sojourn (1991), 8. Hymn to Shiva and Other Poems (1991), 9. The Transition to a Global Society (1991), 10. Mountain of Shiva (1994) 11. Autobiography (1994), 12. Prophet of Indian Nationalism Hinduism, 13. Mundaka Upanishad: The Bridge to Immortality, 14. Ten Gurus of the Sikhs Their Life Story, 15. Nehru's Kashmir. Wisdom Tree, 16. A Treasury of Indian Wisdom (2010) संज्ञक पुस्तकें महाराजाधिराज डॉ. कर्ण सिंह की अप्रतिम मेधा की परिचायक हैं। महाराजाधिराज डॉ. कर्ण सिंह संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी और डोंगरी के प्रकाण्ड पण्डित हैं। इसलिए इनके वैदुष्य की समभ्यर्चना करते हुए अभिराज प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' में 'कर्णसिंहप्रशस्तिः' के अन्तर्गत लिखा है-

प्रख्याते राजवंशे धृतिजनिरतुलैः सद्गुणैर्भासमानः
सोदर्यः केसराणां गुणगणनिकयाऽऽजन्मविद्याऽनुरागी।
व्यक्तित्वं स्फाटिकाभं निरतिशयसितं सर्वलोकाभिवन्द्यं
बिभ्रन्वेकोऽद्वितीयो जयति नृपवरो भूतले कर्णसिंहः।।[25]

भारतीय राजवंश में जन्में साहित्यकारों ने साहित्य की सेवा अनेक रूपों में करने का गौरवार्जन किया है। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए हिन्दी-जगत् में मिश्रबन्धु के रूप में सुविख्यात पण्डित गणेशबिहारी मिश्र, पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एवं पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र ने 'हिन्दी-नवरत्न' की भूमिका में लिखा है- 'कवि की पदवी भी इतनी ऊँची है कि मनुष्य महाराजाधिराज होने पर भी कवि होने में अपना गौरव समझता है। जापान के वर्तमान महाराज मत्सहितो मिकाडो भी राज-काज से समय निकाल कर नित्य प्रति कुछ कविता भी करते हैं। महाराजाओं की कवि बनने की लालसा से हिन्दी-साहित्य का बहुत बड़ा उपकार हुआ है और हो रहा है। कविता करनेवाले कुछ तो ऐसे होते हैं जो उसे

---

25. प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र : कस्मै देवाय हविषा विधेम, पृ. 180

शौक़िया बचे समय में करते हैं पर अपना प्रधान कार्य मुख्यतया किया करते हैं। ऐसे लोग संसार के सभ्य देशों में बहुत होते रहते हैं पर सब कुछ उत्साह रहते हुए भी इन लोगों से बहुत अधिक कार्य नहीं हो सकता। दूसरे प्रकार के मनुष्य वह होते हैं जो व्यापार की भाँति कविता ही करते हैं और ये लोग बहुत अधिक काम कर सकते हैं। पर इनकी जीविका के लिए दो ही उपाय हो सकते हैं अर्थात् या तो यह अपने ग्रन्थों की बिक्री से जीविका प्राप्त करें या किसी राजा-महाराजा का आश्रय लें। जब तक भारत में प्रेस न था तब तक ग्रन्थों की बिक्री से जीविका चलना सर्वथा असम्भव था। आज प्रेस के होने पर भी जीविका इस प्रकार नहीं चल सकती क्योंकि भारत में इतने शिक्षित मनुष्य नहीं हैं कि किसी उत्तम ग्रन्थ की भी इतनी प्रतियाँ बिक सकें कि कालक्षेप उसी के लाभ से हो सके। इंग्लैण्ड में विद्या का प्रचार बहुत काल से बहुत अधिक है, पर वहाँ भी ऐसा समय थोड़े ही दिन हुए आया है कि कविगण ग्रन्थों की बिक्री का ही भरोसा कर सकें। भारत में अभी ऐसा समय आना शताब्दियों की बात है। ऐसी दशा में सिवा धनियों के आश्रित होकर रचना करने के निर्धन कवियों के पास कोई उपाय न था और न है। पर हर्ष का विषय है कि भारत में सधन लोग बहुत अधिकता से कविता-प्रेमी रहे हैं। 'जानै सोई मानै' के अनुसार अगुणज्ञ धनिक तो कविता का सत्कार नहीं कर सकते थे सो गुणी लोगों का आश्रय लेकर ही हिन्दी का कलेवर बना है। गुणी धनियों में जो लोग स्वयं कविता करते थे उनकी श्री कवियों के लिए कामधेनु हो जाती थी। साहित्य का इतिहास और कवियों का हाल एवं चक्र देखने से विदित होगा कि महाराजा छत्रसाल और महाराजा भगवन्तराय खींची के यहाँ इतने कवियों को आश्रय मिलता था कि जिसका वार-पार नहीं। ये दोनों क्षत्रिय राजा कवियों के कल्पवृक्ष थे। इनके अतिरिक्त बान्धव-नरेश एवं काशी-नरेश के यहाँ भी बहुत-से कवियों को आश्रय मिलता रहा और अब भी मिलता जाता है। महाराजा मान सिंह अयोध्या-नरेश ने भी कवियों का अच्छा मान किया था। चित्तौड़ के महाराणा कुम्भकर्ण कवियों के बड़े सहायक थे पर उनके आश्रित कवियों का अब पता नहीं लगता।'[26]

---

26. मिश्रबन्धु : हिन्दी-नवरत्न : हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली, प्रयाग : प्रथम संसाकरण 1967 ई., भूमिका, पृ. 12-13

आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने कविता के द्वारा जिस लोकमंगल की प्रतिष्ठा का आदर्श स्थापित किया है, वह लोकमंगल भारतीय नरेशों की दैनन्दिनिचर्या का अंग रहा है। भारतीय इतिहास के अनेक गौरवशाली पृष्ठ राजाओं को लोकमंगल से भरे पड़े हैं। कवियों ने कविता में लोकमंगल के सैद्धान्तिक पक्ष को रखा है, जबकि भारतीय नरेशों ने उसे अपने आचरण से चरितार्थ किया है। मिथिला की प्रजा के बीच अत्यधिक लोकप्रिय और 'तिरहुत सरकार' के नाम से सुविख्यात दरभंगा–नरेश महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह (1858-1898 ई.) ने अपने शासनकाल में लोकमंगल की जिस आधारशिला को स्थापित किया स्थापित किया था, उसकी चर्चा किये बिना भारत के आधुनिक विकास को समझा नहीं जा सकता। महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने बहुविवाह के विरुद्ध कठोर नियम बनाकर लोकमंगल को ही प्रतिष्ठित किया है। तिरहुत सरकार ने मिथिला में बहुविवाह को समाप्त करने के लिए न केवल सामाजिक जागरुकता पर बल दिया, अपितु दुल्हा, पंजीकार और परोहितों पर दण्ड का भी प्रावधान किया। दस्तावेज़ के अनुसार 19वीं शताब्दी तक तिरहुत में एक व्यक्ति 35 से 45 शादियाँ करते थे। पहली पत्नी तो ससुराल आती थी, लेकिन बाकी पत्नियाँ पूरी ज़िन्दगी मायके में ही गुजार देती थीं। इसे बिकौआ विवाह कहा जाता है, जिसमें ग़रीब अपनी बेटी का बिवाह कुलीन परिवार के व्यक्तियों से कराने के लिए बिक जाता था। इस घिनौनी प्रथा का सबसे दुःखद पक्ष यह था कि एक कुलीन व्यक्ति की मृत्यु के साथ ही कई महिलाएँ विधवा हो जाती थीं। सन् 1876 ई. में महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। सबसे पहले उन्होंने इस सम्बन्ध में सर्वे कराने का निर्णय लिया। सर्वे रिपोर्ट के अनुसार उस वर्ष 54 ऐसे कुलीन व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी, जिनके कारण कुल 665 महिलाएँ विधवा हुई थीं। कोइलख गाँव के एक 50 वर्षीय कुलीन व्यक्ति की मृत्यु से 35 महिलाएँ विधवा हुई थीं, जबकि रामनगर में एक 40 वर्षीय कुलीन व्यक्ति की मृत्यु से 14 महिलाएँ विधवा हुईं। महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह इन आँकड़ों को देखकर तत्काल अपने पितृव्य गुणेश्वर सिंह एवं गोपेश्वर सिंह के साथ मन्त्रणा करके बिकौआ विवाह पर प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय लिया। साथ ही इसे सामाजिक आन्दोलन बनाने के लिए 1000 रुपये का फण्ड भी आवण्टित किया। सौराठ सभा में

एक निगरानी ब्यूरो की स्थापना की गयी और ऐसे लोगों पर दण्डात्मक कार्रवाई शुरू हुई। सन् 1878 ई. में सौराठ सभा में कुल 2289 विवाह निबन्धित हुए। इनमें 107 विवाह पंजीयन बिकौआ विवाह माने गये। पंजीकार, दूल्हा, पुरोहित आदि सहित 96 लोगों को सज़ा सुनायी गयी, जिनसे कुल 298 रुपये का अर्थदण्ड वसूला गया। 10 युवाओं को रिहा किया गया, जबकि 26 दूल्हों को महाराजा कोर्ट में भेज दिया गया। 23 नवम्बर, 1878 ई. को तिरहुत में पहली बार बिकौआ विवाह करने के कारण किसी व्यक्ति को कारावास हुआ। इतना ही नहीं डॉ. जटाशंकर झा 1988 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Aspects of the History of Modern Bihar' में लिखते हैं कि तिरहुत सरकार महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह कम उम्र में सहवास के भी विरुद्ध थे। बंगाल में 10 वर्षीय फूलमणि देवी के काल पूर्व सहवास (Premature consumation) पर बहस के बाद 1890 ई. में जब Supreme Legislative Council में The Age of Consent Bill लाया गया तो लोकमान्य बालगंगाधर तिलक जैसे नेताओं ने उसका विरोध किया। इस विधेयक के पक्ष में तिरहुत सरकार महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने मतदान किया। बालिका बधू की प्रथा को समाप्त करने में यह कानून मील का पत्थर सिद्ध हुआ। महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह के द्वारा बिकौआ विवाह एवं बालिका वधू नामक इस कुरीति के विरुद्ध लिये गये कठोर निर्णय को क्या सामाजिक आन्दोलन नहीं कहेंगे? क्या इस आन्दोलन की चर्चा किये बिना आधुनिक भारत का इतिहास पूर्ण हो सकेगा? क्या इस आन्दोलन को आत्मसात किये बिना स्त्री-अधिकार की लड़ाई पूरी हो सकेगी? क्या महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह के इस प्रदेय के बिना लोकमंगल का स्वप्न चरितार्थ हो सकता है? वस्तुतः महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने भारत के लोकोन्मुखी नरेशों की पंक्तिपावन परम्परा में अपने आपको स्थापित कर दिया है।

महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह का हिन्दी-प्रेम भी अद्वितीय रहा है। सन् 1880 ई. में दरभंगा राज्य के कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने के लिए प्रोत्साहन के रूप में तिरहुत सरकार महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने हिन्दी में विज्ञान, काव्य और उपन्यास के लिए क्रमशः दो सौ और डेढ़ सौ रुपये नकद पुरस्कार देने की घोषणा की तथा हिन्दी में निबन्ध लिखने के लिए क्रमशः एक सौ रुपये का चौथा पुरस्कार भी घोषित किया। दरभंगा

राज्य में यह कार्य उस समय में हो रहा था, जब हिन्दी का स्वरूप भी ठीक से निश्चित नहीं हुआ था। दरभंगा राज्य में हिन्दी बोलनेवाले नगण्य थे, क्योंकि वहाँ की मातृभाषा मैथिली है। हिन्दी को लेकर महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह ने 10 जुलाई, 1880 ई. को अपने कर्मचारियों को आदेश दिया था कि वे नवम्बर तक हर हाल में हिन्दी में काम करना सीख लें, अन्यथा नौकरी से निकाल दिये जायेंगे। वस्तुतः इस तरह के निर्णय के बिना हिन्दी का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है।

भारतीय राजतन्त्र की देशी रियासत के किसी राजा का नाम लेते ही बॉलीवुड की फ़िल्मों के खलनायक का चित्र उभर आता है। फ़िल्मों में राजाओं एवं ठाकुरों को शोषक एवं उत्पीड़क के रूप में ही चित्रित किया गया है। इसके पीछे लोकतन्त्र में उभरे नये राजनीतिक क्षत्रपों की सोची-समझी राजनीति रही है। जो लोग राजाओं को शोषक के रूप में ही जानते हैं, उन्हें छत्तीसगढ़ की कोरिया रियासत के राजा रामानुजप्रताप सिंह देव के जीवन-दर्शन को निकट से जानने का प्रयत्न करना चाहिए। कोरिया-नरेश राजा शिवमंगल सिंह देव एवं रानी नेपाल कुँवरि के संयोग से सन् 1901 ई. में जन्में राजा रामानुजप्रताप सिंह देव बचपन से ही अत्यन्त मेधावी और देश-प्रेमी रहे हैं। राजा रामानुजप्रताप सिंह ने आंग्ल-शासकों की दोहरी नीति का सदैव विरोध किया है। सन् 1660 ई. के आस-पास मैनपुरी से कोरिया आकर स्थापित हुए चौहान राजवंश के कर्णधार राजा रामानुजप्रताप सिंह देव का सन् 1920 ई. में छोटा नागपुर की राजकुमारी दुर्गादेवी के साथ विवाह हुआ।

बाल्यकाल से ही राजा रामानुजप्रताप सिंह देव प्रतिभावान एवं देश-प्रेमी के रूप में विख्यात रहे। सन् 1924 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त करनेवाले राजा रामानुजप्रताप सिंह देव के हृदय में राष्ट्रानुराग और लोकमंगल का भाव कूट कूट कर भरा हुआ था। इन्होंने 1931 ई. में लन्दन में आयोजित गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लिया था।

देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं कारख़ाना क्षेत्र के श्रमिकों के प्रति संवेदनशील रहने के कारण तत्कालीन कोरिया ज़िले में इनके अथक प्रयत्न से सन् 1928 ई. में कोयला खदान का कार्य 'खरसिया'

एवं 'चिरमिरी' में प्रारम्भ किया गया। सन् 1941 ई. में कोरिया ज़िले में संचालित शिक्षण संस्थानों में कक्षा आठ तक के बच्चों को मध्याह्न अल्पाहार में गुड़ और चना देने की परम्परा प्रारम्भ की गयी। सन् 1946 ई. में पंचायती राज कोरिया ज़िले में प्रथम बार लागू किया गया था। शिक्षा के क्षेत्र में यहाँ संचालित शैक्षणिक केन्द्रों में से 64 केन्द्रों में 'प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम' लागू किया गया। राजा रामानुजप्रताप सिंह देव प्रत्येक शिक्षण केन्द्र का वर्ष में दो बार निरीक्षण स्वयं करते थे।

श्रमिकों के प्रति अति संवेदनशील होने के कारण 1947 ई. में कोरिया ज़िले द्वारा 'न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम' पारित किया गया। राजा रामानुजप्रताप सिंह देव द्वारा सेंट्रल प्राविंस एवं बरार राज्य के संविलयन के दौरान सन् 1948 ई. में कोरिया ज़िले के ख़ज़ाने में 1.20 करोड़ रुपये की राशि जमा करायी गयी। वस्तुतः श्रमिकों के प्रति संवेदनशील होना, श्रमिकों की सुरक्षा-व्यवस्था का प्रबन्ध करना, विद्यालयों में मध्याह्न अल्पाहार की व्यवस्था करना और स्वयं विद्यालयों का निरीक्षण करना जैसे कार्य राजा रामानुजप्रताप सिंह देव को भारतीय नरेशों की उस परम्परा में प्रतिष्ठित करते हैं, जिस परम्परा के शिरोभूषण महाराज अम्बरीष, महाराज रन्तिदेव, महाराज दिलीप, महाराज रघु, महाराज रामचन्द्र, महाराज भरत, महाराज युधिष्ठिर एवं महाराज विक्रमादित्य हैं। राजा रामानुजप्रताप सिंह देव का देहावसान 6 अगस्त, 1954 ई. को हुआ। छत्तीसगढ़ शासन ने इनकी स्मृति में श्रम एवं उत्पादकता वृद्धि के क्षेत्र में अभिनव प्रयत्नों के लिये 'महाराजा रामानुजप्रताप सिंह देव सम्मान' स्थापित किया है।

भारतीय नरेशों की लोकमंगल-दृष्टि का एक सुन्दर उदाहरण भारत के लोकप्रिय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा 9 मार्च, 2016 ई. को राज्यसभा में दिये भाषण से प्रकट होता है। मोदी जी अपने भाषण के ग्यारहवें मिनट से लेकर पन्द्रहवें मिनट के मध्य में बड़ौदा स्टेट की एक घटना का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि जब मैं गुजरात का मुख्यमन्त्री था, तब मई महीने में गाँव गाँव जाकर लोगों को बेटियों को पढ़ाने के लिए प्रेरित करता था। एक बार मैं बड़ौदा के एक गाँव में आयोजित सभा को सम्बोधित कर रहा था। मैंने सभा में बैठी महिलाओं से कहा कि जो लोग पढ़े-लिखे नहीं

हैं, वे हाथ उठायें। पैंतालीस साल से लेकर पचपन साल तक की महिलाओं ने हाथ उठाये, किन्तु चार-छह महिलाएँ ऐसी थीं, जो सत्तर-अस्सी साल की थीं लेकिन उन्होंने हाथ नहीं उठाया। मैंने उन लोगों से पूछा, आप लोगों ने हाथ नहीं उठाया, क्या आप पढ़ी-लिखी हैं? उन महिलाओं ने 'हाँ' में उत्तर दिया। मैंने पुनः पूछा कि आप की बहू पढ़ी-लिखी नहीं है और आप पढ़ी-लिखी हैं, ऐसा कैसे हुआ? तब उनमें से एक बुजुर्ग महिला ने बताया कि मेरा जन्म गायकवाड़ स्टेट में हुआ है। उस समय जो अपनी बेटियों को नहीं पढ़ाते थे, उनके ऊपर महाराज बड़ौदा ने एक रुपये का अर्थदण्ड लगाया था। इसलिए अर्थदण्ड के भय से हमारे माता-पिता ने हमें पढ़ाया। हमारी बहू स्वतन्त्र भारत की नागरिक है। स्वतन्त्र भारत में ऐसा कोई कानून नहीं रहा। इसलिए हमारी बहू निरक्षर रह गयी।[27]

वस्तुतः भारतीय नरेशों की दृष्टि लोकमंगल से सम्पृक्त रही है। छोटी छोटी देशी रियासतों ने अपने कार्यकाल में जिन आदर्शों को स्थापित किया था, उनके मूल्य आज विखण्डित हो रहे हैं। तत्त्वतः इसी दृष्टि से प्रेरित होकर ही भारतीय नरेशों ने कविता का सृजन किया है। जिन लोगों को भारतीय नरेशों में शोषक और प्रजा-उत्पीड़क दिखायी पड़ता है, उन लोगों को खुले मन से राजाओं द्वारा सृजित साहित्य को पढ़ना चाहिए। इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने 'भारतीय नरेशों की साहित्य-साधना' नामक पुस्तक लिखने का संकल्प लिया। मेरा कार्य चल ही रहा था कि इसी बीच उत्तराखण्ड के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. किरनपाल सिंह जी से वार्ताक्रम में ज्ञात हुआ कि वे 'भारतीय नरेशों की हिन्दी-सेवा' नामक पुस्तक का सम्पादन कर रहे हैं। उस पुस्तक में मैंने भी छह आलेख लिखा है। इसी बीच 'दी कोर' पत्रिका के कार्यकारी सम्पादक अनुजवत श्री गुंजन अग्रवाल ने कहा कि आपकी परियोजना अत्यन्त वृहद् है। उसके पूर्ण होने के पूर्व इस विषय पर एक छोटी पुस्तक आनी चाहिए, जिससे लोगों को इस विषय का सही सही ज्ञान हो सके। प्रस्तुत पुस्तक 'राजवंश के साहित्यकार' का सृजन इसी दृष्टि से हुआ है।

---

27. Narendra Modi Speech in Rajya Sabha ~9 March, 2016 ~ Parliament LIVE : https://m.youtube.com/watch?v=FKwHs2bfvTs

इसमें कतिपय नरेशों के काव्य-वैभव के मर्म का साक्षात्कार किया गया है। आशा है कि इससे भारतीय नरेशों का एक स्वस्थ स्वरूप प्रकट होगा। अन्त में पुस्तक सुधी पाठकों के कर-कंज में पन्ना-नरेश महाराज छत्रसाल के सवैये के साथ समर्पित है -

आवत आप कृपा करि कें छत्रसाल कहें उठि आदर कीजै।
सारद कण्ठ बसैं जिनके तिनके ढिग बैठि सुधारस पीजै।
तार जड़ाय जवाहिर दै गजबाजिन दै सनमानहिं कीजै।
कीरति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूँ कुम्हिलान न दीजै।।

13 मार्च, 2017 ई. विदुषां वशंवदः

'चन्द्रकुटी' : छोटी बखरी **जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय'**
देवगढ़, शिवद्वार-231 210
सोनभद्र (उ. प्र.)
मो. नं. : 09473614545, 09918832052
e-mail : drjkssanjay@yahoo.in
https://www.facebook.com/jitendrakumarsingh0179

❑❑

छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु'

हिन्दी-साहित्येतिहास में 'नृप शम्भु', 'राजा शम्भुनाथ', 'शम्भुराजा', 'शम्भुराज सोलंकी' प्रभृति नामों से सुविख्यात छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले का जन्म ज्येष्ठ शुद्ध 12 शके 1579, गुरुवार 14 मई, 1657 ई. को पुरन्दरगढ़ में हुआ था। मराठा साम्राज्य के सूर्य छत्रपति शिवाजीराजे भोंसले के ज्येष्ठ पुत्र शम्भुराजा के जन्म के दो वर्ष बाद ही इनकी माता सईबाई की मृत्यु हो गयी। मातृसुख-विवंचित छत्रपति सम्भाजीराजे का लालन-पालन राजमाता जीजाबाई उपाख्य 'जिजाऊ' ने किया। जिस जिजाऊ ने छत्रपति शिवाजीराजे भोंसले के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण किया था, उसी जिजाऊ ने सम्भाजीराजे को भी संस्कारित किया। सम्भाजीराजे शक्ति-सम्पन्नता एवं रूप-सौन्दर्य की प्रत्यक्ष प्रतिमा थे।

14 वर्ष की आयु तक संस्कृत में 'बुधभूषणम्' और हिन्दी में 'नायिकाभेद', 'सातसतक', 'नखशिख' प्रभृति ग्रन्थों की रचना करनेवाले सम्भाजीराजे भोंसले विश्व के प्रथम बाल-साहित्यकार थे। मराठी, हिन्दी, फ़ारसी , संस्कृत, अंग्रेज़ी, कन्नड़ आदि भाषाओं के उद्भट विद्वान् छत्रपति सम्भाजीराजे का लेखनी और कृपाण पर समान अधिकार था। यद्यपि बलदेव कवि बघेलखण्डी कृत 'सतकविगिराविलास' (1746 ई.), राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' कृत 'विद्वन्मोदतरंगिणी' (1827 ई.), आचार्य गोकुल कृत 'दिग्विजयभूषण' (1862 ई.) एवं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत 'सुन्दरी तिलक' (1868 ई.) में छत्रपति सम्भाजीराजे की कविताएँ संकलित हो चुकी थीं, तथापि हिन्दी-जगत् के सुधी पाठकों को छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' की कविताओं से परिचित कराने का व्यापक श्रेय 1878 ई. में प्रकाशित ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' को ही प्राप्त है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने शम्भु कवि राजा शम्भुनाथ सिंह सुलंकी सितारगढ़वाले के रूप सम्भाजीराजे का परिचय देते हुए लिखा है- 'ये महाराज कवि-कोविदों के कल्पवृक्ष महान कवि हो गये हैं। शृंगार में इनकी काव्य निराली

छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु'

है। नायिका-भेद में इनका ग्रन्थ सर्वोपरि है। ये महाराज मतिराम त्रिपाठी के बड़े मित्र थे।'[1] ठाकुर शिव सिंह सेंगर के द्वारा दी गयी सूचना का सर्वेक्षण करते हुए डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है- 'नृप शम्भुनाथ और शम्भुराज आदि इनकी छाप है। यह सोलंकी नहीं मराठे थे। सरोज में दिया संवत् 1738 इनका रचनाकाल है। इनका 'नखसिख' भारतजीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित हो चुका है। सरोज के प्रारम्भिक संस्करणों में काव्य को स्त्रीलिंग मानकर उसका निराला विशेषण निराली लगा हुआ है। ग्रियर्सन ने (147) इनके एक काव्य का नाम 'काव्य निराली' मान लिया है। अब कोई इसी आधार पर इनके काव्य निराली की खोज करने लगे तो उसकी मौत है।'[2]

वस्तुतः मराठीभाषी कवि होने के कारण छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले के व्यक्तित्व का सही सही रेखांकन हिन्दी के तत्कालीन साहित्यकारों द्वारा नहीं हो पाया है। इसका एक कारण गमनागमन की सुविधा का अभाव भी हो सकता है। तत्त्वदर्शी विद्वान् डॉ. कृष्ण दिवाकर ने 'भोंसला राज दरबार के हिन्दी कवि' नामक पुस्तक में नृप शम्भु, शम्भुराज, शम्भुनाथ, शम्भुनाथ सुलंकी आदि नामों पर विचार करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि ये सभी नाम छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले के ही हैं।

छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले आरम्भ से ही अभिमानी, क्रोधी एवं भोग-विलास में प्रवृत्त हो गये थे। अपनी मृत्यु के समय छत्रपति शिवाजी ने उन्हें पन्हाला दुर्ग में क़ैद कर रखा था। सम्भाजीराजे में अपने पिता की कर्मठता और दृढ़ संकल्प का अभाव था। वे विलास-प्रेमी थे, किन्तु उसमें शौर्य की कमी न थी। 4 अप्रैल, 1680 ई. को छत्रपति शिवाजी के मरणोपरान्त उनकी द्वितीय पत्नी सूर्याबाई ने अपने दस वर्षीय पुत्र राजाराम का अप्रैल, 1680 ई. में रायगढ़ महाराष्ट्र में राज्याभिषेक कर दिया, किन्तु सम्भाजीराजे ने मराठा सेनापति

---

1. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज (सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1970 ई., पृ. 799
2. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 1967 ई., पृ. 695

हमीरराव मोहिते को अपने पक्ष में करके आक्रमण कर दिया। उन्होंने सूर्याबाई एवं राजाराम को क़ैद कर लिया और रायगढ़ पर अधिकार करके 30 जुलाई, 1680 ई. को अपना राज्याभिषेक करवाया। छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले ने नीलोपन्त को अपना पेशवा बनाया और 1689 ई. तक शासन किया। कालान्तर में सम्भाजी के विरुद्ध राजाराम, सूर्याबाई और अन्नाजी दत्तो ने एक संगठन बना लिया, परन्तु सम्भाजी ने इस संघ को बर्बरतापूर्वक कुचलते हुए सौतेली माँ सूर्याबाई और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण मराठा सरदारों की हत्या करवा दी। सम्भाजी ने उज्जैन के हिन्दी एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् कवि कलश को अपना सलाहकार नियुक्त किया। मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब के विद्रोही पुत्र अकबर को शरण देने के कारण सम्भाजी को मुग़ल सेनाओं के आक्रमण का सामना करना पड़ा। लगभग 9 वर्ष तक सम्भाजीराजे निरन्तर औरंगज़ेब की विशाल सेनाओं का सफलतापूर्वक सामना करते रहे।

छत्रपति सम्भाजीराजे ने साहस एवं निडरता के साथ औरंगज़ेब की आठ लाख सेना का सामना किया तथा अधिकांश मुग़ल सरदारों को युद्ध में पराजित कर उन्हें भागने के लिए विवश कर दिया। 24 से 32 वर्ष की आयु तक सम्भाजीराजे मुग़लों की पाश्विक शक्ति से लड़ाते रहे किन्तु एक बार भी पराजित नहीं हुए। इसलिए औरंगज़ेब दीर्घकाल तक महाराष्ट्र में युद्ध करता रहा। उसके दबाव से सम्पूर्ण उत्तर भारत मुक्त रहा। यदि सम्भाजी ने औरंगज़ेब के साथ सन्धि कर लिया होता अथवा उसका आधिपत्य स्वीकार किया होता, तो वह दो-तीन वर्ष में ही पुनः उत्तर भारत में आ धमकता, परन्तु छत्रपति सम्भाजीराजे के संघर्ष के कारण औरंगज़ेब को 27 वर्ष दक्षिण भारत में ही रुकना पड़ा। इससे उत्तर में बुन्देलखण्ड, पंजाब और राजस्थान में हिन्दुओं की नयी सत्ताएँ स्थापित हुईं और हिन्दू समाज को सुरक्षा मिली।

छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले हिन्दू धर्म के उन्नायक शासकों में एक थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण 1684 ई. में मराठों एवं अंग्रेजों के मध्य हुआ वह समझौता है, जिसमें छत्रपति सम्भाजीराजे ने एक ऐसी शर्त रखी थी कि अंग्रेजों को मेरे राज्य में दास (ग़ुलाम) बनाने अथवा ईसाई धर्म में कलंकित करने हेतु लोगों का क्रय करने की अनुज्ञा नहीं मिलेगी। सम्भाजीराजे ने हिन्दुओं के शुद्धिकरण के लिए अपने राज्य में स्वतन्त्र विभाग की स्थापना की थी। छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले एवं कविकलश ने बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन कर मुसलमान

बनाये गये हरसुल के ब्राह्मण गंगाधर कुलकर्णी को शुद्ध कर पुनः हिन्दू धर्म में परिवर्तित करने का साहस दिखाया। सम्भाजीराजे की इस उदारता के कारण बहुत से हिन्दू पुनः स्वधर्म में आ गये।

छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले का जीवन निरन्तर युद्ध में ही व्यतीत हुआ। समरांगण में तलवार का कौशल प्रदर्शित करनेवाले अद्वितीय महारथी सम्भाजीराजे की लेखनी श्रृंगाररस की साक्षत् निर्झरिणी है। वीर और श्रृंगार का ऐसा अद्‌भुत समन्वय विरल ही है। नायिका के अकुण्ठ सौन्दर्य का वर्णन करते हुए छत्रपति सम्भाजीराजे 'नृप शम्भु' लिखते हैं–

कौंहर कौल जपादल विद्रुम का इतनी जु बँधूक में कोति है।
रोचन रोरी रची मेंहदी 'नृप सम्भु' कहै मुकता सम पोति है।
पाँय धरै ढरै ईंगुर सो तिहि में मनि पायल की घनी जोति है।
हाथ द्वै तीनि लौं चारिहूँ ओर ते चाँदनी चूनरी के रँग होति है।।[3]

सम्भाजीराजे की काव्य–कला उनकी सहृदयता की द्योतक है। मराठीभाषी होने के बाद भी सम्भाजी को न केवल ब्रजभाषा में सिद्धि प्राप्त थी, अपितु उनका ब्रजभाषा के छन्दों पर भी असाधारण अधिकार था। घनाक्षरी और सवैये सम्भाजीराजे के मनोभावों का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं। प्रिय–दर्शनाभिलाषी नायिका के मन में 'लाज' और 'काम' के मध्य हो रहे अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण सम्भाजीराजे की समर्थ लेखनी को प्रदर्शित करता है–

देखा चहै पिय को मुख पै अँखियाँ न करैं जिय की अभिलाखी।
चाहत 'सम्भु' कहै मन में बतियाँ मुखते पुनि जात न भाखी।
भेंटिबे को फरकै भुज पै नहिं जीभि ते जाइ 'नहीं नहीं' नाखी।
लाज औ काम दुहूनि बहू बलि आज दुराज प्रजा करि राखी।।[4]

वस्तुतः छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' के सवैये श्रृंगार की सुरसरिता में नहाये हुए हैं। श्रृंगार की कोमल लतिकाएँ सम्भाजीराजे के अदम्य

---

3. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1639, पृ. 571
4. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1640, पृ. 572

पौरुष का संयोग पाकर खिल उठी हैं। यहाँ सम्भाजीराजे के कतिपय सवैये द्रष्टव्य हैं–

(1)

साँझ ही ते रति की गति जेतिकै कोक के आसन जे गिरा गावति।
वारिज-नैननि बारहि बारन चूमिबे के मिसु भोर छपावति।
केलि कला के तरंगति सों हठि मोहनलाल को ज्यों ललचावति।
अंक में बीति गयी रतिया पै तऊ छतिया तियै छोड़ि न पावति।।[5]

(2)

रूठि उठै उठि बैठे मरू झिझकारै झुकै बिहँसै मुख फेरै।
दूनी ह्वै जाइ छुए अँचरा छरकै फुफुँदी के छरा तन हेरे।
चेरे से कै लिए 'सम्भु' सदा गृहकाज अकाज के जाति न नेरे।
बाल के ख्यालहि में नँदलाल रहैं छकि रोज रहैं घर घेरे।।[6]

(3)

रीति तजी विपरीत सजी रसना बजी मंजुल लंक के रोष ते।
द्वौ उर बीच उरोज दबे 'नृप सम्भु' बचे हैं अनंग के सोष ते।
चापि कपोल दुहूँ कर सों मुख चूमति प्यारी अनन्दित तोष ते।
बैर तजे अरि चन्द पियै मकरन्द मनो अरविन्द के कोष ते।।[7]

(4)

फूलन को बिनिबो ठहराइ कै ल्याइ कै दूती मिलाइ दयी।
नँदलाल निहारि निहाल भये छवि कुन्दनमाल-सी बाल नयी।

---

5. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1641, पृ. 572
6. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1642, पृ. 572
7. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1643, पृ. 573

कर ते छुटि भागी दुरी पग द्वै बलि पै न चली कछु चातुरयी।
हरि हेरे न पावत भावती 'सम्भु' कुसुम्भ के खेत हेराइ गयी।।[8]

(5)

बालम के बिछुरे बढ़ी बाल को व्याकुलता बिरहा दुखदान ते।
चौपरि आनि रची 'नृप सम्भु' सहेलिनि साहेबिनी सुखदान ते।
तौ जुग फूटै न मेरी भटू यह काहू कही सखिया सखियान ते।
कंज से पानि से पाँसे गिरे अँसुआ गिरे खंजन-सी अँखियान ते।[9]

(6)

मैलो करि डारत पीत पटै घर जान न दैये बुलावनो धावत।
लालहू मैलो ह्वै जात सदा अरी बारहि बार सनेह लखावत।
औरन सों बरु लीजै धुवाय ह्वै यों 'नृप सम्भु जू' धोय न आवत।
तूँ कलपावत साँवरे रंगनि साँवरो रंग नहीं कलपावत।।[10]

---

8. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1645, पृ. 573
9. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1646, पृ. 573-574
10. (क) छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : सुन्दरी सर्वस्व (सम्पादक मन्नालाल 'द्विज') : प्रथम संस्करण 1885 ई., पृ. 308।
    (ख) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र : सुन्दरी तिलक : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई : संस्करण 1937 ई., पृ. 68।
    (ग) किंचित परिवर्तन के साथ यही छन्द राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' कृत 'विद्वन्मोदतरंगिणी' में भी है। सम्पादक डॉ. किशोरीलाल : विद्वन्मोदतरंगिणी : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1991 ई., छन्द सं. 341, पृ. 156

(7)

आवत सीस किरीट धरे औ भरे सब केसरि की तन पी रज।
नैन फबे पलकै मै दबे जनु जानि प्रभात खुल्यौ चाहे नीरज।
नीठि कै बैन कढ़ै मुख ते 'नृप सम्भु जू' जैसे पढ़ै सिसु कीरज।
अंगन अंगन फैलि रह्यौ कछु काम ते कोप सकोच ते धीरज।।[11]

(8)

पीर गँभीर उठी तिय के छतिया मनौ सीत समीरन चीरी।
आँसु परे गिरि आँखिन तैं अरु खात परी कर तें गिरि बीरी।
देह दही बिरहानल सम्भु गही हिय स्याम सनेह अहीरी।
कुंजनि में न लख्यौ जब लाल गयी परि बाल कपोलन पीरी।।[12]

(9)

पीतम गौन सुन्यौ री जबै 'नृप सम्भु' तबै बिपरीत बिचारति।
आनन इन्दु सो बैन सुधा बरसाइ कै मानो दँवारि-सी बारति।
बारि ते बारिज को जनमै यह वारिज-नैननि बारि को ढारति।
जा मन ही तैं मनोज कढ़्यौ मन को तिय बोरि मनोज मैं डारति।।[13]

(10)

लाल बिदेस ते आये जबै 'नृप सम्भु' अनंग करे सर घात है।
पीरी भई तन धीर धरैं मुख पीर की जाहिर होति न बात है।

---

11. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : सतकविगिराविलास (सम्पादक डॉ. शिवगोपाल मिश्र) : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 2001 ई., छन्द सं. 178, पृ. 61
12. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : सतकविगिराविलास, छन्द सं. 413, पृ. 105
13. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : सतकविगिराविलास, छन्द सं. 537, पृ. 128

ध्यानु करै जब ही पिय को बड़े कोपन ते अँसुआ सरसात है।
आरद होती नहीं बरुनी बढ़ि पारद लौं बहुरौ फिरि जात है।।[14]

उपर्युक्त सवैयों का प्रपठन करते समय बिलकुल भी पता नहीं चलता कि ये सवैये किसी मराठीभाषी नरेश की लेखनी से रचे गये हैं। कहाँ समरांगण का रण-कौशल और कहाँ शब्दों की कारीगरी! दोनों ही कलाओं में छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले को महारत प्राप्त है। ब्रजभाषा के सवैये नृप शम्भु के मनोभावों के सम्मुख हाथ जोड़े प्रतीत होते हैं। जिस कला-कौशल के साथ नृप शम्भु ने सवैयों का प्रणयन किया है, वही कौशल उनके घनाक्षरी छन्दों में भी दृग्गत होता है। छन्दों का शाश्वत प्रवाह, भाषा का खिला खिला रूप और भावों की मनोहर ताज़गी नृप शम्भु की कविता में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। घनाक्षरी का एक बोलता हुआ चित्र द्रष्टव्य है-

अंगराग जानति न, सारिन के पट रँगे-
केसरि के भ्रमनि पखारै सारी सेति है।
अधर खटाई लै घसत, क्यों ललाई जाइ,
अरुन सुभाव ही कबै धौं यह चेति है।
नैन प्रतिबिम्ब परै आरसी महल मध्य,
'सम्भुराज' द्वारन कपाट दै दै लेति है।
खंजरीट जानि दौरि दौरि गहै आनि जब,
मूठी परै झूठी तब छोड़ि छोड़ि देति है।।[15]

ज्ञातयौवना नायिका की मनोदशा को रेखांकित करता नृप शम्भु का एक घनाक्षरी छन्द और भी द्रष्टव्य है-

सखिन पैं जान लागी काम की कथान लागी,
चरचा सोहान लागी केलि के भवन की।

---

14. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : सतकविगिराविलास, छन्द सं. 552, पृ. 131
15. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1644, पृ. 573

आँखैं बढ़ि कान लागी कानन मैं तान लागी,
मुरली हितान लागी नन्द के नँदन की।
भृकुटी नचन लागी कटि लचकानि लागी,
फूलन रचन लागी रचना कचन की।
देखि सकुचन लागी कान्हहि रुचन लागी,
थाती-सी सुचन लागी छाती सकुचन की।।[16]

छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' का शासनकाल 20 जुलाई, 1680 ई. से 11 मार्च, 1689 ई. तक रहा। अपने शासन के अन्तिम समय में छत्रपति सम्भाजीराजे को छल से मुक़र्रब ख़ां ने क़ैद कर लिया। जिस समय धर्मवीर छत्रपति सम्भाजीराजे एवं कवि कलश को लेकर मुक़र्रब ख़ां छावनी के पास आया, उस समय औरंगज़ेब ने उसके स्वागत के लिए सरदार ख़ान को भेजा। सम्भाजीराजे वास्तव में पकड़े गये यह देखकर बादशाह औरंगज़ेब को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अल्ला के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु बादशाह तख़्त से नीचे उतरा एवं घुटने टेककर 'रूकता' कहने लगा। कवि कलश बाजू में ही ख़डे थे। यह दृश्य देखकर कवि कलश के श्रीमुख से निम्नलिखित पंक्तियां निःसृत हुईं –

यावन रावन की सभा सम्भु बँध्यो बजरंग।
लहू लसत सिन्दूर सम खूब खेल्यो रनरंग।।
जो रवि छवि लछत ही खद्योत होत बदरंग।
त्यों तुव तेज निहारि ते तखत त्यज्यो अवरंग।।

अर्थात् जिस प्रकार रावण की सभा में हनुमानजी को लाया गया था, उसी प्रकार सम्भाजीराजे को औरंगज़ेब के समक्ष उपस्थित किया गया है। जैसे हनुमानजी की देह पर सिन्दूर शोभित होता है, वैसे ही भीषण युद्ध में देह रक्त से सन गयी है। इसलिए हे राजन! तुझे यह सुशोभित कर रहा है। जिस प्रकार सूरज को देखते ही जुगनू का प्रकाश नष्ट होता है, उसी प्रकार तेरा तेज देखकर औरंगज़ेब ने अपने सिंहासन का त्याग किया है। इस कविता से अपमानित होकर

---

16. छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' : सतकविगिराविलास, छन्द सं. 112, पृ. 48

औरंगज़ेब ने कवि कलश की जिह्वा काटने की आज्ञा दी। बादशाह के समक्ष ख़डा करने पर इखलास ख़ान द्वारा बार बार अभिवादन करने को कहने पर भी सम्भाजीराजे ने तनिक भी गर्दन नहीं हिलायी एवं बादशाह को थोड़ा भी महत्त्व नहीं दिया। इसके विपरीत वे सन्तप्त होकर बादशाह की ओर देख रहे थे। इससे सन्तप्त होकर बादशाह ने उन्हें उसी अवस्था में कारागृह में डालने का आदेश दिया।

सम्भाजीराजे एवं कवि कलश की आँखों में तपती सलाखें घुमाकर उनकी आँखें फोड़ी गयीं। तत्पश्चात् दोनों की जिह्वाएँ काटी गयीं। उस दिन से दोनों ने अन्न-जल का परित्याग कर दिया। मुसलमानी शासन की परम्परा के अनुसार यह कोई नयी बात नहीं थी। उनको अत्यन्त क्रूरता एवं निर्दयता से शत्रु का नाश करने की धर्माज्ञा ही है, परन्तु एक स्वतन्त्र राजा को ऐसी ही क्रूर पद्धति से हलाहल करना अमानवीयता की चरमसीमा है। यह घटना 17 फ़रवरी, 1689 ई. को घटित हुई। तदुपरान्त कविराज कलश के हाथ, पाँव काटे गये। कवि कलश के मारे जाने का समाचार सर्वत्र फैल गया था। मानों कवि कलश पर होनेवाले अत्याचार छत्रपति सम्भाजीराजे पर किये जानेवाले प्रत्येक अत्याचार का पूर्वप्रयोग ही था।

12 मार्च, 1689 को गुड़ीपड़वा (नववर्षारम्भ) था। हिन्दुओं के त्यौहार के दिन उनका अपमान करने के लिए 11 मार्च फाल्गुन अमावस्या के दिन सम्भाजीराजे की हत्या कर दी गयी। उनका मस्तक भाले की नोक पर लटकाकर सर्वत्र घुमाकर मुग़लों ने छत्रपति सम्भाजीराजे के मृत शरीर का अत्यधिक अपमान किया। इस प्रकार 1 फ़रवरी से 11 मार्च तक 39 दिन की यमयातना सहन कर सम्भाजीराजे ने हिन्दुत्व के तेज को बढ़ाया। धर्म के लिए अपने प्राणों को न्योछावर करनेवाले, हिन्दवी स्वराज्य का विस्तार कर पूरे हिन्दुस्तान में भगवा ध्वज फहराने की इच्छा रखनेवाले सम्भाजीराजे भारतीय इतिहास में अमर हो गये हैं, जबकि औरंगज़ेब इतिहास न्यायालय में राजधर्म को पैरों तले रौंदनेवाला अपराधी बन गया है।

धर्मवीर छत्रपति सम्भाजीराजे के बलिदान के कारण महाराष्ट्र उत्तेजित हो उठा। औरंगज़ेब के साथ मराठों का निर्णायक संघर्ष आरम्भ हुआ। 'पत्ते पत्ते की तलवार बनी और घर घर किला बन गया, घर घर की माताएँ-बहनें अपने पतियों

को सम्भाजीराजे के बलिदान का प्रतिशोध लेने को कहने लगीं।' सम्भाजीराजे के बलिदान के कारण मराठों का स्वाभिमान पुनः जागृत हुआ। महारानी येसुबाई, तारारानी, सन्ताजी घोरपडे, धनाजी जाधव, रामचन्द्रपन्त अमात्य, शंकराजी नारायण के समान मराठा वीर–वीरांगनाओं का उदय हुआ। यह तीन सौ वर्ष पूर्व के राष्ट्रजीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गाथा है। इससे इतिहास को एक नया मोड़ मिला। जनता की सहायता और विश्वास के कारण मराठों की सेना बढ़ने लगी और सेना की संख्या दो लाख तक पहुँच गयी। सभी ओर प्रत्येक स्तर पर मुग़लों का घोर विरोध होने लगा। अन्त में 27 वर्ष के निष्फल युद्ध के उपरान्त औरंगज़ेब का अन्त हुआ। मुग़लों की सत्ता–शक्ति क्षीण होने लगी एवं हिन्दुओं के शक्तिशाली साम्राज्य का उदय हुआ। निश्चय ही छत्रपति सम्भाजीराजे भोंसले 'नृप शम्भु' के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व में लेखनी और कृपाण का अद्‌भुत समन्वय है। ऐसे वीरवृत्तिवाले रसिक कवियों की अग्रिम पंक्ति में छत्रपति सम्भाजीराजे का कवि–कर्म सदैव आदर के साथ स्मरणीय है।

❑❑

राजा हिम्मत सिंह 'महीपति'

भारतीय नरेशों के वीरताख्यान से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। चारणों की वीर-वाणियों में क्षत्रिय नृपतियों की शौर्यगाथाएँ सुरक्षित हैं। वंशानुगत वीरता के लिए जगत्प्रसिद्ध रहे क्षत्रिय-कुलावतंस नरपतियों ने केवल समर-पत्र पर कृपाण से विजय-गीत ही नहीं लिखे हैं, अपितु वास्तु एवं स्थापत्य के साथ साथ अक्षर ब्रह्म की उपासना में भी सिद्धि प्राप्त किये हैं। वस्तुतः भारतीय नरेशों का विद्यानुराग विश्व-विख्यात रहा है। ऐसे ही विद्यानुरागी कवि-नरेशों की पंक्ति-पावन शृंखला में 'कविकुलतिलकप्रकाश' के यशस्वी रचनाकार, कछवाहा वंश के शिरोभूषण, अमेठी के लोकप्रिय शासक राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' का नाम आदर के साथ लिया जाता है। महाराज सोढ़देव (966-1007 ई.) के द्वारा स्थापित अमेठी के कछवाहा वंश के 23वें शासक राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' राजा उदित सिंह उपाख्य जय सिंह (1654-1669 ई.) के पौत्र, राजा पहाड़ सिंह (1669-1709 ई.) के पुत्र एवं 'भूपति सतसई' के यशस्वी कृतिकार राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' (1741-1774 ई.) के पिता थे। राजा हिम्मत सिंह पिता की मृत्यु के उपरान्त सन् 1709 ई. में अमेठी के राज सिंहसन पर आरूढ़ हुए। इनका राजत्वकाल सन् 1709 ई. से सन् 1741 ई. तक था। राजा हिम्मत सिंह का परिचय देते हुए अमेठी राज्य के इतिहासकार ठाकुर उमानाथ सिंह लिखते हैं- 'इनके तीन विवाह हुए थे। पहला विवाह बछगोतियों के यहाँ, दूसरा गौतमों के यहाँ तथा तीसरा चौहानों के यहाँ हुआ था। इन्होंने रायपुर के पास एक ग्राम बसाया, जो आज भी 'कटरा राजा हिम्मत सिंह' के नाम से प्रसिद्ध है। ये बड़े अच्छे कवि थे। 'महीपति' नाम से इन्होंने हिन्दी साहित्य की बड़ी सेवा की है। 'कविकुलतिलकप्रकाश' इनकी उच्चकोटि की पद्य रचना है,

जो हिन्दी साहित्य की अनूठी पुस्तक है। अपनी परम्परा में यह ग्रन्थ अद्वितीय है। गुरुदत्त सिंह तथा छत्रपाल सिंह इनके दो पुत्र थे।'[1]

राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' का संस्कृत, अवधी, ब्रजभाषा, उर्दू एवं फ़ारसी पर समान अधिकार था। शक्ति के उपासक कवि-नृपति 'महीपति' के शासनकाल में चतुर्दिक् सुख-शान्ति और धार्मिकता का वातावरण था। राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' ने विक्रमाब्द 1766 (1709 ई.) के भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि, गुरुवार को रायपुर (गढ़ अमेठी) में 'कविकुलतिलकप्रकाश' के लेखन का श्रीगणेश किया। इसी वर्ष महीपति का राज्याभिषेक भी हुआ था। राज्यारम्भ और काव्यारम्भ का यह संयोग अकारण नहीं है। वस्तुतः भारतीय नरेशों के संवेदनशील मानस में लोकमंगल की इतनी गहरी छाप रही है कि उसकी व्यापक परिधि में ललित कला की लगभग प्रत्येक परम्पराएँ समाहित हो गयी हैं। कविता लिखने के लिए व्यक्ति को अत्यन्त भावुक, सृजनशील, संवेदनशील और वात्सल्य से परिपूर्ण होना चाहिए। क्रूर, लोभी, लम्पट, विध्वंसक और शोषकवृत्ति का व्यक्ति और चाहे जो कुछ हो जाय, किन्तु वह कवि नहीं हो सकता। भारतीय नरेशों की काव्य-साधना उनकी प्रजा-वत्सलता का सबसे पुष्ट प्रमाण है। इसी प्रजा-वात्सल्य के कारण ही अमेठी-नरेश हिम्मत सिंह 'महीपति' के हाथ में जैसे ही शासन की वल्गा आती है, वैसे ही उनका सृजनधर्म गतिशील हो जाता है। राज्यारम्भ और काव्यारम्भ वस्तुतः लोकमंगल के ही दो छोर हैं। लोकमंगल की इसी चेतना से प्रेरित होकर महीपति ने अपनी काव्य-कला को गढ़ा है। लगभग तेरह सौ छन्दों में रचित 'कविकुलतिलकप्रकाश' हिन्दी-काव्यशास्त्र का अमूल्य रत्न है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित रूप में 'भूपति भवन' अमेठी के ग्रन्थागार में विद्यमान है। यही कारण है कि हिन्दी के साहित्येतिहासकार इस ग्रन्थ के विषय में मौन हैं।

'कविकुलतिलकप्रकाश' 22 प्रकाश में विभक्त है। भारतीय काव्यशास्त्र के

---

1. ठाकुर उमानाथ सिंह : अमेठी राजवंश का संक्षिप्त इतिहास : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, अमेठी, सुलतानपुर : प्रथम संस्करण 1979 ई., पृ. 89

इतिहास में एक अद्वितीय रत्न के रूप में अपने अस्तित्व को स्थापित करनेवाले 'कविकुलतिलकप्रकाश' का शुभारम्भ करते हुए राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' सर्वप्रथम आदिशक्ति के चरणारविन्द का चिन्तन करते हैं–

सरोज समान सब सोभा के निधान सोहै,
मानस में भीजे सुरसरित के पानी के।
केसर कलित तहाँ केसर समान रूप,
किरन! कदम्ब जगदम्ब महादानी के।
किसलय कोमल अरुण अरविन्द सम,
जावक बिना हूँ जगमग महारानी के।
असरन सरन दरन दीह दुक्खन के,
भू में भय हरत चरन हैं भवानी के।।[2]

आध्यात्मिक छाया और धार्मिक वातावरण में पले–बढ़े राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' ने अपने लक्षणग्रन्थ 'कविकुलतिलकप्रकाश' में न केवल आदिशक्ति का स्मरण किया है, अपितु राधारमण भगवान् श्रीकृष्ण और पार्वतीनन्दन विघ्नेश्वर गणेश का भी वन्दन किया है। राधारमण का प्रीतिपूर्वक स्मरण करते हुए राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' लिखते हैं–

बरनत राधारमन को, कहूँ कहूँ रघुनन्द।
कविकुलतिलकप्रकाश पढ़ि, बाढ़ै सदा अनन्द।।[3]

भवानी और कृष्ण की वन्दना तो कवि ने अपने उपास्य के रूप में की है, किन्तु ग्रन्थ के प्रारम्भिक तीन छन्दों में पार्वतीनन्दन की सुन्दर और सुरुचिपूर्ण वन्दना करके महीपति ने भारतीय परम्परा का भी पालन किया है–

चारि भुजा अरु चन्द्रलिलार लसै रद एक महा सुमती को।
दै मुखमण्डल वन्दन वेष धरे ही उदार बड़े ही जती को।
सेवत जाहि सदा सनकादिक या सुनि आनि करै बिनती को।
आदि 'महीपति' को सुखदायक लायक पूत हैं पारबती को।।[4]

---

2. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 131
3. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 132
4. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 112

'कविकुलतिलकप्रकाश' के प्रथमालोक में राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' ने शृंगार का रसराज रूप में वर्णन किया है। उसके देवता, वर्ण एवं स्थायी भाव 'रति' आदि का विधिवत निरूपण करने के बाद महीपति ने लक्षणोदाहरण का सृजन किया है। पहले लक्षण दिये गये हैं और बाद में उदाहरण। प्रथमालोक नायिका-भेद विषयक है। कवि-नृपति महीपति ने पहले स्वकीया, परकीया और सामान्या नायिका का निर्देश करने के बाद स्वकीया को मुग्धा (अंकुरितयौवना), 'ज्ञातयौवना', 'अज्ञातयौवना', 'नवोढ़ा', 'विश्रब्ध नवोढ़ा', 'मध्या', 'प्रगल्भा', 'रतिप्रीता', 'आनन्दसम्मोहिता', 'धीरा', 'अधीरा', 'धीराधीरा', 'ज्येष्ठा', 'कनिष्ठा' प्रभृति नायिकाओं का लक्षण प्रतिपादित किया है। यहाँ मध्या नायिका का लक्षणोदाहरण द्रष्टव्य है-

लक्षण

लाज काम जाके जहीं, तन में होत समान।
ताही सों सब कहत हैं, मध्या सुकवि सुजान।।

उदाहरण

लाज सो जाइ नहीं उत देख्यौ औ देखे बिना कल नेक न पावै।
प्यारे को आनन चन्द समान लखै सखि नैन-सरोज लजावै।
सोचति जाहि नहीं ठहराति फिरै दिन राति यौं ब्यौंत बनावै।
लाज औ काम हिंडोरे चढ़्यो मन या सो सुझूमि दुहूँ दिसि आवै।।[5]

द्वितीयालोक में परकीया नायिका के भेदोपभेद का वर्णन किया गया है। 1. 'ऊढ़ा' (गुप्ता, विदग्धा, कुलटा, लक्षिता, अनुशयाना, मुदिता, उद्बुद्धा और उद्बोधिता), 2. 'अनूढ़ा', 3. 'गणिका' (रूपगर्विता, प्रेमगर्विता और अन्यसम्भोगदु:खिता), 4. 'विदग्धा' (वचनविदग्धा और क्रियाविदग्धा) आदि परकीया नायिका के प्रमुख भेद हैं। महीपति विदग्धा का लक्षणोदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

लक्षण

होति विदग्धा नारि के, परगट द्विविध विवेक।
वचनविदग्धा एक है, क्रियाविदग्धा एक।।

---

5. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 112

उदाहरण

फागुन के दिन बीति गये तब आइ गयी गुन गौरि सभागी।
फूलन को तिय साथ गयी तहँ लालहिं देखि भयी बड़भागी।
आगे सहेली गयी सिगरी चलि एक रही अति प्रेम सों पागी।
काँटो लग्यो पग यौं कहि कै ढिग ठाढ़िं ह्वै बाल बिलोकन लागी।।[6]

'कविकुलतिलकप्रकाश' के तृतीयालोक में नायिकाओं का पुनः अष्टधा वर्गीकरण किया गया है– 1. प्रोषितपतिका, 2. खण्डिता, 3. कलहन्तरिता, 4. विप्रलब्धा, 5. उत्कण्ठिता, 6. वासकसज्जा, 7. स्वाधीनपतिका और 8. अभिसारिका। इसके अतिरिक्त उत्तम, मध्यम, अधम, दिव्य, अदिव्य, दिव्यादिव्य आदि अगणित भेद भी बताये गये हैं। प्रोषितपतिका के भी स्वकीया, परकीया एवं सामान्या भेद निर्धारित करके कवि–नरेश हिम्मत सिंह 'महीपति' ने स्वकीया प्रोषितपतिका के मुग्धा, मध्या एवं प्रौढ़ा आदि उपभेद भी बताये हैं। खण्डिता, कलहन्तरिता, अभिसारिका आदि के भी भेदोपभेद वर्णित हैं। प्रायः रीतिकाल के सभी आचार्यों ने नायिका–भेद के अन्तर्गत इन नायिकायों का लक्षण निरूपित किया है। वस्तुतः नायिका–भेद के माध्यम से किया गया यह वर्गीकरण भोग–विलास से प्रेरित होकर केवल नारी–देह की परिक्रमा नहीं करता, अपितु स्त्री–मनोविज्ञान का अनूठा उदाहरण भी प्रस्तुत करता है। राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' के द्वारा प्रतिपादित 'उत्कण्ठिता नायिका' के लक्षण और उदाहरण से इस तथ्य की पुष्टि होती है–

लक्षण

काहे ते आयो न पिय, यह जु बिचारै बाम।
कम्पन तन जृम्भन सहित, उत्कण्ठिता सुनाम।।

उदाहरण

प्यारे को रोज रिझायो है मैं अरु मोहूँ को रोज रिझायो है प्यारे।
आये अजौं न धौं कैसे भयो मन आवेन और विचार विचारे।

---

6. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 112–113

जानति हौं पिय आजु कहूँ परतीय को दोष सुन्यो निरधारे।
रोज पुरान पढ्यो‌ई करै यह पाँड़े तो पैड़े पर्‌यो है हमारे।।[7]

चतुर्थालोक में शृंगार के संयोग-वियोगादि भेदों का निरूपण हुआ है। राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' ने विरह-दशाओं के अन्तर्गत अभिलाषा, गुण-कथन, स्मृति, चिन्ता, जड़ता, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि एवं मरण का सुन्दर और वैज्ञानिक निरूपण करने के साथ साथ 'मान' की भेदत्रयी-लघुमान, मध्यमान एवं गुरुमान को भी लक्षण लक्षित किया है। यहाँ 'उन्माद' का लक्षणोदाहरण प्रस्तुत है-

लक्षण

ह्वै उत सोक सँताप ते, करत कछू व्यापार।
ताही सों उन्माद कवि, बरनत बारहिं बार।।

उदाहरण

लागती हैं न पलकैं पल को विभावरी में,
रहित विकल भई तनु तनुताई है।
दीरघ उसाँसै लैके कम्पति है बार बार,
दिक्खै ध्रुव रेख मुख पीरी परि आई है।
कहत 'महीप' परी तलफति है सेज पर,
अंगनि में बिरह की अगिनि जनाई है।
रोवै करबीन लैके परम प्रवीन तिय,
थोरई दिननि माँह कौने धौं सिखाई है।।[8]

पंचम आलोक में नायिका की प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है। उत्तमा, मध्यमा और अधमा के भेदोपभेद वर्णित किये गये हैं। सखी की विविध भूमिकाएँ निरूपित हुई हैं। शृंगार-मण्डन, ओराहना, शिक्षा, परिहास आदि के सुन्दर बिम्बों की आयोजना कवि-नरेश महीपति की कल्पनाशीलता और सहृदयता को प्रदर्शित करती है। दूती-कर्म का मनोवैज्ञानिक वर्णन हुआ है। दूती द्वारा विपरीत रति का

---

7. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 113
8. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 113

चित्र बनाकर नायिका को दिख़ाने तथा नायिका के लज्जित होने का सुन्दर चित्र कवि–नरेश महीपति की लेखनी से मुखरित हुआ है–

नीचे की ओर बनाइ भले बिधि सों रचनाह की मूरति कीन्ही।
ऊपर सूरति सुन्दरि की रचि दीन्ही सखी बिधि सों चित चीन्ही।
या बिधि चित्र लिखी बिपरीत देखाइ अली भरि लोचन लीन्ही।
ताही समै फिरिकै तिरछे मुसुकाइ तिया अँगुरी मुख दीन्ही।।[9]

षष्ठ आलोक में नायक के भेदोपभेद वर्णित हैं। शठ नायक का लक्षणोदाहरण द्रष्टव्य है–

लक्षण

अपनी चातुरता पिया, रसिक कपट पटु होइ।
छलही सों रस रति करै, बल ही सठ है सोइ।।

उदाहरण

फूलन को माल पहिरावत है कण्ठ माँहिं,
कपट सों बोल बोलि सुधा बरसत है।
दूसरे बनाइ डारे मुकता को हार हिये,
छल सों नागर नाभि–कूप दरसत है।
कहत 'महीप' चतुराई वाकी कहा कहौं,
बातन सुधारि सुधा रस सरसत है।
फेरि फेरि अँगिया की तनी कसिबे के मिस,
दुहूँ कर प्यारी के उरोज परसत है।।[10]

सप्तामालोक में प्रियदर्शन–भेद के आधार पर नायिका में उत्पन्न होनेवाले पूर्वानुरागों का वर्णन किया गया है। इसके चार भेद बताये गये हैं– 1. शास्त्रानुमोदित–स्वप्नदर्शन, 2. चित्र–दर्शन, 3. प्रत्यक्षदर्शन एवं 4. गुणश्रवण। इसी आलोक में हावों का भी वर्णन है। शास्त्रों में हाव के दस भेद वर्णित हैं – 1.लीला, 2.

---

9. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 114
10. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 114

विलास, 3. विच्छित्ति, 4. विभ्रम, 5. किलकिंचित्, 6. मोट्टायित, 7. कुट्टमित, 8. बिब्बोक, 9. ललित तथा 10. विह्वत। यहाँ किलकिंचित् हाव का लक्षणोदाहरण प्रस्तुत है–

लक्षण

श्रम भय काम सु गर्व रिसि, इनको संकर होइ।
किलकिंचित् सो हाव है, बरनि कहै सब कोइ।।

उदाहरण

ज्यों ज्यों सुधा बरसति बैननि में बोलि बाम,
त्यों त्यों बढ़ै रुचि रीति अधिकाति है।
छोरन न देति तनी अँगिया की रमनीय,
त्रिवली ललित कर छुवत डेराति है।
कहत 'महीप' होति कल धुनि नूपुर की,
सिसकति बार बार बाल हा हा खाति है।
हँसि तिरछौंहैं सोहैं नेसुक रिसौहैं नाक,
नैन के ललौहैं प्यारी भौंहनि रिसात है।।[11]

'भौंहनि रिसात है' लिखकर राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' ने दाम्पत्य के जिस उत्कृष्ट पक्ष को रेखांकित किया है, उसका अनुभव भारतीय परम्परा और संस्कार को माननेवाले ही कर सकते हैं। अष्मालोक में भावों का वर्णन किया गया है। नवमालोक में विभाव का कथन है। दशमालोक में अनुभावों का विवेचन है। यहाँ करुण रस का अनुभाव दर्शनीय है–

कोमल कमल माल मुदित मलीन छवि,
तैसिए बनायी आयी छीनताई छन में।
लोयन बिलास बर चलै बारि धारा तामै,
करत गमन जब थके छन छन में।
कहत 'महीप' ताकि पन्थ महादीन दसा,
बाट के बटोहिन के दुःख भयो मन में।

---

11. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 114

सूरति मधुर रघुवीर रामचन्द्र जू की,
देखि बन जात बनजात जात बन में।।[12]

उपर्युक्त वर्णन जहाँ कविता के भाव-पक्ष की दृष्टि से परम रमणीय है, वहीं अलंकार-सौष्ठव आदि कला-पक्ष की दृष्टि से भी कमनीय है। इसमें राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' का आचार्यत्व पूर्णतः मुखरित हुआ है।

एकादश आलोक में अश्रु, कम्प, रोमांच, स्तम्भ, स्वरभंग, पुलक, वैवर्ण्य, प्रलय प्रभृति सात्विक भावों का वर्णन किया गया है। सबके लक्षण पृथक् पृथक् वर्णित हैं, किन्तु एक ही उदाहरण में समस्त भावों को समाहित कर लिया गया है-

भई बिबरन छबि बदन भयंकर पर,
भये निरभय नीके नैन अनियारे हैं।
आये स्वेद सीकर हैं प्रगटि उरोज तट,
रही ह्वै अचल महिं बोल भरे भारे हैं।
पुलकित तन वर कम्पत अधर लाल,
हाल बाल बिहवल अंग विकरारे हैं।
सुन्दरि नबेली सखि जाइकै सँवारे कहूँ,
गैल में निहारे मनमोहन पियारे हैं।।[13]

द्वादश आलोक में हास्य, श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक एवं शान्त आदि आठ रसों; त्रयोदश आलोक में कान्ता, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स एवं ललित आदि रस-दृष्टियों; चतुर्दश आलोक में रसजन्य जनक भावों; पंचदश आलोक में एकांग प्रीति, रसाभास, भावाभास आदि वृत्तियों; षोडशालोक में काव्य के गुण-दोषों; सप्तदश आलोक में ख्याति एवं काव्य-गुणों; अष्टादश आलोक में अलंकारों एवं ऊनविंशालोक में रीति, वृत्ति एवं शब्द-शक्तियों का विवेचन किया गया है। विंशालोक, एकविंशालोक एवं द्वाविंशालोक में छन्दों का विवेचन किया गया है । अन्तिम आलोक की समाप्ति के साथ राजा

---

12. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 115
13. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 115-116

हिम्मत सिंह 'महीपति' ने षोडश शृंगार, द्वादश आभरण तथा काव्य-प्रशंसा आदि का भी वर्णन किया है। षोडश शृंगार का वर्णन द्रष्टव्य है-

मज्जन रुचिर चीर तिलक सुधारि दीजै,
नैननि को अंजनु औ श्रवनु को भूषि देत।
नथुनी है नाक पर हिय में ललित हार,
फूलनि सों चिकुर सँवारे सब सुख देत।
कंचुकी कुचनि राखि किंकिनी है कटि तट,
चन्दन को लेप औ सुरभि अंग कै सचेत।
कंकन करति पग नूपुरनि मुख वासु,
चातुरी औ सोरह सिंगारन को है निकेत।।[14]

वस्तुतः राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' कृत 'कविकुलतिलकप्रकाश' रीति-परम्परा का सर्वांग-निरूपक लक्षणग्रन्थ है। आचार्य केशवदास, चिन्तामणि, महाकवि देव, मतिराम, भूषण, महाराज जसवन्त सिंह प्रभृति आचार्यों की गौरवशाली पंक्ति में 'कविकुलतिलकप्रकाश' के कारण कविर्नृपति हिम्मत सिंह 'महीपति' का स्थान सुरक्षित है। पश्चिमी प्रभाव में आकर आधुनिककाल में भारतीय नरेशों का नकारात्मक मूल्यांकन किया गया। सोचे-समझे षडयन्त्र के तहत जानबूझकर भारतीय नरेशों को शोषक-उत्पीड़क सिद्ध किया गया। वस्तुतः पश्चिमी सामन्तवाद के सिद्धान्त को मानक बनाकर भारतीय नरेशों का मूल्यांकन करना उचित नहीं है। वास्तुकला, साहित्य, संगीत और कला की अनेक विधाएँ भारतीय नरेशों के संरक्षण में ही विकसित हुई हैं। भारत में राजा को विष्णु का प्रतिनिधि मानने की परम्परा इन्हीं कलाओं के संरक्षण और लोकमंगल से सम्पृक्त है। निश्चय ही राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' इसी परम्परा के शीर्ष पर प्रतिष्ठित हैं।

❑❑

---

14. राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' : कविकुलतिलकप्रकाश : तदेव, पृ. 121

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर'

भारतीय वसुन्धरा अनेक गुणी विद्याव्यसनी शासकों की यशश्चन्द्रिका से आप्लावित रही है। भारत के ऐसे ही उदारमना शासकों की परम्परा में एक उज्ज्वल नाम है पश्चिमी समुद्र से आवृत कच्छपाकृति के समान उन्नतोदर राज्य कच्छ-भुज[1] के जाडेजा वंशीय शासक और विश्व की अन्यतम ब्रजभाषा काव्यशाला के संस्थापक महाराव श्री लखपति सिंह का। महाराव श्री लखपति सिंह के सन्दर्भ में प्रथित है कि चन्द्रमा की षोडश कलाएँ हैं, जो निरन्तर घटती-बढ़ती रहती हैं; किन्तु लखपति रूपी चन्द्र ने अपने देश में प्रजा के सन्ताप को शान्त करने के लिए उत्तरोत्तर वृद्धि करनेवाली कलाओं का संस्थापन किया। उन्होंने योग्य पाठशाला की स्थापना कर उत्तम ब्रजभाषा का प्रचार अपने देश में किया। उन्हें ब्रजभाषा का अच्छा ज्ञान था। इसी कारण सत्पुरुषों की वाणी अद्यतन उनकी प्ररोचना करती है।[2]

---

1. कच्छ-भुज का प्राचीन नाम आभीर देश है। पूर्वकाल में कच्छपाकृति की तरह होने के कारण इसे मात्र 'कच्छ' कहा जाता था। कालान्तर में सिन्धुदेश के शासक सिन्धु वर्मा के पौत्र श्रीपति वर्मा ने कच्छदेश की राजकन्या से विवाह किया। श्रीपति वर्मा के पुत्र भुज वर्मा ने शबरों को पराभूत कर अपने नाम से 'भुजदेश' बसाया (भविष्यपुराण-3/4/3/25-31)। तभी से कच्छ-भुज की युति हुई। कच्छ का प्राचीनतम निर्देश जूनागढ़-अभिलेख में प्राप्त होता है-

   मरुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैस्तथा।
   कच्छीयाश्च सुराष्ट्रश्च आनर्ताश्चर्वदैः सह।।

2. राज्ञा तेन स्वविषय चित्तं सन्ताप शान्तये।
   वर्धमाना अविच्छिन्ना स्थापिताः बहुलाकला।। ⟶

महाराव लखपति सिंह का कच्छ के जाडेजा (वस्तुतः यदुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ के वंशज) वंशीय शासकों में अन्यतम स्थान है। इनकी प्रथितकीर्ति का आधार इनका भव्य व्यक्तित्व, इनकी विलक्षण मेधा एवं अप्रतिम काव्य-कलाप्रियता है। महाराव श्री लखपति सिंह के साहित्य-संसार पर दृष्टिक्षेप करने के पूर्व स्वयं उनके वैयक्तिक जीवन के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त करना अप्रासंगिक न होगा। प्रथितकीर्ति होते हुए भी महाराव लखपति सिंह के जीवन के सन्दर्भ में प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है। उनकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। उनकी आयु को ही प्रमाण मानकर उनके जन्मकाल को निर्धारित किया जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान् सर चार्ल्स वाल्टर ने महाराव लखपति सिंह की आयु 54 वर्ष माना है।[3] महाराव लखपति सिंह का देहावसान विक्रमाब्द 1817 (1760 ई.) में हुआ था; इस दृष्टि से सर चार्ल्स वाल्टर द्वारा निर्दिष्ट आयु-प्रमाणानुसार महाराव लखपति सिंह का जन्मकाल विक्रमाब्द 1763 (1706 ई.) फलित होता है। इसी मत का प्रतिपादन परवर्तिकालिक आंग्ल विद्वानों ने भी किया है।[4] प्रसिद्ध कवि एवं गुजराती भाषा-साहित्य के विद्वान् गोविन्द गिल्लाभाई ने भी उपर्युक्त मत को पुष्ट किया है।[5] कच्छ के स्थानीय ऐतिह्यविदों ने महाराव लखपति सिंह की सम्पूर्ण

→ परिकल्प्य पाठशाला सद्ब्रज वाचं प्रचारयाभास।
स्वयं मध्यगीष्ट चात स्तुवन्ति सद्ब्रज गिरस्त मद्यायि।।
– पण्डित ज्येष्ठानन्द मुकुन्दजी : कच्छमहोदय, श्लोक संख्या 54-55

3. द्रष्टव्य Sir Charles Walter : Selection from the records of the Bombay Government, No. 15, New Series, Page 109

4. (क) Bombay Gazetteer, volume-VI, Page 141

(ख) L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend: A Study in Indian Local Loyalties, Page 136

5. 'कच्छदेश के महाराव श्री देशलजी के ईस्वी सन् 1707 में एक कुमार जन्मा। उसका नाम लखपति सिंह रखा गया।..... वह जब 34 वर्ष के भये तब उनके बाप की हयाती में आप ईस्वी सन् 1741 में गद्दी पर बैठे।'-गोविन्द गिल्लाभाई : भाषा कविन के टूँक जीवन-चरित्रो

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर'

आयु 44 वर्ष निर्धारित किया है। इस प्रकार उनका जन्म विक्रमाब्द 1773 (1716 ई.)निर्धारित होता है।[6]

उपर्युक्त दोनों मान्यताओं में एक दशक का अन्तर है। इसके परीक्षण का प्रथमतः प्रयत्न महाराव लखपति सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व पर शोधकार्य करनेवाले डॉ. कान्तिलाल शाह ने किया है। भुज के विद्वान् चारण राजकवि शम्भुदान अयाची के सौजन्य से डॉ. कान्तिलाल शाह ने सिद्ध किया है कि महाराव लखपति सिंह की कुल आयु 51 वर्ष थी। इनके अनुसार उनका जन्म विक्रमाब्द 1767 (1710 ई.) में हुआ माना जा सकता है। उन्होंने अपने मत के प्रतिपादनार्थ निम्नांकित दो प्रमाण प्रस्तुत किया है–

1. लखपति सिंह के आश्रित राजकवि कुँवर कुशल द्वारा प्रणीत 'लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय' संज्ञक ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्याधार पर–

।।छप्पय।।

बरस इकावन विमल अनुज प्रभु के जब आये।
पूरन आयु प्रमानि किये तब मन के भाये।
तुला करि तिहिं समय दानहुँ जगत कौं दीन्हें।
प्रजा नृपति हित पुन्य किये श्रवननि सुनि लीन्हें।
जप तप अनेक सुमता सहित ध्यान सदा शिव को धर्‌यौ।
पातक पजरि सब पिण्ड के कुन्दन तैं उज्ज्वल कर्‌यौ।।[7]

2. श्री शम्भुदान अयाची द्वारा प्राप्त महाराव लखपति सिंह के तीसवें वर्ष-प्रवेशोपलक्ष्य में बनी फलादेश पत्रिका– 'अथ श्रीमन्नृपति विक्रमादित्य समयात्संवत् 1796 वर्षे शालिवाहन शाके 1661 प्रवर्तमाने याम्यायनगते श्री सूर्योशर धृतौ सन्मांगल्यप्रदे श्रीअश्विन मासे शुक्ल पक्षे 8 घटी 16-59 परं नवमी वर्ष तिथौ शनिवासरे। उत्तराषाढ़ा घटी 47 पल 22 वर्ष मे सुकर्मा घटी 64/39 वालव करणे एवं पञ्चाङ्ग शुद्धोतद्दिने श्रीसूर्योदयाऊत

---

6. (क) द्विवेदी आत्माराम केशवजी : कच्छ देशनो इतिहास, पृ. 50
   (ख) जयराम जे. नयगाँधी : कच्छनो वृहद इतिहास, पृ. 103
7. कुँवर कुशल : लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय, छप्पय संख्या 33

घटी 26 पल 19/21/13 समये श्री चिरञ्जीवी धर्मधोरिधर गौ-ब्राह्मण प्रतिपाल भटत्रिंश-राजकुल-तिलक महाराजा कुँवर श्री लाखाजी कस्य वर्ष 30 प्रवेशः।।[8]

उपर्युक्त वर्षफल-पत्रिकानुसार महाराव लखपति सिंह जी का जन्म 28 सितम्बर, 1710 ईस्वी, मंगलवार, प्रातः 5 बजकर 9 मिनट पर होना प्रमाणित होता है।

महाराव लखपति सिंह कच्छ के लोकख्यात नरेश महाराव देशल जी के राजकुँवर थे।[9] उनकी माता का नाम राजमहिषी महाकुँवरि था। महाराव लखपति सिंह अत्यन्त रसिक एवं विलासी वृत्ति के थे। उनकी 9 रानियाँ और 25 उपपत्नियाँ थीं।[10] उनके बहुपत्नीत्व का उल्लेख प्रायः उनसे सम्बन्धित सभी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। महाराव लखपति सिंह के आश्रित राजकवि कुँवर कुशल द्वारा रचित ग्रन्थों में उनके जीवन पर विशेष प्रकाश डाला गया है। महाराव लखपति सिंह की उपपत्नियाँ नृत्य-संगीतादि-निपुणा-रूप-यौवनसम्पन्ना नायिकाएँ थीं। राजकवि कुँवर कुशल ने महाराव लखपति सिंह की अनेक उपपत्नियों का परिचय, उनकी विशिष्टताओं के साथ प्रस्तुत किया है।[11]

---

8. डॉ. कान्तिलाल शाह : महाराव लखपति सिंह जी-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 51 (अप्रकाशित शोधप्रबन्ध) : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला-उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 64

9. (क) महाकुँवर-सी लच्छिमी, देसल-सौं यदुमान।
लाजाषंम लखधीर सौ, सुत गौड़सौ सुजान।।
-कुँवर कुशल : लखपत-मंजरी-मान-माला
(ख) Bombay Gazetteer, volume-VI, Page 246
(ग) राम सिंह राठौर : कच्छनुं संस्कृति दर्शन, पृ. 57

10. सुघर रानियैं जदपि शुभ, बरनी लछिन बतीस।
तदपि लखपती के परम, पढ़ि गायिनि पच्चीस।।
-कुँवर कुशल : लखपत जससिन्धु

11. रतन जोम आछी खनी ककू कान्ति को राशि।
धरा इन्दु लषधीर कै षासा चारि खबासि।।
→ -कुँवर कुशल : लखपत जससिन्धु

नौ रानियों में से महारानी राजकुँवरि से उत्पन्न हुए युवराज गौड़जी महाराव लखपति सिंह जी के पश्चात् राज्याधिकारी बने थे। गौड़जी के अतिरिक्त उपपत्नियों से भी अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। इन अनौरस पुत्रों में मान सिंह, ख़ानजी, सबलसंग, कल्याणजी, मेधजी, कानजी प्रभृति का उल्लेख प्राप्त होता है।[12] महाराव लखपति सिंह जी की धनकुँवरि नाम्नी दुहिता का भी उल्लेख मिलता है, जिनका पाणिग्रहण संस्कार बड़ौदा राज्य के दामजीराव गायकवाड़ के साथ सम्पन्न हुआ था।[13].

⟶ (क) '.....और हिन्दुस्तानी एक नायकन गायन कला में महा प्रवीण थी। उन्होंने घर में रख ली थी। उन्हीं की और हिन्दी गवैये की सहायता से सुरतरंगिणी, मृदंग मोहरा, रससागर आदिक ग्रन्थ बनाये हैं.....।'–गोविन्द गिल्लाभाई : भाषा कविन के टूँक जीवन चरित्रो

(ख) रूप सची विधि विधि रची, जीवा पी कौ जीय।
मिलि मृदंग जा अंगुरिन, भयो रंग रमनीय।।
–कुँवर कुशल : लखपत जससिन्धु

12. (क) Selection from the records of the Bombay Government, No. 15, New Series, Page 204

(ख) द्विवेदी आत्माराम केशवजी : कच्छ देशनो इतिहास, पृ. 1–8

(ग) L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend: A Study in Indian Local Loyalties, Page 143-148

(घ) जयराम जे. नयगाँधी : कच्छनो वृहद इतिहास, पृ. 106

13. (क) Historical selection from Barodara state records, Volume-III (1790-1798), Page 297

(ख) L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend : A Study in Indian Local Loyalties, Page 143-148

इसके अतिरिक्त महाराव लखपति सिंह जी के अनुज कुँवर नौधन सिंह जी का भी उल्लेख मिलता है।[14]

महाराव श्री लखपति सिंह के सम्बन्ध अपनी माता राजमहिषी महाकुँवरि से स्नेहपूर्ण थे, किन्तु पिता महाराव देशलजी से नहीं। पिता-पुत्र का सम्बन्ध यद्यपि कभी मधुर नहीं था, किन्तु परवर्तिकाल में आर्थिक दृष्टि से वैमनस्य में निरन्तर वृद्धि होती रही; जो कभी कम नहीं हुई। परिणामतः लखपति सिंह ने पिता के हाथ से राजसत्ता हस्तगत कर लिया।[15] राजसत्ता को अवैधानिक रूप से हस्तगत कर लेने के बाद भी वे अपने पिता के प्रति उदार एवं सदय बने रहे। 'शिवरा मण्डप' इसका सबल प्रमाण है।

महाराव श्री लखपति सिंह जी में असाधारण योग्यता थी, किन्तु अपनी रसिकता के कारण वे अपने पारिवारिक जीवन को सन्तुलित न रख सके। आरात्रिदिवा नृत्य-संगीतादि में निमग्न एवं उपपत्नियों में तल्लीन रहनेवाले महाराव लखपति सिंह से रुष्ट होकर ईस्वी सन् 1752 में सत्रह वर्ष के लम्बे दाम्पत्य जीवन का परित्यागकर राजमहिषी राजकुँवरि अपने पुत्र गौड़जी के साथ मुन्द्रा चली गयीं।[16] पारिवारिक विघटन के प्रतिक्रियास्वरूप पिता-पुत्र का भी वैमनस्य बढ़ता गया। यहाँ तक की पुत्र की उद्दण्डता पर महाराव लखपति सिंह जी को मुन्द्रा पर आक्रमण करना पड़ा, जिसकी प्रतिक्रिया में युवराज गौड़जी पिता से युद्ध करने हेतु मोरवी से सेना ले आये थे।[17] महाराव लखपति सिंह आजीवन पुत्र से समन्वय स्थापित नहीं कर सके। इतना ही नहीं वे युवराज गौड़जी को राज्याधिकार से भी वंचित करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि उनके बाद

---

14. 'वंश सुधाकर' में प्रस्तुत वंशावली के आधार पर।

15. (क) L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend: A Study in Indian Local Loyalties, Page 134-136

    (ख) Bombay Gazetteer, volume-VI, Page 141

16. L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend: A Study in Indian Local Loyalties, Page 143

17. L. F. Rushbrook Williams : तदेव, पृ. 146

कच्छ-भुजाधिपति उनके अनौरस पुत्र मान सिंह बनें।[18]

महाराव लखपति सिंह जी के जीवन के अन्तिम वर्ष दारुण रुग्णावस्था में व्यतीत हुए। इस कारण उनकी निरन्तर शृंगार से अभिसिंचित मनोभूमि में भी न केवल वैराग्य एवं भक्ति के बीज अंकुरित हुए, अपितु अपनी सघन शीतलता से भक्ति-वैराग्य के उच्च दर्शन का प्रतिष्ठापन भी करने लगे। उनका देहावसान विक्रमाब्द 1817 के ज्येष्ठ मास की पंचमी तिथि को हुआ था।[19] महाराव श्री लखपति सिंह जी की मृत्यु का विशद्, सजीव एवं प्रामाणिक चित्रण उनके दो आश्रित कवियों ने किया है। उनके विवरण से ज्ञात होता है कि महाराव श्री लखपति सिंह जी ने दान-पुण्य करके, अत्यन्त रुग्ण शरीर होने पर भी मृत्यु का स्वागत स्वस्थ मन से किया।[20] उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी 15 स्त्रियाँ सती हुईं।[21] कहा जाता है कि सती होनेवाली सभी स्त्रियाँ उनकी रक्षिताएँ (उपपत्नियाँ)

---

18. L. F. Rushbrook Williams : तदेव, पृ. 148

19. राम सिंह राठौर : कच्छनुं संस्कृति दर्शन, पृ. 206 एवं 'वंश सुधाकर'

20. (क) तप जप अनेक सुभीता सहित ध्यान सदाशिव को धर्‌यौ।
पातिक पजारि सब पिण्ड के, कुन्दन तैं उज्ज्वल कर्‌यौ।।
तिहि समय ध्यान थिर चित कियो बैभव साहिब को दुरग।
तजि पाप आप नृप लखपति सुमन सिधायो सुभ सरग।।
-कुँवर कुशल : लखपति सिंह स्वर्ग प्राप्ति समय

(ख) एहि श्रवण सामळे, राउ चित हरि मझि राखे।
गीता कथे ग्यान, भेद अरजण जे भाखे।
दान हेम अस दिया, किया ब्रह्मभोज किते।
दान भोग गौदान गज आदि बन्दी गाये।।
सहि राज काज बिध सारियाँ, एहि हित हर चरणै पगो।
भ्रम रन्ध्र तजै देह भुजपति, लखपति सरग मारग लगो।।
-अमर सिंह बारौट : रा लखपतिना मरसिया

21. संवत् अठारह सत्तर, जेठ सुद पंचम रव जुत।
लाखा राउ संग जले, सत्ती पनरह झाले सत।।
-अमर सिंह बारौट : रा लखपतिना मरसिया

थीं।[22] रानियों में से एक भी सती नहीं हुईं, किन्तु महाराव श्री लखपति सिंह जी के आश्रित कवि अमर सिंह बरौट ने 'रा लखपतिना मरसिया' संज्ञक ग्रन्थ में महाराव श्री लखपति सिंह जी के स्वर्गारोहण का अत्यन्त चित्रात्मक वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके पीछे सती होनेवाली 15 स्त्रियों में 7 रानियाँ और 8 रक्षिताएँ थीं। सुप्रसिद्ध विद्वान् राम सिंह राठौर ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है[23], जबकि गोविन्द गिल्लाभाई एवं दुलेराय काराणी ने महाराव श्री लखपति सिंह जी के पीछे सती होनेवाली सभी स्त्रियों को 'रानी' की संज्ञा से अलंकृत करते हुए उनकी संख्या षोडश स्वीकार किया है।[24] इस प्रकार महाराव लखपति सिंह के रसिक व्यक्तित्व के करुण अन्त को भी उनकी पत्नियों किंवा प्रेयसियों ने चिरस्मरणीय बना दिया है। कच्छ-भुज के किसी अन्य नृपति के पीछे इतनी संख्या में रानियाँ सती नहीं हुईं। रक्षिताओं का सती होना और वह भी इतनी संख्या में, एक ऐतिहासिक घटना है, जिसका दूसरा उदाहरण दुर्लभ है।

महाराव श्री लखपति सिंह जी के चतुरस्रमुखी व्यक्तित्व का एक उज्ज्वल पक्ष है उनकी साहित्य-साधना। उनकी साहित्य-प्रियता मात्र मनोरंजन तक ही सीमित नहीं थी, अपितु वे स्वयं वाणी के आराधक थे। वे कवि-कलावन्तों के

---

22. (क) L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend: A Study in Indian Local Loyalties, Page 148

    (ख) डॉ. कान्तिलाल शाह : महाराव लखपति सिंह जी-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 41(अप्रकाशित शोधप्रबन्ध) : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला-उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 67

23. राम सिंह राठौर : कच्छनुं संस्कृति दर्शन, पृ. 206

24. (क) '.....यह महाशय ई. सन् 1817(यहाँ गोविन्द गिल्लाभाई ने भूल से विक्रमाब्द के स्थान पर ईस्वी सन् लिख दिया है) में स्वर्गवासी भये तब उन्हीं के साथ 16 रानियाँ सती हो जलीं।'- गोविन्द गिल्लाभाई : भाषा कविन के टूँक जीवन चरित्रो

    (ख) दुलेराय काराणी : कच्छ कलाधर, भाग-2, पृ. 435

उदार आश्रयदाता तो थे ही स्वयं भी एक समर्थ कवि थे।[25] बाल्यावस्था से ही उनमें काव्य-रचना की प्रतिभा और प्रवृत्ति विद्यमान थी, जो उत्तरोत्तर अपने उत्कर्ष को प्राप्त करती रही।[26] महाराव श्री लखपति सिंह जी के पिता महाराव श्री देशलजी भी कवि-कलावन्तों के लिए उदार कल्पवृक्ष की भाँति थे। महाराव देशलजी के दरबार में प्रसिद्ध कवि-रत्न हमीर रतनुं को आश्रय प्राप्त था। हमीरजी रतनुं के निर्देशन में ही युवराज लखपति सिंह ने काव्य-रचना प्रारम्भ की थी। हमीरजी रतनुं, महाराव देशलजी एवं उनके युवराज लखपति सिंह दोनों के आश्रय में रहे।[27] हमीरजी रतनुं ने युवराज लखपति सिंह जी के अध्ययन एवं प्रशस्ति को लक्ष्य में रखकर 'लखपति पिंगल' नामक छन्दःशास्त्र का सुन्दर ग्रन्थ रचा था, जिसमें उन्होंने युवराज लाखा (लखपति सिंह) के पिंगल-ज्ञान की प्रशंसा की है।[28] हमीरजी रतनुं के पश्चात् राव लखपति के काव्य-गुरु हुए

---

25. (क) '.....राव लखपति सिंह जी खुद भी कवि थे। उन्होंने लखपति-शृंगार, लखपति-मान-मंजरी, सुरतरंगिणी, मृदंग मोहरा, रागसागर आदिक ग्रन्थ बनाये हैं.....यह कविता में अपना नाम लखधीर लिखते थे।'-गोविन्द गिल्लाभाई : भाषा कविन के टूँक जीवन चरित्रो

    (ख) 'it was here that Maharao Lakho composed the poems which are still read.'-L. F. Rushbrook Williams : The Black Hills. Kutch in History and Legend: A Study in Indian Local Loyalties, Page 141

    (ग) दुलेराय काराणी : कच्छनां सन्तो अने कविओ, भाग-1, पृ. 315

26. अगरचन्द नाहटा : आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ, पादटिप्पण, पृ. 66

27. सीताराम लालसा : राजस्थानी शब्दकोष, खण्ड-1, पृ. 157-158

28. करमी लाखो कुँवर कहायो। भुजपत भुजरौ भार भलायो।।
    विचषण लषण बत्रीस बड़ाई। चवदह विद्या कन्ह चतुराई।।
    पिंगल रूप अनेक अनोपम। गण प्रस्तारन सट डढ़ सिंहगम।।
    तरह मरकती मरे पताषा। भेद वेद समझण षट भाषा।।
    -हमीरजी रतनुं : लखपति पिंगल

आचार्य कनक कुशल। इन्हें महाराव लखपति सिंह ने उचित सम्मान से अपने यहाँ बुलाकर गुरु-पदाभिषिक्त किया था।[29] कनक कुशल संस्कृत एवं ब्रजभाषा के प्रखर पण्डित थे। उनके सान्निध्य में रहकर महाराव श्री लखपति सिंह की काव्य-प्रौढ़ता निखर उठी थी। इन आचार्यों के सहयोग से महाराव लखपति सिंह ने न केवल उत्कृष्ट मौलिक ग्रन्थों का प्रणयन किया, अपितु रीतिकालीन श्रेष्ठ ग्रन्थों का सम्पादन भी किया था।

महाराव श्री लखपति सिंह ने सात ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनके नाम हैं- 1. लखपति-शृंगार, 2. सदाशिव ब्याह, 3. सुरतरंगिणी, 4. रामसागर, 5. मृदंग-मोहरा, 6. लखपति-मान-मंजरी एवं 7. लखपति-भक्ति-विलास। महाराव लखपति सिंह की कच्छी भाषा में रचित स्फुट कविताओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[30] महाराव लखपति सिंह के उपर्युक्त सात ग्रन्थों के अतिरिक्त दो अन्य ग्रन्थों की सूचना देते हुए डॉ. निर्मला आसनाणी लिखती हैं- 'अब तक की शोध-प्रक्रिया में विभिन्न विद्वानों ने इनकी सात रचनाओं एवं फुटकर पदों का उल्लेख किया है। मुझे अपने शोध-अभियान में महाराव के द्वारा रचित एक अन्य ग्रन्थ की उपलब्धि हुई है, जिसमें प्रसिद्ध रीतिकालीन ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की टीका महारावजी ने लिखी है। कर्ता ने अपने ग्रन्थ का नाम 'रसविलास' रखा है। इसके अलावा 'सुन्दरशृंगार' की 'रसदीपिका टीका' नामक रचना जो आचार्य कनक कुशल द्वारा बतलायी गयी, मुझे प्राप्त हुई है। इस रचना की हस्तलिखित प्रति में कर्ता के स्थान पर महाराव लखपति का नाम प्राप्त होता है। पूरे ग्रन्थ के अवलोकन से मैंने इस टीका-ग्रन्थ को महाराव लखपति कृत ही माना है। ऊपर

---

29. महाराव लखपति हुतै, जबहिं कुमार पद।
तब पढ़वै पर-प्रान्त बढ़ी प्रिय गुन हद।
कनक कुशल विद्यानिधान मरुधरा निवासी।
ह्याँ बुलाइ दै मान भूप राजा गुनरासी।
तिन अग्र आप अभ्यास करि 'रेहा' ग्राम बक्सीस में।
दीनों सुदान देसल तनय, तुम धावत अब लौं हमें।।

-जीवन कुशल : अरज पत्रिका

30. दुलेराय काराणी : कच्छनां सन्तो अने कविओ, भाग-1, पृ. 323

दर्शाये ग्रन्थ 'रसविलास' की शैली के अनुरूप ही 'सुन्दरशृंगार की रसदीपिका टीका' भी रची हुई प्राप्त होती है। इस प्रकार महाराव लखपति द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या कुल मिलाकर नौ हो जाती है।'[31]

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' कृत 'लखपति-शृंगार' अथवा 'रसतरंग' नायिकाभेद का प्रतिपादन करनेवाला एक महत्त्वपूर्ण लक्षण ग्रन्थ है। इसका प्रणयन आचार्य भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' के आधार हुआ है। इसलिए महाराव लखपति सिंह ने इस ग्रन्थ का अभिधान 'रसमंजरी' के आधार पर 'रसतरंग' किया है, किन्तु बाद में कुँवर कुशल ने इसका नामकरण 'लखपति-शृंगार' कर दिया। इस सन्दर्भ में डॉ. निर्मला आसनाणी लिखती हैं- 'शाहजहां के दरबार के प्रसिद्ध कवि सुन्दरदास ने 'रसमंजरी' का आधार लेकर जिस ग्रन्थ की रचना की, उसका नाम उन्होंने 'सुन्दर-शृंगार' रखा था। इसी प्रकार कुँवर कुशल ने 'रसतरंग' के स्थान पर इसका नाम 'लखपति-शृंगार' दिया है। आगे चलकर इसी नाम से यह ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ है। कुँवर कुशल ने इस ग्रन्थ की पुष्पिका में भी 'रसतरंग' को काटकर काली स्याही से 'लखपति-शृंगार' लिख दिया है। इसी प्रकार पृष्ठ 69 पर भी लाल स्याही से लिखे 'रसतरंग' को काटकर काली स्याही से 'लखपति-शृंगार' लिख दिया है। इतना ही नहीं, ग्रन्थ के अन्त में ऊपर हाशिये में एक दोहा जोड़कर 'लखपति-शृंगार' नाम इस ग्रन्थ को दे दिया गया है।'[32] डॉ. आसनाणी ने जिस दोहे का उल्लेख किया है, वह निम्नलिखित है-

महाराव लखपति कियौ, शुभ लखपति सिंगार।
रच्यो देखि रसमंजरी, सकल रसनि को सार।।

'लखपति-शृंगार' की उपलब्ध पाण्डुलिपि में रचनाकाल न देकर केवल लिपिकाल संवत् 1805 दिया गया है। इस ग्रन्थ में किये गये परिवर्तन एवं परिवर्द्धन को देखते हुए सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उपलब्ध पाण्डुलिपि ही मूल है, जिसे महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' के निर्देश पर कविराज कुँवर कुशल ने सुस्पष्ट लिपि में लिखा है। चूँकि पाण्डुलिपि विक्रमाब्द

---

31. डॉ. निर्मला आसनाणी : कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला-उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 114-115
32. डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 115

1805 की है, इसलिए इसकी रचना विक्रमाब्द 1805 के पूर्व ही हुई होगी। दोहा, सवैया, त्रिभंगी, कवित्त (घनाक्षरी), हरिपद प्रभृति विभिन्न छन्दों में निबद्ध 'लखपति-शृंगार' की रचना 436 छन्दों में पूर्ण हुई है। इस ग्रन्थ में महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' ने मनोयोगपूर्वक नायक-नायिका-भेद का वर्णन किया है। आचार्य भानुदत्त के लक्षण 'तत्र स्वामिन्येवानुरक्ता स्वीया'[33] के आधार पर स्वकीया नायिका का लक्षण-निरूपण करने के बाद महाराव लखपति सिंह ने स्वकीया का उदाहरण देते हुए लिखा है-

नैननि कौन लौं हौत निहार बौ, ओठनि में मुसक्यानि करै।
बोल की थोर बड़ी सुगरै, बिबि और निहारि कै पाँय धरै।
कोप न है सपने अपने मन जो भयो तौ मन माँहिं मरै।
लाज जिहाज बनी सिरताज, निहारियै पीय कौ हीय बरै।।[34]

इसी क्रम में महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' द्वारा रचित अज्ञात यौवना नायिका का उदाहरण भी द्रष्टव्य है, जिसमें अज्ञात यौवन-सम्पन्ना भोली किशोरी अपने तन पर अतनु के पदचिह्न देखकर आकुल हो उठती है और इस प्रकार अपने वक्षस्थल पर कल तक जूही की कली जैसे स्तन को नींबू के रूप में बढ़ते देखकर सहेली से अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए उपचार की विनती करती है-

दौरि सहेली की बाँह गही, सजनी लखि व्याधि ये साँस भरानी।
तू तो निचिन्त, सचिन्त है मो मन, ये छतिया पर कैसी निसानी।
देखि डरात सुहात न क्यों हूँ, विख्यात उपाय करौ जू सयानी।
जाय कली-सी गये दिन जानि पै, आज तो नींबू बराबर ठानी।।[35]

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' कृत 'लखपति-शृंगार' न केवल लक्षण-ग्रन्थ है, अपितु एक उत्कृष्ट काव्य भी है। इसमें महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' की उत्कृष्ट काव्य-कला के दर्शन होते हैं। शास्त्रीय परम्परा का अनुसरण करने

---

33. आचार्य भानुदत्त : रसमंजरी, पृ. 5
34. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 116 एवं 401
35. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 397

पर भी महाराव लखपति सिंह ने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय स्वानुभूति में दर्शाया है। पुष्प-परागों से सम्पृक्त भ्रमर-पक्ष (पंख) की भाँति लखधीर के छन्द प्रेम के अद्वितीय चित्रों से अलंकृत हैं। केलि-क्रीड़ा करते हुए श्यामा राधिका के कर्ण से पतित हुए तर्‌यौना (कर्णपाशा) का मनोहारी चित्र निम्नांकित मनहरण छन्द में मुखरित हुआ है-

चुम्बन अधर पान करिके अघातु नाँहिं,
माच्यो रंग लषधीर रस ही की कथ कौ।
पूरि पूरि काम कला भूरि भूरि भाइन सौं,
करत सुरत बहैं विपरीत पथ कौ।
श्यामा के श्रवण तैं जराय को तर्‌यौना छूटि,
पर्‌यौ पिय हिय पैं षिलौना मनमथ कौ।
मेरे जानि राह जीतैं मेरु की सिला के मध्य,
चालिबें तैं चक्र टूट्यौ चन्द्रमा के रथ कौ।।[36]

महाराव लखपति सिंह ने राधिका-कृष्ण की मधुर लीला का वर्णन करते हुए शृंगार के एकान्तिक क्षणों को छन्दबद्ध किया है-

(1)

सेज सँवारि बिछौननि झारिकै आपुहि बा बिच फूलि फसाये।
मोहन राधिका बातें बनाय कैं कुंज के भौन में आनि बसाये।
प्रेम तैं राति कैं नायक नें जब कंचुआ नीबी के बन्ध पिसाये।
ऐसे ही में तब धीठ विदूषक कुर्कुट नाद कियो सहसाये।।[37]

(2)

सीस सो सीस मुखै मुख सौं छतियाँ अपनी छतियाँ बरजोरी।
बाहु सौं बाहु लपेटि लई, कटि सौं कटि गाँठि करी है किशोरी।

---

36. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 117 एवं 400
37. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 357

जाँघ सौं जाँघनि, पींड़ी सौं पींड़ियें बाँधे पगे पग घूँघुर डोरी।
रात की रीझि लखी मैं सीख! तब तें मेरे चित्त में चित्र बसोरी।।[38]

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' ने 'लखपति-शृंगार' अथवा 'रसतरंग' में एक ऐसी पूर्वरागानुरक्ता नायिका का वर्णन किया है, जो नायक के हँसने पर मुग्ध हो गयी है और अब उस चितचोर प्रियतम के बिना उसके जीवन में विष घुल गया है-

भूतल तैं पतल, पतलहूँ तैं भूतल में,
तलफति ऐसो वह काहूँ न सुहायो है।
घूमति छकी-सी उझकी-सी होति बार बार,
चितवति चकी तन मदन तपायो है।
कोटि उपचार किये कामिनी सु जीवै क्यों हूँ,
सुधि ना सखी की ऐसो मन ले छिपायो है।
लाल हरैं हँसि आये वकौ हाल ऐसो भयो,
हाला में हलाय मानौ हालाहल पायो है।।[39]

नायिका-भेद के अन्तर्गत खण्डिता नायिका का वर्णन समस्त आचार्यों ने किया है। आचार्य भानुदत्त ने खण्डिता नायिका को परिभाषित करते हुए लिखा है- 'अन्योपभोगचिह्नितः प्रातरागच्छति पतिर्यस्याः सा खण्डिता।'[40] अर्थात् परस्त्री सम्भोग-चिह्न से युक्त होकर प्रातःकाल जिस नायिका के पास उसका पति आये उसे खण्डिता कहते हैं। खण्डिता नायिका के दो भेद हैं- 1. धीरा और 2. अधीरा। खण्डिता नायिका के भग्न हृदय का सुन्दर आरेखन रीतिकालीन कवियों ने किया है। महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' ने धीरा खण्डिता नायिका का सुन्दर चित्रण किया है। परस्त्री से केलि-क्रीड़ा करके प्रातःकाल घर लौटे नायक

---

38. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 425
39. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 428
40. आचार्य भानुदत्त : रसमंजरी, पृ. 102

के प्रति नायिका की मूक वेदना प्रस्तुत छन्द में प्रस्फुटित हुई है–

सोये हैं स्यामा के संग निशा सुख प्रात भये पिय आजहिं आवै।
भाल पैं जावक ओठनि काजर, छाती नषच्छवि की छवि छावै।
ऊँचे उसाँस भरैं न सयाँनप, लोइन माँहिं कछू न लषावै।
झारी भरी मुष धोवत पानी सौं ता महिं आँसू की धार दुरावै।।[41]

प्रवत्स्यत्प्रेयसी अथवा प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का वर्णन भी रीतिकवियों का प्रिय विषय रहा है। आचार्य भानुदत्त लिखते हैं– 'यस्याः पतिरग्रिमक्षणे देशान्तरं यास्यत्येव सा प्रवत्स्यत्पतिका।'[42]

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' ने प्रवत्स्यत्प्रेयसी नायिका के उदाहरण का वर्णन करते हुए लिखा है–

कान सुनत कहूँ आँखि ना उघारति है,
भोजन की चाह न हज़ार बार कहिए।
काल्हि चले कान्ह आज देखी याकी क्रिसताई,
ह्वैगो कहा हाल विरहागि झाल दहिए।
पलकनि पौंन तैं उड़ैगी यह जानि सखी,
आसपास बैठी अनिमेध द्रिग रहिए।
अतन भई है सो जतन करि ढूँढै जौ तौ,
मैं न नैन देखिवे को उपनैन चाहिए।।[43]

नायिका की विरह–वेदना असह्य है। प्रियतम के बिना वह बौरा–सी गयी है। उसका शरीर सूखकर पीला पड़ गया है। अन्त में वह बिना ख़ान–पान के मरण की शरण को ही स्वीकार करती है। नायिका अपने भाग्य को कोसते हुए कहती है कि जीवनाधार पति के विदेश चले जाने के बाद भी ये पापी प्राण क्यों नहीं चले जाते–

---

41. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति–शृंगार : उद्धृत–डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 429
42. आचार्य भानुदत्त : रसमंजरी, पृ. 152
43. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति–शृंगार : उद्धृत–डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 429–430 एवं 497

एक घरी पलिका पर बैठति, दूजी घरी उठि बाहिर दौरै।
काहूँ की रौकी रहे नहिं गेह में, देषति नाहिंन ठौर कुठौरै।
पाँन सौं पीरो पर्यौ तन पी बिनु, बोलति है मुष ओरहिं औरै।
जा छिन तै द्रिग देषे हैं कान्ह के ता छिन तें द्रिग में बिष घोरै।।[44]

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' कृत 'लखपति-शृंगार' से कतिपय छन्द और भी द्रष्टव्य हैं-

(1)

बाँह पसारि गरै बिचि डारि कें, बोल उचारि महारस भीन्हौं।
कन्त जगावत काम लगावति, यौं उपजावत प्रेम प्रवीन्हौं।
लाज गयी रस येक भई तन, केलि भई मुख चुम्बन दीन्हौं।
रंगरली बृषभानुललली अधराति मिली हरि को बसि कीन्हौं।।[45]

(2)

भौंहनि मरौर चितचोर ठौर और लाग्यौ,
दरसाउ दौर करै कोउ कोर आँन की।
षीजैं रीझैं भीजैं लीजैं दीजैं धीजैं औ अधीजैं,
नैंननि में हिलनि मिलनि सरसाँन की।
जौबन कौ जोर सेज बैठति कठोर ह्वै कै,
लालन की ओर रूष राषैं अलसाँन की।
प्यारे कै तौ अंग छानि परी है बिकाँन ही की,
प्यारी कै तौ अंग बाँनि परी दूरताँन की।।[46]

---

44. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 431
45. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 484
46. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 504-505

(3)

कंचन-सी काय दैखिबो तै सुखदाय होत,
लेपन कुरंगसार अत्तर सुबास भर।
गहने अपार ओप मोतिन सुढार ओप,
आन आन भाँति के बसन सोहै अंग पर।
येक येक ते अनूप रूप रंग जैसी सबै,
सोरह हज़ार आठ गोपिका ते भर्‌यौ भर।
कौन किसुँ ओर देखै औ विचार जिमें करि,
उहाँ आँखि नीची किये ठाढ़े रहे नटवर।।[47]

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' की पुस्तक 'सदाशिव विवाह' एक खण्डकाव्य है। शिव-विवाह गुजराती कवियों का प्रिय काव्य-विषय रहा है। इसी परम्परा में 'सदाशिव विवाह' को भी देखा जा सकता है। महाराव लखपति सिंह काव्य-कला के साथ साथ नृत्य एवं संगीत में भी पारंगत थे। इसलिए उन्होंने नटेश शिव की कथा को मृदंग के बोलों से एवं ताण्डव नृत्य के पदक्षेपों से भी गूँथा है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा-

डौं डौं डौं डौं डिम डिम डौं डौं,
डम डम डुह डिमि शब्द बजैया।
खौं खौं खौं खौं खिम खिम खौं खौं,
खिमि खिमि खां खिमि साज सजैया।
ग्रां ग्रां ग्रां ग्रां ध्रिन ध्रिन,
ग्रांझा झिम झिम जु मचैया।
नां नां नां नां गिडदिकी नां नां गिडदिकि,
नां नां गिडदिकि नाच नचैया।।[48]

---

47. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : लखपति-शृंगार : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 116
48. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : सदाशिव विवाह : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 117-118

'सदाशिव विवाह' की रचना विक्रमाब्द 1817 के श्रावण मास में हुई है। इसका उल्लेख स्वयं महाराव लखपति सिंह ने ग्रन्थान्त में किया है–

संवत् ठारह सैं उपरि, सत्रह वर्ष सुजान।
सावन सित पाँचैं सुकर, पूरन ग्रन्थ समान।।[49]

'सुरतरंगिणी' संज्ञक ग्रन्थ महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' के संगीतशास्त्र विषयक ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है। गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् गोविन्द गिल्लाभाई एवं राजस्थानी साहित्य के पण्डित अगरचन्द नाहटा ने 'सुरतरंगिणी' को निर्विवाद रूप से महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' रचित बतलाया है। 'मृदंग मोहरा' एवं 'रागसागर' भी संगीत विषयक ग्रन्थ हैं। 'लखपति–मान–मंजरी' की प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। 'लखपति–भक्ति–विलास' की खोज डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने की थी। उनको इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि भुज के 'आयना महल' में प्राप्त हुई थी, परन्तु आजकल इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि बड़ौदा विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थ विभाग में सुरक्षित है। इसका प्रणयन विक्रमाब्द 1816 में हुआ था। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त डॉ. निर्मला एन. आसनाणी ने 'सुन्दर–शृंगार की रसदीपिका टीका' और 'बिहारी सतसई की रसविलास टीका' का रचयिता भी महाराव लखपति सिंह को ही स्वीकार किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त श्री दुलेराय काराणी ने अपनी पुस्तक 'कच्छानां सन्तो अने कविओ' में और डॉ. कान्तिलाल शाह ने अपने शोधप्रबन्ध में महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' के कच्छी भाषा में लिखे छन्दों का भी उल्लेख किया है।

महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' एक ऐसे प्रतापी शासक थे, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ललित कलाओं के उत्कर्ष में व्यतीत किया। ब्रजभूमि से दो हज़ार किलोमीटर दूर कच्छ की खाड़ी में ब्रजभाषा की काव्यशाला स्थापित करके महाराव लखपति सिंह ने उस समय में कविता को रोज़गारोन्मुखी बनाया

---

49. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : सदाशिव विवाह, छन्द संख्या 373 : डॉ. कान्तिलाल शाह : महाराव लखपति सिंह जी–व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 74 (अप्रकाशित शोधप्रबन्ध) : उद्धृत–डॉ. निर्मला आसनाणी : कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला–उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व, पृ. 120

था। इस काव्यशाला से काव्य-रचना की शिक्षा प्राप्त करके अनेक कवियों ने काव्य-रचना में महारत प्राप्त किया। स्वयं डॉ. निर्मला आसनाणी ने अपने शोधप्रबन्ध 'कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला : उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व' के परिशिष्ट-2 'पाठशाला से सम्बद्ध कवि-नाम-सूची' के अन्तर्गत 325 कवियों को सूचीबद्ध किया है। तत्त्वतः महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' कच्छ के राजसिंहासन पर आरूढ़ होनेवाले लोकप्रिय शासक रहे हैं। महाराव लखपति सिंह की उदारता, कलाप्रियता एवं रसिकता कच्छ के शासकों में अद्वितीय है। विविध कलाओं में पारंगत एवं कवि-कलावन्तों के संरक्षक महाराव लखपति सिंह जी की यशश्चन्द्रिका से हिन्दी-ब्रजी का काव्याकाश शताब्दियों तक आप्लावित रहेगा। राजकवि कुँवर कुशल कृत 'लखपति-जयसिन्धु' के छन्दों के माध्यम से महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' की यशोगाथा जन जन का कण्ठहार बनी रहेगी-

दानी सीखैं दान, भोगी भोग सीखैं आय यहाँ,
जोगी जन जोगिन के सीखत हैं मेव जू।
ग्यानी सीखैं ग्यान, कवि कविताई सीखैं या पै,
पण्डित सुपण्डिताई सीखैं करि सेव जू।
रागी सीखैं राग औ रसिक रसिकाई सीखैं,
सिपाई सिपाईगीरी सीखैं अहिमेव जू।
कुँवरेस हुन्नरी तैं सीखत हैं हुन्नर कौं,
और सबै कीय लखधीर गुरुदेव जू।।[50]

❑❑

---

50. कुँवर कुशल : लखपति-जयसिन्धु : उद्धृत-डॉ. निर्मला आसनाणी : तदेव, पृ. 82

राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति'

अवध के इतिहास के साथ साथ हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। 'कविकुलतिलकप्रकाश' के प्रणेता अमेठी के कवि-नरेश राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' के ज्येष्ठ पुत्र राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' भारतीय नरेशों की विद्याव्यसनी परम्परा के मुकुटमणि हैं। श्री फूलचन्द्र त्रिपाठी 'वियोगी' ने लिखा है- 'सन् 1945 ई. में मैंने प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में कार्य करना प्रारम्भ किया था। वहाँ हिन्दी संग्रहालय के विशाल पुस्तकालय में भारतीय रियासतों के ऊपर लिखी बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने को मिलीं। मैंने अपने प्रदेश की विख्यात रियासतों काशी, अमेठी, रामपुर, टेहरी, गढ़वाल, मझौली, पडरौना, उनवल, प्रतापगढ़, कालाकाँकर आदि के बारे में कई पुस्तकें पढ़ीं। मुझे तीन ऐसी रियासतें मिलीं, जहाँ के कितने राजे कवि, लेखक और हिन्दी-सेवक तथा कवियों के आश्रयदाता हो चुके हैं। रियासत पडरौना (गोरखपुर) के राजा ईश्वरीप्रतापनारायण राय 'प्रताप' कवि ने हिन्दी में तीन पुस्तकें लिखी हैं। मझौली-नरेश राजा खड्गबहादुर मल्ल भारतेन्दु-युग के विख्यात कवि थे। इन्होंने हिन्दी में लगभग 44 पुस्तकें (गद्य, पद्य, नाटकादि) लिखी हैं। रियासत अमेठी (अवध) के महाराज गुरुदत्त सिंह 'भूपति' नाम से कविता करते थे। ये बड़े शूरवीर, उदार, धर्म-रक्षक, कवियों और लेखकों के आश्रयदाता थे। इन्होंने 'भूपति सतसई' नामक एक बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी। जिसकी प्रशंसा प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी मिश्रबन्धुओं ने अत्यधिक की है। मिश्रबन्धु लिखते हैं कि कहीं कहीं 'भूपति सतसई' के दोहे 'बिहारी सतसई' से भी आगे बढ़ गये हैं। राजा गुरुदत्त सिंह जी के पिता राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' भी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने 'कविकुलतिलकप्रकाश' नामक एक अत्युत्तम लाक्षणिक

काव्य ग्रन्थ लिखा है।'[1] वस्तुतः पण्डित फूलचन्द्र त्रिपाठी 'वियोगी' ने कम शब्दों में ही अमेठी राज्य की साहित्यिक ऊर्जा का संकेत कर दिया है।

अमेठी राज्य के इतिहास में राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का नाम एक जाज्वल्यमान रत्न की भाँति है। पराक्रम के साथ साथ आप में उच्चतम कोटि की काव्य-प्रतिभा भी थी। इन्होंने अयोध्या में अवस्थित मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के जन्म-स्थान की म्लेच्छों से रक्षा करने के लिए अवध के तत्कालीन नवाब सआदत अली ख़ां को युद्ध में परास्त किया था। इस घटना से राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' की यशश्चन्द्रिका को स्थायी लाभ हुआ। रीतिकाल के सुविख्यात महाकवि उदयनाथ 'कवीन्द्र' ने इस युद्ध का सजीव वर्णन किया है-

समर अमेठी के सरोस गुरुदत्त सिंह,
सादत की सेना समसेरन सों मानी है।
भनत 'कवीन्द्र' काली हुलसी असीसन को,
ईसन के सीस की जमाति हुलसानी है।
तहाँ एक जोगिनी सुभट खोपरी लै उड़ी,
सोनित पियति, ताकी उपमा बख़ानी है।
प्यालो लौ चिनी को छकी जोबन-तरंग मानौ
रंग हेत पीवति मँजीठ मुगलानी है।।[2]

कविर्नृपति गुरुदत्त सिंह 'भूपति' ने रायपुर में अवस्थित अपने पुराने राजभवन का परित्याग कर अमेठी से दो मील उत्तर रामनगर में एक नये राजभवन का निर्माण करवाया, जो आज भी 'भूपति भवन' के रूप में उनकी कीर्ति-कौमुदी का साक्षी बना हुआ है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के

---

1. फूलचन्द्र त्रिपाठी 'वियोगी' : प्रगतिशील अमेठी राज्य : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, अमेठी, सुलतानपुर : प्रथम संस्करण 1979 ई., पृ.77
2. उदयनाथ 'कवीन्द्र' : शिवसिंह सरोज (सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1970 ई., छन्द सं. 164, पृ. 62

ज्येष्ठ पुत्र राजाधिराज कुश के वंश में उत्पन्न हुए कछवाहा–कुल–शिरोमणि राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' अमेठी के चौबीसवें शासक थे। इनका प्रथम विवाह बिसेनों के यहाँ और द्वितीय विवाह परिहारों के यहाँ हुआ। दूसरी महारानी से दो पुत्र राजा दृगपाल सिंह और राजकुमार पृथ्वी सिंह उत्पन्न हुए।

राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' की साहित्यिक प्रतिभा जहाँ, अपने पूर्ण प्रकाश से साहित्य–जगत् को आलोकित कर रही थी, वहीं उनकी धर्मनिष्ठता, दानवीरता, दयालुता अपना एक विशिष्ट स्थान रखती थी। वह ऐसा समय था, जब अवध के नवाब सआदत अली ख़ां का बोलबाला था। हिन्दुओं के प्रति घोर अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर था। हिन्दू धर्मच्युत किये जा रहे थे, हिन्दू धर्मस्थलों को नष्ट किया जा रहा था। राजा गुरुदत्त सिंह को यह सह्य नहीं था। अन्ततः सूर्यवंशी रक्त उबल पड़ा और उन्हेंने सआदत अली ख़ां से भीषण युद्ध किया। इस युद्ध के सन्दर्भ में राजा गुरुदत्त सिंह के अद्वितीय शौर्य का वर्णन रायबहादुर लाला सीताराम 'अवधवासी' ने बड़े रोचक ढंग से किया है।[3] रामजन्मभूमि को मुक्त कराने हेतु राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के नेतृत्व में हुए संघर्ष का वर्णन करते हुए अवध के प्रसिद्ध इतिहासकार ठाकुर सरनाम सिंह लिखते हैं– '19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब नवाब सआदत अली अंग्रेजों की सहायता से अवध के नवाब बने, तो उनके पहले के 5 वर्षों में ही अमेठी के राजा गुरुदत्त सिंह और पिपरा के राजकुमार सिंह के नेतृत्व में रामजन्मभूमि पर 5 बार हिन्दुओं ने आक्रमण करके मुक्त कराने का प्रयास किया। इस समय हिन्दुओं ने संगठित युद्ध किये, जिसमें उनको क्षणिक विजय प्राप्त हुई, किन्तु बाबरी मस्जिद पर उनका पूर्णरूपेण अधिकार नहीं हो सका। इस प्रकार के प्रतिवर्ष लगातार पाँच आक्रमण होते रहे। झगड़े से आजिज़ आकर नवाब ने अकबर की भाँति एक ही स्थान पर हिन्दू और मुसलमानों को मस्जिद में पूजा–पाठ और नमाज पढ़ने की आज्ञा दे दी, तब जाकर झगड़ा शान्त हुआ।'[4] निश्चय ही राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' ने कृपाण और

---

3. रायबहादुर लाला सीताराम 'अवधवासी' : अयोध्या का इतिहास : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 1932 ई., पृ. 155
4. ठाकुर सरनाम सिंह : अँखियन देखी अयोध्या : प्रथम संस्करण 2007 ई., पृ. 114

लेखनी को साथ साथ साधा था। एक ओर जहाँ लेखनी से श्रृंगार के ललित छन्द निःसृत हुए, वहीं दूसरी ओर कृपाण ने समर-पत्र पर विजय के गीत लिखे। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' को 'कवि-कोविदों के कल्पवृक्ष' के रूप में याद किया है।[5] प्रो. रामराज पाण्डेय ने राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के छह ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए लिखा है- 'हिन्दी-जगत् में महाराज भूपति के छह ग्रन्थ 'भूपति सतसई', 'भागवत भाषा', 'कण्ठाभरण', 'रसरत्नाकर', 'रसदीप' तथा 'रसरत्नावली' प्रसिद्ध हैं।'[6] यद्यपि राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के छह ग्रन्थों का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है, तथापि भक्ति और रीति-साहित्य के मान्य आलोचक डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने केवल तीन ग्रन्थ ही 'भूपति' द्वारा रचित स्वीकार किया है।

1. **भूपति सतसई**, 1923।60 ए बी, या सतसैया 1926।66 । इस ग्रन्थ की रचना विक्रमाब्द 1791, कार्तिक सुदी 3, बुधवार को हुई-

सत्रह शत एकानबे, कातिक सुदि बुधवार।
ललित तृतीया में भयो, सतसैया अवतार।।[7]

'भूपति सतसई' की अपनी एक अलग गरिमा है। इसमें श्रृंगार रस के सरस दोहों की अद्‌भुत छटा है। मिश्रबन्धुओं ने 'हिन्दी नवरत्न' की भूमिका में लिखा है- 'भूपति सतसई' दोहों में की गयी कविता का परमोत्कृष्ट ग्रन्थ है।'[8] 'मिश्रबन्धुविनोद' के प्रथम भाग के इतिहास-प्रकरण में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि भूपति के दोहे बिहारी के दोहों से बिलकुल मिल जाते हैं और स्वतन्त्र रीति पर भी परम प्रशंसनीय हैं।' इसी क्रम में मिश्रबन्धुओं ने आगे लिखा है- 'हम लोगों ने

---

5. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, पृ. 765
6. प्रो. रामराज पाण्डेय : अमेठी राज्य से सम्बन्धित साहित्यकार : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 133
7. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 1967 ई., पृ. 532
8. मिश्रबन्धु : हिन्दी नवरत्न : हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1967 ई., (भूमिका) पृ. 27

अपने 'मिश्रबन्धुविनोद' में कई वर्ष पूर्व हुए भूपति सतसई की प्रशंसा की थी और हमारी वही सम्मति अब भी है कि बिहारी सतसई के ढंग पर जो अनेक सतसैयाँ लिखी गयी हैं, उनमें भूपति सतसई प्रायः सर्वश्रेष्ठ है।' डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' ने 'भूपति सतसई' का वैदुष्यपूर्ण सम्पादन किया है।

2. **रसदीपक**, 1903।42, 1904।28, 1923।60 सी। यह नायिका-भेद का ग्रन्थ है। इसकी रचना विक्रमाब्द 1799, कार्तिक सुदी 3, बुधवार को हुई-

सत्रह सतक निन्यानबे, कार्तिक सुदि बुधवार।
ललित तृतीया में भयो, रसदीपक अवतार।।[9]

इसका एक नाम 'रसदीप' भी है।

3. **रसरत्न**, 1923।60 डी, 1947।263। यह रस और अलंकार दोनों का ग्रन्थ है। इसकी रचना विक्रमाब्द 1788, वैशाख सुदी 9, बुधवार को हुई-

सत्रह सतक अठासि सम, माधव सुदि बुधवार।
तिथि नवमी रस रतन को, भयो रुचिर अवतार।।[10]

'रसरत्न' और 'रसदीपक' में राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' ने अपने निवास-स्थान अमेठी का वर्णन किया है-

आठौ दिसा चुनीन सम, करि राखी अवरुध्य।
नगर अमेठी रायपुर सोभित ज्यों मनि मध्य।।

पुन्य फलनि सों अति फली, नगरी मोद प्रकास।
भूपति तह गुरुदत्त धव, नित प्रति करत निवास।।[11]

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त 'पक्षीविलास', 'रसरत्नाकर', 'भागवत भाषा', 'कविकण्ठाभरण' प्रभृति ग्रन्थों के रचनाकार के रूप में भी राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का स्मरण अनेक साहित्येतिहासकारों ने किया है। नागरी प्रचारिणी सभा के अप्रकाशित संक्षिप्त विवरण में 'पक्षीविलास' का उल्लेख राजा गुरुदत्त सिंह

---

9. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण, पृ. 533
10. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 533
11. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 533

'भूपति' के सन्दर्भ में किया गया है, किन्तु 'पक्षीविलास' गुरुदत्त शुक्ल मुकुन्दपुरवाले की रचना है। 'रसरत्नाकर' 'रसरत्न' का ही विस्तृत नाम है। 'मिश्रबन्धुविनोद' में 'कण्ठाभरण' और 'भागवत भाषा' के रचनाकार के रूप में भी राजा गुरुदत्त सिंह का स्मरण किया गया है।[12] 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के नाम से 'कण्ठाभूषण' और 'रसरत्नाकर' का उल्लेख किया गया है।[13] वस्तुतः 'भागवत भाषा' गुरुदत्त कायस्थ की रचना है। इसी प्रकार 'कण्ठाभरण' या 'कण्ठाभूषण' महाकवि उमानाथ 'कवीन्द्र' के पुत्र कविवर दूलह की सुप्रसिद्ध कृति 'कविकुलकण्ठाभरण' के ही अन्य नाम हैं।

वस्तुतः साहित्येतिहासकार की अपनी सीमा होती है। अध्ययन-अनुशीलन के समय बहुत-सी जानकारियाँ प्रच्छन्न रह जाती हैं। बहुत-सी बातें भ्रमात्मक रूप में भी प्रस्तुत हो जाती हैं। कुछ ऐसा ही राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' की रचनाओं के साथ भी हुआ है। तत्कालीन राजनीतिक क्षितिज पर राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का व्यक्तित्व और कर्तृत्व मार्तण्ड की तरह उदित हुआ। इसलिए अन्य गुरुदत्त का व्यक्तित्व राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के विशाल व्यक्तित्व में तिरोहित हो गया, किन्तु इससे भूपति के साहित्यिक अवदान पर किंचित् प्रभाव नहीं पड़ता। राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के जो तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनसे ही उनकी कवि-कीर्ति अक्षुण्ण है। राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' जहाँ रणस्थली में कृपाण से समर-पत्र पर विजय के गीत लिखने में पारंगत रहे हैं, वहीं राजमहल में लेखनी से स्मर-पत्र पर रतिनायक के मधुर सन्देश रचने में भी पीछे नहीं रहे। शृंगार के ललित छन्दों का प्रणयन करते समय भूपति की कल्पनाएँ उन्हें कालजयी महाकवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करती हैं। नायिका के शरीर-सौष्ठव का वर्णन करते हुए भूपति ने उसके अद्वितीय सौन्दर्य में ही नवग्रहों का जिस तरह से दर्शन किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है-

सीसफूल सूर सीस-थली को विभूषै 'भूप',
मंगल सुरंग विन्दु चन्दन को झलकै।

---

12. मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धुविनोद, पृ. 714
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 289

टीको सुरुगुरु, मुख चन्द को विलोके, सुक्र
लटकन मोती, सो न रोकै राहु अलकै।
ठोढ़ी अंक स्याम सनि, गोरे रंग बुध गनि,
ऐउत डिढौना केतु सौतिन को तलकै।
उच्च थल परे हैं सकल ग्रह तेरे आली,
याते वनमाली लोट पोट कोटि ललकै।।[14]

नायिका राधा के शरीर-सौन्दर्य-सम्पत्ति रूपी जन्मांग-चक्र में समस्त ग्रह उच्च के हैं। इसलिए वनमाली उस सौन्दर्य-राशि पर स्वतः न्यौछावर हो गये हैं। राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' की यह कल्पना एक ओर जहाँ राजर्षि भर्तृहरि के 'शृंगारशतकम्'[15] से सम्पृक्त होती है, वहीं दूसरी ओर 'बिहारी सतसई'[16] से भी जुड़ती है। इससे राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के अध्यवसाय का भी बोध होता है।

नायिका के मान का वर्णन करते हुए भूपति ने जिन उपमाओं की योजना की है, उनका सृजन एक योद्धा ही कर सकता है-

मीन ह्वै कमीने परे पानी में, निहारे हारि-
हारि कै चकोर, तात चुगत अँगारे हैं।
'भूपति' भनत गंज कंजन के खंजन के-
गंजन गरब करि डारे कै निकारे हैं।
डोरे रतनारे, तारे कारे, औ सितारे सेत,
उपमा सितासित तरंगन में भारे हैं।

---

14. राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1136, पृ. 397

15. गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा।।
-भर्तृहरि : शृंगारशतकम्, श्लोक सं. 16

16. मंगल विन्दु सुरंग, मुख ससि केसरि आड़ गुरु।
इन नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत।।
-महाकवि बिहारी : बिहारी सतसई (सं. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'), दोहा सं. 268, पृ. 260

प्यारी तेरे मान दृग पानि खरसान धारे,
कैवर कसीसे वै कमानवारे वारे हैं।।[17]

इसी तरह नवोढ़ा नायिका का वर्णन भी राजा गुरदत्त सिंह 'भूपति' की लेखनी से सुन्दर बन पड़ा है–

केलि के मन्दिर इन्दुमुखी सो सहेलिन के सँग ही में गयी है।
काज के ब्याज चली यकऐक अनेक बिलास की नेइ दयी है।
आइ गयौ तह 'भूपति' भावतौं ह्वै गयी सोच सकोचमयी है।
सूखि गयी पिय पाले परे तिय पाले परे की पुरैनि भयी है।।[18]

राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का रचनाकाल इनके प्राप्त ग्रन्थों के आधार पर विक्रमाब्द 1788 (1731 ई.) से विक्रमाब्द 1799 (1742 ई.) के मध्य का निश्चित होता है, किन्तु इन्होंने विक्रमाब्द 1798 (1741 ई.) से विक्रमाब्द 1831 (1774 ई.) तक अमेठी पर शासन किया था। यह कालखण्ड साहित्येतिहास में रीतिकाल के नाम से अभिहित है। स्वयं राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का राजदरबार उदयनाथ 'कवीन्द्र' और कवीन्द्र–पुत्र दूलह जैसे रससिद्ध कवियों से अलंकृत था। इसलिए भूपति की कविता–तरंगिणी रीति की वक्रोक्तियों की सुन्दर वीचियों से सुशोभित और नायिका–भेद के विभिन्न विभागों से सुसज्जित है। राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' कृत अनुशयना नायिका की मनोदशा का एक सुन्दर चित्रण द्रष्टव्य है–

पाकि अरहरि ताकि थरहरि परी प्यारी,
तरहरि आनन कै हर हर भाख्यौ है।
सूनो गेह परो है परोस मै सो बसो जानि,
ऊनो उर मानि दुख दूनो अभिलाख्यौ है।

---

17. राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 1136, पृ. 397–398
18. राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' : सतकविगिराविलास : सम्पादक डॉ. शिवगोपाल मिश्र : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 2001 ई., छन्द सं. 119, पृ. 49

'भूपति' भनत वाहि अनत सुहात नाहीं,
वाही ओर दृगनि पियूख मनो चाख्यौ है।
सन बन सूखे कटे ऊखे सूखी जाति पर,
चेत मन ठाके मन वाँके खेत राख्यौ है।।[19]

अनुशयना परकीया नायिका का एक भेद है। अनुशयना का अर्थ अनुशय या पश्चात्ताप करनेवाली है। संकेतस्थल के नष्ट होने से दुःखी होनेवाली नायिका अनुशयना कहलाती है। वह इसलिए पश्चात्ताप करती है कि प्रिय-मिलन के लिए बनाया हुआ संकेतस्थल विघटित हो जाता है। इसे संकेतविघट्टना भी कहते हैं। अनुशयना के तीन प्रकार हैं। अनुशयना का सर्वप्रथम निरूपण आचार्य भानुदत्त ने किया है, तत्पश्चात् इन्हीं के आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने इनका विवेचन किया है। आचार्य भानुदत्त ने अनुशयना का निरूपण करते हुए लिखा है- **'अनुशयना यथा- वर्तमानस्थानविघटनेन भाविस्थानाभावशंकया स्थानधिष्ठितसंकेतस्थलं प्रति भर्तुर्गमनानुमानेन चानुशयना त्रिधा।'**[20] राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' के उपर्युक्त घनाक्षरी छन्द में द्वितीय अनुशयना का चित्रण हुआ है।

निश्चय ही अमेठी के कछवाहा राजवंश की जिस साहित्यिक परम्परा का प्रवर्तन राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' (1709-1741 ई.) ने किया था, उसके सुमेरु के रूप में राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' का प्रदेय साहित्येतिहास के पृष्ठों पर हेमाक्षरों में अंकित है।

❑❑

---

19. राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' : सतकविगिराविलास, छन्द सं., 271, पृ. 77
20. आचार्य भानुदत्त : रसमञ्जरी, पृ. 65

महाराजाधिराज जय सिंह जू देव

'हरिचरित्रचन्द्रिका' के विख्यात रचनाकार बान्धवेश महाराजाधिराज जय सिंह जू देव महाराज अजीत सिंह के पुत्र और महाराज अवधूत सिंह के पौत्र थे। इन्होंने रीवा के बघेल राजवंश की साहित्यिक परम्परा का प्रवर्तन किया। हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में इनका जीवन समर्पित रहा। महाराज जय सिंह का जन्म 4 जनवरी, 1765 ई. में हुआ था। जन्म के चौवालीस वसन्तोपरान्त अर्थात् 1809 ई. में इनका राज्याभिषेक हुआ। महाराज जय सिंह जू देव का शासनकाल रीवा राज्य के इतिहास में कई दृष्टिकोण से एक विभक्तिपरक रेखा का सृजन करता है। रीवा के व्याघ्रवंशीय बघेल राजाओं का आंग्लवंशीय शासकों से विधिवत सम्बन्ध महाराजाधिराज जय सिंह जू देव के शासनकाल में ही प्रारम्भ होता है। इन्हीं के समय से रीवा राज्य की स्वस्थ साहित्यिक परम्परा का भी प्रादुर्भाव होता है। महाराज जय सिंह जू देव ने अपने शासनकाल में ही अपने यशस्वी पुत्र युवराज बाबू विश्वनाथ सिंह देव से शासकीय सहयोग लेना प्रारम्भ कर दिया था। युवराज की नीति-निष्णात प्रतिभा और महाराज की कार्य कुशलता से रीवा के बघेल राज्य को एक नूतन दिशा प्राप्त होती है, इसको महाराजाधिराज जय सिंह जू देव की देन स्वीकार करना पड़ता है।

महाराजाधिराज जय सिंह जू देव के शासन के प्रारम्भिक चरण में ही भारतवर्ष में अंग्रेजी सत्ता का पाँव स्थापित हो चुका था। आंग्ल सत्ता अपनी सम्पूर्ण प्रभविष्णुता को प्राप्तकर चुकी थी, जबकि नृपति जय सिंह के शासन का अभी प्रारम्भिक वर्ष था। पिण्डारियों का आतंक शनैः शनैः बर्द्धित हो रहा था। सन् 1812 ई. में पिण्डारियों का एक समूह रीवा राज्य से होता हुआ उत्तर में मिर्ज़ापुर जनपद में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पिण्डारियों ने अत्यधिक लूटपाट मचायी। तात्कालीक मिर्ज़ापुर जनपद अंग्रेजों के सीधे प्रभाव में था। अतः अंग्रेज पिण्डारियों के लूटपाट से सतर्क हो उठे। अंग्रेजों को सन्देह हुआ कि इस

लूटपाट में जय सिंह जू देव पिण्डारियों से मिले हुए है।[1] यदि ऐसा न होता तो महाराज जय सिंह पिण्डारियों के दमन का कोई–न–कोई तरीका स्वयं निकालते। यही सोच विचारकर अंग्रेजों ने रीवा राज्य पर सन्धि करने के लिए दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। सही तथ्य तो यही है कि रीवा राज्य पर दबाव डालकर सन्धि करने के लिए विवश करना अंग्रेजों की कूटनीति का परिचायक है। बहुत समय से अंग्रेजों और रीवा के शासकों के मध्य सन्धि सम्बन्ध लम्बित पड़ा हुआ था। इसके कारण थे। प्रारम्भ में अंग्रेज रीवा दरबार को सनद देना चाहते थे। उनका कहना था कि रीवा, बाँदा के नवाब अली बहादुर के अधीनस्थ एक करद राज्य है। अतः इसे अंग्रेजों की सनद लेनी चाहिए, परन्तु रीवा दरबार अपने को अली बहादुर के अधीन करद मानने को तैयार न था, क्योंकि उसने उसे युद्ध का हर्जाना दिया, कोई चौथ आदि कर नहीं। शनैः शनैः अंग्रेज प्रभावी क्षेत्रों में पिण्डारियों का आतंक बढ़ता रहा। इन पिण्डारियों का दमन करने के लिए रीवा राज्य का सहयोग अपेक्षित था। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों ने रीवा दरबार की बात स्वीकार कर ली और उसे सनद (प्रमाणपत्र) देने की अपेक्षा उससे सन्धि करने के लिए विवश हो गये। इसलिए अंग्रेजों ने रीवा को सन्धि राज्य (ट्रीटी स्टेट) का स्थान प्रदान करते हुए 5 अक्टूबर, 1812 ई. को ब्रिटिश एजेंसी बाँदा में उससे सन्धि कर ली। यह सन्धि अंग्रेजों ने अथवा ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने रीवा नरेश जय सिंह जू देव और मुकुन्दपुर के साथ परस्पर मैत्री और सुरक्षा की दृष्टि से की थी।[2] इस सन्धि के अनुसार रीवा दरबार ने अंग्रेजी शासन का संरक्षण स्वीकार किया और यह कबूल किया कि प्रतिवेशी राज्यों से किसी भी तरह का विवाद होने पर निर्णय के लिए मुकदमा ब्रिटिश सरकार के सामने प्रस्तुत किया जायेगा और उसके द्वारा दिया गया निर्णय दरबार को मान्य होगा। अंग्रेजी सेना को राज्य की सीमा से गमनागमन और राज्य की भूमि पर सैनिक छावनी स्थापित करने का पूर्णतः अधिकार होगा। इस सन्धि में गवर्नर जनरल ने महाराज जय सिंह को रीवा का वैध स्वामी स्वीकार किया और यह वचन दिया कि महाराज के विरुद्ध कोई युद्ध नहीं किया जायेगा। इस सन्धि का

---

1. दीवान जीतन सिंह : रीवा राज्य दर्पण (1919 ई.) , पृ. 65-66
2. रीवा स्टेट गजेटियर, पृ.17, 112-117

प्रतिफल यह हुआ कि अब रीवा राज्य आये दिन होनेवाले आक्रमणों एवं अतिक्रमणों से स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगा।

बान्धवेश जय सिंह जू देव और कम्पनी सरकार के मध्य 5 अक्टूबर, 1812 ई. को हुई सन्धि में शीघ्र ही व्यवधान उत्पन्न हो गया। फलतः रीवा दरबार वर्षाभ्यन्तर ही कतिपय अनुबन्धों के उल्लघंन का दोषी ठहराया गया। इसलिए उसे 2 जून, 1813 ई. को तमसा नदी के किनारे बघरा में ईस्ट इण्डिया कम्पनी से द्वितीय सन्धि करनी पड़ी। इसमें कतिपय अतिरिक्त अनुबन्धों को समाविष्ट किया गया। ध्यातव्य है कि प्रथम सन्धि के अनुबन्धों के उल्लंघन का प्रमुख कारण बघरा छावनी में स्थित अंग्रेजी फौज को राज्य द्वारा रसद की आपूर्ति न करना था। दूसरा कारण राव जबरदस्त सिंह द्वारा चुरहट (सीधी) इलाक़े में अंग्रेजी डाक लुटवा लेना था। तीसरा कारण मनगवाँ के सन्निकट सथिनी ग्राम में इटार के सेंगर इलाक़ेदार द्वारा रसद ले जानेवाले अंग्रेजों के फौजी दस्ते पर आक्रमण कर उसे लूटना था। इन सबको देखते हुए प्रथम सन्धि की शर्तों के पालन में रीवा दरबार की असफलता के फलस्वरूप अंग्रेजी सरकार को सैनिक कार्यवाही करने में जो खर्चे उठाने पड़े उसकी वसूली रीवा दरबार से करने का भी, द्वितीय सन्धि में प्राविधान किया गया। इस खर्च-हर्जाने की रकम रु. 45, 173 थी, जिसमें अदायगी किश्तों में करने की व्यवस्था की जानी थी। हर्जाने की रकम और अंग्रेजी फौज की रसद आपूर्ति के लिए राज्य के कोषागार पर जो अतिरिक्त व्यय भार पड़ना था, उसकी पूर्ति के लिए पवाईदारों और काश्तकारों पर रीवा राज्य द्वारा फिरंगीयावन नामक उपकर आरोपित करने की व्यवस्था भी की जानी थी। इस प्रकार यह सन्धि भी पूरी हो गयी, परन्तु जब निर्धारित अवधि के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति की उपर्युक्त राशि की आपूर्ति रीवा द्वारा सम्भव नहीं हो सकी, तब उसकी सम्पूर्ति और कतिपय अन्य प्रकरणों के लिए 11 मार्च, 1814 ई. को एक अन्य पूरक सन्धि की गयी। इस सन्धि में महाराजाधिराज जय सिंह जू देव के साथ-ही-साथ युवराज श्री विश्वनाथ सिंह जू देव भी उपस्थित थे। इस सन्धि में एक विशेष शर्त यह थी कि रीवा के जो इलाक़ेदार कम्पनी सरकार के खैरख्वाह थे उन्हें रीवा दरबार नाजायज परेशान नहीं करेगा और रीवा राज्य अपने इलाक़ेदारों और जागीरदारों के उन कृत्यों के लिए उत्तरदायी होगा, जिनसे सन्धि की शर्तों का उल्लंघन

होता है।[3] इस प्रकार अंग्रेज कम्पनी ने शनैः शनैः अपने विश्वस्त इलाक़ेदारों के माध्यम से रीवा राज्य में अपने पैर स्थिर कर दिये।

1812 ई. की सन्धि द्वारा रीवा राज्य अंग्रेजों पर निर्भर हो गया। महाराज रीवा यद्यपि अपने आन्तरिक प्रकरणों में पूर्णतः स्वतन्त्र थे, परन्तु उनके राज्य के समस्त सीमावर्ती प्रतिवेशी राज्यों से सम्बन्ध व संघर्षादि का निराकरण अंग्रेज सरकार करेगी और अंग्रेजी कटक को निष्कंटक रूप से रीवा राज्य की सीमा से गमनागमन व अन्य प्रकार की अन्याय सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार होगा। इसी सन्धि द्वारा यह भी निश्चित कर दिया गया कि मराठों आदि को रीवा राज्य की सीमा में गमनागमन की सुविधा नहीं दी जायेगी और वे यदि इस नियम का उल्लंघन करते हैं तो, अंग्रेज वाहिनी उनसे मुकाबला करेगी। इस प्रकार रीवा राज्य की सुरक्षा का भार अंग्रेजी शासन ने अपने ऊपर ले लिया। यद्यपि 1812 ई. की यह सन्धि महाराजाधिराज जय सिंह जू देव तथा अंग्रेज सरकार की मैत्री और सद्भावना पर आधृत थी, तथापि भविष्य में होनेवाली त्रुटियों के कारण अंग्रेजी सेना ने सैनिक कार्यवाही भी किया। परिणामतः 1813 ई. में महाराजाधिराज जय सिंह जू देव को पुनः सन्धि करने के लिए वाध्य होना पड़ा। 1813 ई. की सन्धि में महाराजाधिराज जय सिंह को अपनी त्रुटि स्वीकार करनी पड़ी और सन्धि के अनुबन्धों को स्वीकार करने हेतु प्रतिबद्ध होना पड़ा।[4] तदन्तर रही सही कमी सन् 1814 ई. की सन्धि द्वारा पूर्ण कर दी गयी। इस सम्बन्ध में डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री का अभिकथन सत्य की आधारशिला पर आधृत है – '1814 ई. तक दो सन्धियाँ और हुईं तथा रीवा राज्य क्रमशः अंग्रेजी शासन से नियन्त्रित हो गया।[5] शनैः शनैः अँग्रजों के प्रतिबन्धों से रीवा राज्य चतुर्दिक् आवृत्त हो गया। श्री गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री लिखते हैं कि 'जय सिंह ने डाक आदि अपने राज्य में स्थापित करने व उसकी पूरी रक्षा करने का वादा किया, साथ ही अंग्रेजी सरकार का एक आदमी भी अपने यहाँ रखने की

---

3. सी. यू. एचिसन : Treatios engagements and sands, जिल्द-5, पृ. 242-43 बार, Compendium पृ. 247-248
4. रीवा राज्य गजेटियर, पृ. 110
5. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य, पृ. 31

शर्त लिख दी।'[6] इस सन्दर्भ में कर्नल लाल जनार्दन सिंह ने लिखा है–'1813 ई. की सन्धि के अनुसार बाह्य आक्रमण होने पर ब्रिटिश सरकार रीवा राज्य की मदद करेगी और अंग्रेजी सेना का सारा खर्च रीवा राज्य से दिया जायेगा। यदि आवश्यकता पड़ी तो रीवा राज्य की सेना का सहयोग ब्रिटिश सरकार को प्राप्त हो सकेगा। यदि ब्रिटिश सेना और रीवा सेना को एक साथ काम करने का मौका लगा तो रीवा के सेनापति को ब्रिटिश सेनापति की अधिनता में काम करना पड़ेगा।'[7] इन सन्धियों की धाराओं का यदि सूक्ष्मता पूर्वक अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि महाराजाधिराज जय सिंह जू देव और आंग्ल शासकों के मध्य सम्पन्न हुई इन सन्धियों के प्राविधानों के द्वारा रीवा राज्य की बाह्यनीति की स्वतन्त्रता एवं वैदेशिक सार्वभौमिक सत्ता अंग्रेजी सरकार के हाथों की कठपुतली बनकर रह गयी।[8]

रीवा नरेश महाराजाधिराज जय सिंह जू देव प्रातिभ–प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् कवि थे। हिन्दी और संस्कृत भाषा के वे प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके द्वारा रचित एकत्रिंशत ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। रीवा के किले में अवस्थित सरस्वती कोश भाण्डार में भी उनके सभी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सके । आपकी रचनाओं में 'हरिचरित्रचन्द्रिका' और 'हरितरंगिणी' अधिक प्रसिद्ध हैं। 'हरिचरित्रचन्द्रिका' में कवि–नरेश ने भगवान् के चौबीस अवतारों का ललित छन्दों में वर्णन किया है। सामान्य कवि एक–दो अवतारों के वर्णन तक सीमित रहता है, किन्तु महाराजाधिराज जय सिंह जू देव ने भगवान् के चौबीस अवतारों की कथा का वर्णन अत्यन्त सजीव और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं स्वयं तो काव्य की रचना करते ही थे, साथ–ही–साथ विद्वानों और कवि–कलाकारों का भी समादर करते थे।[9]

---

6. गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री : रीवा राज्य का इतिहास, पृ. 74
7. कर्नल जनार्दन सिंह : रीवा राज्य का सैनिक इतिहास, पृ. 43-44
8. के० एम० सक्सेना : रीवा स्टेट डायरेक्टरी, पृ. 49
9. पण्डित रामसागर शास्त्री : विन्ध्य दर्शन, भाग–1, पृ. 288

जय सिंह संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् थे। हिन्दी में इन्होंने 'कृष्णतरंगिनी', 'हरिचरितामृत' (पृथक् पृथक् चौबीस अवतारों की कथा, जिसमें कृष्णावतार की कथा याने 'हरिचरित्रचन्द्रिका' और रामावतार की कथा याने 'रामाश्वमेध' भी सम्मिलित है) वाजनामा, चतुःश्लोकी भागवत अनुभव-प्रकाश, गंगा-लहरी, त्रय वेदान्त प्रकश और निर्णय सिद्धान्त जैसे काव्य और दर्शन ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी सभा में कवियों का समादर था। इनके संस्कृत ग्रन्थ नहीं मिलते। हरिचरित्रचन्द्रिका की भूमिका में श्री भवानीदत्त जोशी ने लिखा है कि संस्कृत में जो ग्रन्थ हैं, उनके समान संस्कृत में लिखने का साहस करना कठिन समझ महाराज जय सिंह देव ने उसमें हाथ नहीं डाला (पृ. 5)। जय सिंह देव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नरेशों द्वारा साहित्य-सृजन का सूत्रपात इन्हीं से होता है, जो इनके पुत्र विश्वनाथ सिंह और पौत्र रघुराज सिंह तक, तीन पीढ़ी तक लगातार तीव्र गति से चलता रहा। 19वीं शती के आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रायः 200 ग्रन्थों की रचना हुई। नरेशों से प्रेरणा लेकर अनेक कवियों ने रचनाएँ की। इस काल में रीवा राजसभा में अनेक सन्त, दार्शनिक, शास्त्रज्ञ, कवि, तार्किक, ज्योतिर्विद् तथा संगीतज्ञ जन्में और चमके। प्रत्येक को अपने ज्ञान का प्रतिबिम्ब महाराज में दिखायी पड़ा। महाराज विश्वनाथ सिंह के दरबार में शास्त्र-मन्थन और दार्शनिक विवेचनाओं की धूम मच गयी। महाराज रघुराज सिंह ने हिन्दी काव्य-सृजन की सफल प्रयोगशाला ही संचालित कर दी और वृहादाकार ग्रन्थों से भारती के भण्डार को सम्पन्न बनाया।[10]

'हरिचरित्रचन्द्रिका' के प्रकाशकीय 'उपक्रम' में पण्डित भवानीदत्त जोशी ने महाराजाधिराज जय सिंह जू देव की कृतियों का क्रमशः विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा है –

1. **कृष्णतरंगिणी** – श्रीकृष्णलीला वर्णन।
2. **हरिचरितामृत** – अर्थात् 24 अवतारों की कथा – यह बहुत भारी ग्रन्थ है, इसमें **हरिचरित्रचन्द्रिका** और **रामाश्वमेध** नामक ग्रन्थ बहुत ही विलक्षण हैं।

---

10. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : संस्कृत साहित्य को बान्धव नरेशों की देन, पृ. 131-132

3. **त्रयवेदान्त प्रकाश** – दर्शनशास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ।

4. **निर्णय सिद्धान्त** – यह भी दर्शनशास्त्र सम्बन्धी है।

5. **गंगा लहरी** – जिसके प्रभाव से गंगा जी ने स्वागत किया।[11]

महाराजाधिराज जय सिंह देव की कवित्व-प्रतिभा का उल्लेख करते हुए गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री ने लिखा है – 'जय सिंह असाधारण नरेश थे। यह संस्कृत भाषा के विद्वान् तो थे ही हिन्दी भाषा के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने कुल इकतीस ग्रन्थों की या तो रचना की थी या अनुवाद किया था। यह सभी ग्रन्थ कुछ को छोड़कर पौराणिक गाथामय हैं। इनमें से कुछ तो प्रकाशित हैं और कुछ अब भी अप्रकाशित हैं। इन ग्रन्थों में 'हरिचरित्रचन्द्रिका' एक उत्तम ग्रन्थ है। इनका अधिकांश समय भजन, पूजा-पाठ में व्यतीत होता था। यह धार्मिक और सात्विक विचार के थे। विक्रमाब्द 1890 में इन्होंने राजाधिराज के मन्दिर का निर्माण कराया। अनेक तीर्थों के पण्डों को गाँव व जीविकावृत्ति लगाया। गया जी में इन्होंने गोसाई आशाराम गैवार को एक रुपया प्रति गाँव अपने राज्य में लगाया।'[12]

यद्यपि महाराजाधिराज जय सिंह जू देव संस्कृत और हिन्दी भाषा के प्रकाण्ड पण्डित और अनेक ग्रन्थों के रचनाकार थे, तथापि किसी भी साहित्येतिहास ग्रन्थ में उनका उल्लेख नहीं है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर के संग्रह-ग्रन्थ 'शिव सिंह सरोज' में महाराज विश्वनाथ सिंह और महाराज रघुराज सिंह की कविताएँ तो संगृहीत हैं, किन्तु महाराज जय सिंह की नहीं। ऐसा क्यों हुआ? कहा नहीं जा सकता। शायद महाराज जय सिंह जू देव के ग्रन्थों के अप्रकाशित रहने के कारण ही ऐसा हुआ हो। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित 'कविता-कौमुदी' पहला-भाग ही ऐसा प्रथम ज्ञात संग्रह-ग्रन्थ है, जिसमें महाराज जय सिंह जू देव की कविता सपरिचय संगृहीत है। 'कविता-कौमुदी' में 74वें कवि के रूप में महाराज जयसिंह जू देव का परिचय कविता सहित उल्लिखित है। कविता कौमुदी के प्रकाशन के समय तक महाराजाधिराज जयसिंह जू देव का मात्र एक ग्रन्थ 'हरिचरित्रचन्द्रिका'

---

11. पण्डित भवानीदत्त जोशी : हरिचरित्रचन्द्रिकाः उपक्रम, पृ. 4

12. गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री : रीवा राज्य का इतिहास, पृ. 78

प्रकाशित हो पाया था और आज भी उसके अतिरिक्त कोई अन्य ग्रन्थ प्रकाशित होकर सर्वसुलभ नहीं हो पाया। कविता–कौमुदी में पण्डित रामनरेश त्रिपाठी महाराज जय सिंह के विषय में लिखते हैं – 'जय सिंह रीवा के महाराज थे। इनका जन्म सं. 1821 में हुआ। 1891 तक इन्होंने राज्य किया। अपने जीवनकाल में ही इन्होंने राज्याधिकार अपने पुत्र विश्वनाथ सिंह को सौंप दिया था। ये लगभग 100 वर्ष तक जीवित रहे।

जय सिंह बड़े भक्त और सच्चे वैष्णव थे; यह इनकी रचना से अच्छी तरह बोध होता है। इन्होंने 18 ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से कुछ के नाम ये हैं–कृष्णतंरगिणी, हरिचरितामृत, त्रयवेदान्तप्रकाश, निर्णय सिद्धान्त, गंगालहरी, हरिचरित्रचन्द्रिका। इनकी रचना सरस और अलंकार पूर्ण होती थी।'[13]

बान्धवेश महाराजाधिराज जय सिंह जू देव कृत 'हरिचरित्रचन्द्रिका' का प्रथम संस्करण संवत् 1960 विक्रमाब्द, शाके 1825, सन् 1903 ई. में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ की लम्बाई 10 इंच एवं चौड़ाई 7.8 इंच है। आवरण लाल और नीले रंग से मुद्रित है।

'उपक्रम' शीर्षक के अन्तर्गत पण्डित भवानीदत्त जोशी बी.ए. की भूमिका पृ. 1 से पृ. 8 तक हरे रंग से मुद्रित है। ग्रन्थाम्भ ।। श्री गणेशाय नमः।। से हुआ है। पूरा ग्रन्थ काले रंग से मुद्रित है। मूल ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या 251 है। अन्त में एक पृष्ठ अतिरिक्त है, जिसमें दो दोहा और एक सोरठा अंकित है, जो प्रतिलिपिकार कृत है। आद्योपान्त ग्रन्थ में प्रयुक्त पृष्ठों की संख्या 264 है। मूल ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ में 21 पंक्ति तथा शेष पृष्ठों में 22 से 24 पंक्तियाँ मुद्रित हुई हैं। मूल ग्रन्थ बड़े अक्षर में है। और छन्दों की अपेक्षा दोहे और सोरठे डेढ़ गुणे बड़े अक्षरों में हैं।

'हरिचरित्रचन्द्रिका' को 'रामचन्द्रिका' की तुला पर तो तौला नहीं जा सकता, किन्तु छन्द–वैविध्य को ध्यान में रखते हुए उसका अनुवर्ती कहा जा सकता है। इसमें 24 प्रकार के मात्रिक तथा वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ में प्रयुक्त सभी छन्दों का महायोग 4076 है। छन्द–भेद और छन्द

---

13. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता–कौमुदी, पहला भाग, पृ. 486

संख्या को निम्नांकित तालिका के माध्यम से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है–

क्रमांक	छन्द-नाम	संख्या	प्रतिलिपिकार कृत छन्द संख्या
1.	छप्पय	2	
2.	दोहा	520	2
3.	सोरठा	41	1
4.	चौपाई	2482	
5.	चौपाई छन्द	20	
6.	त्रोटक	129	
7.	तोटक	28	
8.	तोमर	87	
9.	मालिनी	154	
10.	मोतियदाम	2	
11.	अरिल्ला	57	
12.	पद्धरी	12	
13.	इन्द्रवज्रा	7	
14.	बा. छन्द	32	
15.	पंचचामर	2	
16.	दुर्मिल	10	
17.	भुजंगप्रयात	6	
18.	कवित्त	8	
19.	संकर	10	
20.	गीतिका	34	
21.	हरगीतिका	148	
22.	स्वागता	64	
23.	छन्द	121	
24.	त्रिभंगी	110	
	महायोग	**4076**	**3**

तालिका में लिखित छन्दों के नाम ग्रन्थ में लिखे हुए हैं। इस तालिका में लिखे छन्दों में अनेक छन्द ऐसे हैं, जो वस्तुतः हैं तो अन्य छन्द और उनकी गणना हुई है किसी अन्य छन्द में। दुर्मिल छन्द के अन्तर्गत जिन 10 छन्दों की प्राप्ति हुई है, उनमें मात्र चार छन्द ऐसे हैं, जो कि दुर्मिल हैं। शेष छह छन्दों में 5 छन्द मत्तगयन्द हैं और एक छन्द विजया सवैया है। इसी प्रकार 'कवित्त' शीर्षक के अन्तर्गत जिन 8 छन्दों को रखा गया है, उनमें कोई छन्द कवित्त नहीं है। उन आठों छन्दों में 4 छन्द दुर्मिल, 2 छन्द किरीट, 1 छन्द विजया और 1 छन्द मत्तगयन्द हैं। 'संकर' छन्द के अन्तर्गत कोई एक छन्द नहीं है। लगता है इस छन्द का तात्पर्य कवि ने 'उपजाति' छन्द से लिया है। किसी दो छन्दों के योग को उपजाति कहते है। सम्भवतः 'संकर' छन्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है।

ग्रन्थारम्भ श्रीकृष्ण की वन्दना से हुआ है। कवि नरेश ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक भगवान् को परमानन्द और 'असरन सरन' कहा है। मंगलाचरण छप्पय छन्द में निबद्ध है –

जय काली फन मथन मृदुल पद अरुण कमल दल।
जय ब्रज बछरा जरत पियो अतुराइ दवानल ।।

जय बृन्दाबन बेलि बिटप बिरमत बनमाली।
जय ब्रज बनिता बृन्द बीच बिहरत बनसाली।।

जय जय वत्सल बानिबर जै गिरिधर मघवा मदहरन।
जय जय परमानन्दतन प्रभु जय जय असरन सरन।।[14]

आगे ग्रन्थकार ने परम पुरुष की वन्दना की है। कष्ट हरनेवाले उस पुरुष के पद-रूपी कमल की वन्दना करता हूँ, जिसके मधु को प्राप्त करने के लिए अज आदि भ्रमर लालायित रहा करते हैं और प्राप्त नहीं कर पाते हैं। दोहा द्रष्टव्य है –

जा मधु कों अज आदि अलि, लहत न रहत ललात।
ताप हरन ता पुरुष को, बन्दौं पद-जलजात।।[15]

जिसकी कविता रूपी मंजरी का राम रूपी भ्रमर रसपान करता है उस वाल्मीकि

---

14. महाराज जय सिंह : हरिचरित्रचन्द्रिका (1903 ई.), पृ. 1
15. तदेव, पृ. 1

के पद–पंकज की विनयपूर्वक वन्दना करते हुए कवि चारों युगों में जो कोई भी प्रभु के यश का गायक और श्रवणक हुआ है, उसके भी चरणों की वन्दना करते हुए, उसकी कृपा का आकांक्षी है –

बालमीकि पद-पंकजनि, बन्दौं बिनय समेत।
जाकी कविता-मंजरी, राम-मधुप रस लेते।।
* * *
हरिजस गायक श्रोतऊ, चारिहु युग मह कोइ।
बन्दत हौं तिनके चरन, करहु कृपा जन जोइ।।[16]

दोहों का निर्वाह कवि ने पूरी सामर्थ्य के साथ किया है। कहीं कहीं दोहों की बड़ी सुन्दर रचना की गयी है। शब्दों की संहति सुन्दर बन पड़ी है। राजकीय वैभव की छटा उभर कर सम्मुख आयी है। कवि स्वंय शासक है–यह भान होता रहता है। यथा –

मुकुट मोर कलगी कदम, कुसुम पीत पट अंग।
बर कुंकुम मृगमद अगर, चरचित चन्दन संग।।[17]
* * *
रतन चित्र बहु जगमगहिं, झलकति अनुपम ओप।
हीर सिंहासन पर लसत, रतन भानु तहँ गोप।।
पारिजात सुमननि लसे, माल जाल चहुँ ओर।
तिनको सौरभ ले पवन, पूरि दियो सब ठोर।।[18]

आवरण पर मुद्रित 'श्रीभागवतान्तर्गत श्रीकृष्णावतार की कथा' से पहले ही ज्ञात हो जाता है कि 'हरिचरित्रचन्द्रिका' का आधार श्रीमद्भागवत ही है। सूर जैसे सुप्रसिद्ध भक्तकवि के 'सूरसागर' की कथा का उद्गमस्थल भी भागवत ही है। कृष्ण–भक्ति–धारा के परवर्ती कवियों पर सूरसागर का प्रभाव लक्षित होता है। कोई ऐसा कवि नहीं जिस पर सूर का प्रभाव न हो। 'हरिचरित्रचन्द्रिका'

---

16. तदेव, पृ. 1
17. तदेव, पृ. 21
18. तदेव, पृ. 25

भी सूर के प्रभाव से मुक्त नहीं है। वर्णनात्मकता का प्राचुर्य है। प्रबन्ध-रचना का धरातल दृग्गत नहीं है। कवि एक तरफ से कथावाचक की तरह पूरी कथा कहता है। कहीं कहीं वर्णानात्मकता के स्थान पर अत्यन्त भावुकतापूर्ण प्रसंगों की अवतारणा हुई है। कवि जहाँ कहीं अपने को वर्णन की इतिवृत्तात्मकता से इतर कर पाता है, वहाँ पर पूर्ण काव्य सौन्दर्य का दर्शन होता है। उदाहरण के रूप में इतिवृत्तात्मकता के धरातल पर अवलम्बित निम्नांकित प्रसंग को देखा जा सकता है –

छिति लेपतहीं पति भोजन को। जुत गोबर पान चली बन को।।
यक प्यावत अंक लिये सुतहीं। तँह डारि चली हरिनेह नहीं।।
इमि गोपबधू बन कोऊ नहीं। पति मातु पिता बरजे न रहीं।।
अति आतुर नेह भरीं डहरीं। बहु दामिनि-सीं बन देखि परीं।।
मग में कच ते छुटि फूल झरैं। गहने गिरि जात न देखि परैं।।
हरि रूप-पयोनिधि प्रेम सनी। बरिसा सरिसी रमनी गमनी।।
यक को पति रोकि केवाँर दियो। तलफो नँदलाल बिछोह हियो।।
धरि प्रीतम ध्यान अनन्द हिलीं। तजि प्रानपिया पहिलो सों मिलीं।।[19]

उपर्युक्त प्रसंग अत्यन्त चर्चित है, किन्तु इसमें कवि की अपनी भाषा है, अपने विचार हैं, अपनी शैली है और उसकी अपनी वर्णन क्षमता है। त्रोटक छन्द का सफल निर्वहन हुआ है। लेपत, गोबर, डारि, बरजे, डहरी, गमनी, केवाँर प्रभृति लोकजीवन में रचे-बसे शब्दों के प्रयोग से भाषा का लालित्य सम्बर्द्धित हुआ है। इन शब्दों को विशेषतः बघेलखण्ड के रोजमर्रा की दैनन्दिनी से सम्बद्ध किया जा सकता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग आज भी बघेली बोली में धड़ल्ले के साथ होता हैं।

व्रजवनिताओं की समर्पण भावना का अद्वितीय उदाहरण इससे अधिक और क्या हो सकता है? जिस किसी भी अवस्था में व्रज की रमणियाँ हैं, वे उसी तरह से हरि की रूप-माधुरी-सुधा का रसपान करने के लिए डहर देती हैं। जिसको पति रोक कर कपाट बन्द कर देता है, वह अपना प्राण त्याग कर

---

19. तदेव, पृ. 142-143

सर्वप्रथम प्रभु को प्राप्तकर लेती है। एक ओर इन रमणियों में परकीया का गुण विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर दर्शन की दृष्टि से ब्रह्मतत्त्व के साकार रूप में समाहित होने की प्रबलाकाक्षां भी निहित है। इसी प्रकार का एक प्रसंग और द्रष्टव्य है –

बाम बाहु पर बाम कपोलै। बेनु ओठ धरि भ्रू करि लोलै।।
रन्ध्र रंजि चल अंगुरि छोरै। छाइ देत सुर जो यहि डोरै।।
ब्योम-यान चढ़ि सिद्धि बधूटी। नाह संग सुनि नीबिनि छूटी।।
लाज मैन जुत ब्याकुल भूरी। जंत्र-मंत्र नहिं जागहिं मूरी।।[20]

स्वागता छन्द की सुन्दर व्यजनापरक संरचना हुई है। बाँसुरी बजाने की कला और उससे निःसृत स्वर का सर्वत्र प्रसारण, तद्जन्य प्रभाव से सिद्धि-बधूटियों का नीवी बन्धन खुलना तथा लज्जा और कामदेव के मिश्र भाव से व्याकुल यंत्र-मंत्र का निष्प्रभावी होना कितना सरस और मनोवैज्ञानिक है। गोबर्धन पर्वत को करांगुलि पर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण की पालक मातृ यशोदा की चिन्ता का वर्णन कवि ने अत्यन्त सुन्दर और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। बालक की शैतानियों से तंग आ चुकी माता का स्वरूप यशोदा के निम्नांकित कथन में प्रकट है–

बछरा सिसु हेतु अघासुर के, मुख पैठत ईस प्रसाद जियो।
बरियाइ कै काली करोर टरी, तुवहों सगरी नन्द बाग पियो।
अब कासो कहौं दुख कौन सुनै, मृदु गात विलोकि सुखात हियो।
पिछिले हिय छाले सुखाने अजौ न तु फेरि पहार उठाइ लियो।।[21]

यशोदा की व्याकुलता का कितना स्वाभाविक वर्णन हुआ है। यशोदा की दृष्टि में श्रीकृष्ण ब्रह्म के अवतार नहीं, मात्र उनके पुत्र हैं। एक माता का पुत्र के प्रति उमड़नेवाला वात्सल्य उभरकर सम्मुख आया है। यशोदा की व्याकुलता अगले छन्द में और बढ़ जाती है। वे कहती हैं –

---

20. तदेव, पृ. 181

21. तदेव, पृ. 127

सब के धन गोधन सून सुता, सब के उर छेद समीरन के।
सब पै घनघोर घना बरसैं, सब के छत पाहन भीरन के।
मृदु गात विलोकत भूधर भार न धीर रहै मुनि धीरन के।
करते गिरि खैंचि न लेति कोऊ, कछु हीर न पीर अहीरन के ।।[22]

यशोदा का वात्सल्य जहाँ देखने योग्य है, वहीं श्रीकृष्ण की चपलता भी मन मोह लेती है। मैया यशोदा को कन्हैया कितनी चतुराई से समझा रहे हैं –

बैठे कहा घर इन्द्र करैं अब आइ प्रचारैं न क्यों घन घेरे।
गैयाँ खरीं सुखपावत मेरी लियो बछरानि पियावत नेरे।
फूल के जूल उठाइ लियो गिरि सो उर फूल समाति न मेरे।
मैया जू मोहिं खवाइ रही सो दियो इतनो बल माखन तेरे।।[23]

व्रज, व्रजवनिता, व्रजभाषा, कृष्ण, राधिका,मुरली को लेकर तरह तरह के प्रयोग हुए हैं। रसखान की गोपियों की दृष्टि में मुरली उनकी सपत्नी के समान है। वे मुरली का प्रतिरोध करती है। यथा–

कान्ह भये बस बाँसुरी के अब, कौन सखी हमकों चहिहैं।
निसिद्यौस रहै सँग-साथ लगी, यह सौतिन तापन क्यों सहि हैं।
जिन मोहि लियो मनमोहन कौं, 'रसखानि' सदा हमको दहि हैं।
मिलि आऔ सबै सखि भागि चलैं, अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहैं।।[24]

रसखान ने कितनी सफलता के साथ लिखा है। प्रिय वस्तु पर जब किसी दूसरे का अधिकार होने लगता है, तो कितनी ईर्ष्या होती है, इसे सहज ही समझा जा सकता है। और जब प्रकरण प्रेम का हो, तब कहना ही क्या? वहाँ तो स्वप्न में भी दूसरे की सम्भावना तक स्वीकार नहीं की जाती। **'तहँ एक से दूसरो आँक नहीं'**वाला सूत्र ही वहाँ लागू होता है। और प्रेम के मार्ग पर चलना **'तरवार के धार पे धावनो'** जैसा ही है। रसखान की व्रजांगनाएँ मुरली को

---

22. तदेव, पृ. 127
23. तदेव, पृ. 128
24. 'रसखान ग्रन्थावली' से

सौत (सपत्नी) मानती हैं। उससे ईर्ष्या करती हैं, क्योंकि उसने (मुरली ने) श्रीकृष्ण के मंजुल अधरों पर अधिकार कर लिया है।

रसखान की व्रजांगनाओं का मन्तव्य जान लेने के बाद महाराज जय सिंह की गोपिकाओं की धारणा बिलकुल नूतन प्रतीत होती है। वे मुरली से ईर्ष्या नहीं करतीं, अपितु उससे निवेदन करती हैं। अपनी बात उसी के माध्यम से श्रीकृष्ण तक प्रेषित करती हैं। मुरली के प्रति महाराजाधिराज जय सिंह की सद्भावना है, क्योंकि भक्त के लिए प्रभु की सेवा में अर्पित सभी वस्तुओं का महत्त्व है। मुरली उनकी दृष्टि में प्रभु का एक अंग है। उनका पारिषद् है। तब भला प्रभु का भक्त अपने प्रभु के पारिषद् का अपमान कर सकता है? गोपिकाएँ कहती हैं –

मोहन आनन-बारिज में अधरा दल कोर सरोजहिं चाखहु।
ता मधु पीवत तान सुनाइ दसौं दिसि आँनद सो मढ़ि राखहु।
पाँ परि माँगतीं जाइ नहीं सहि भूरि बिथा डर दूरिकै नाखहु।
ए मुरली मुरलीधर सोउ दया कै हमारी दसा तुम भाखहु।।[25]

उपर्युक्त किरीट सवैये में गोपियों की भक्ति छलक उठी है। मुरली के प्रति इतना प्रेम किसी अन्य कवि की गोपियों में देखने को नहीं मिलता, किन्तु प्रथम पंक्ति का अर्थ कुछ ठीक नहीं लगता। मोहन के मुख रूपी कमल में अधर रूपी दल (पंखुड़ी) के अग्रभाग का 'सरोजहिं चाखहु' का क्या तात्पर्य है? यहाँ पर प्रतिलिपिकार ने प्रतिलिपि करते समय प्रमाद किया है, जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। 'कोर' में 'को' अलग और 'र' अलग है तथा 'सरोजहिं' में 'स' अलग और 'रोजहिं' अलग है। साथ ही 'र' और 'स' की संघति है। इस प्रकार मूलपाठ होना चाहिए-'मोहन आनन-बारिज में अधरादल को रस रोजहिं चाखहु'। अब अर्थ की प्रभा पूर्णतः उदित होती है।

गोपियों को श्रीकृष्ण की मौलिकता अतिप्रिय है। श्रीकृष्ण की उसी मौलिकता को उद्धव से बताते हुए वे कहती हैं कि कमल के समान रसीली आँखोंवाले, सिर पर मोर-पंख को फहरानेवाले, धेनु-खुर से उत्थित रेणु से पूरित अलकों की झलक दिखलानेवाले, गोल कपोल पर कुण्डल-छवि को धारण किये हुए,

---

25. महाराजाधिराज जय सिंह : हरिचरित्रचन्द्रिका (1903 ई.), पृ. 164

हँसकर हेरते हुए बाँसुरी की टेर से रसयुक्त सुरतान निकालते हुए इस प्रकार वन से व्रज में आनेवाले श्रीकृष्ण, हे उद्धव! बिसारे नहीं बिसरते–

सरसीरुह सों सरसी अँखियाँ, पखियाँ सिर मोरन की फहरैं।
खुर रेनु भरीं अलकैं झलकैं, छबि कुण्डल गोल कपोल भरैं।
हँसि हेरनि बाँसुरी टेरनि त्यों, सरसे सुरताननि सों निकरैं।
बनते बृज आवत यों नँद नन्दन, ऊधौ! बिसारे नहीं बिसरैं।।[26]

आगे गोपियाँ अपने मन को नमक और कृष्ण के शरीर को पानी कहती हैं। इस प्रकार रूपक का यह नया रूप अत्यन्त लुभावना बन गया है–

सुनि काननि ओर न शोर परै दिन रैनि रहै रव बेनु छयो।
अँखियान न दूसरो देखि परै जब ते यह रूप समाइ गयो।
हरिवेष धरे तुम देखि परे बिनु स्याम सुनैबो को ज्ञान नयो।
मनमोहन के तन-पानिप में मिलि कैं मन लोन सो लीन भयो।।[27]

रूपक और उपमा का बड़ा सुन्दर निर्वाह हुआ है। आगे गोपियाँ व्रज की दशा का वर्णन करते हुए उनसे व्रज में न आने का निवेदन करती हैं। कहती हैं कि सुधा को धारण करनेवाला चन्द्रमा जेठ के सूर्य के समान तापदायक है। घर भयानक हो गये हैं। खाने को दौड़ते हैं। समीर व्याल फुफकार की भाँति हो गया है। वन-पुष्पों को देखते ही पीड़ा उत्पन्न होती है। ब्रज की चाल (रीति) उलटी (विपरीत) हो गयी है। उनका (कृष्ण का) कोमल स्वभाव इसे सहन नहीं कर पायेगा। हे उद्धव! आप इतना हठ जरूर करियेगा कि नन्दलाल व्रज में आने न पावैं, क्योंकि यहाँ की बिगड़ी हुई गति उनसे सही नहीं जायेगी–

जेठ दिवाकर सों भें सुधाकर, भौन भयानक खाइ सो धावै।
ब्याल उसास समीर भयो, बन फूल बिलोकत सूल सो जावै।
चालु भई बृज की उलटी, सह जैहै न कोमल स्याम सुभावै।
ऊधौ!इतौ हठि कै करियो, बृज को नँदलाल न आवन पावै।।[28]

---

26. तदेव, पृ. 239
27. तदेव, पृ. 239
28. तदेव, पृ. 239

जब श्रीकृष्ण मथुरा पहुँचे थे–पहली बार, तब उनकी सुन्दरता पर विमुग्ध मथुरा की रमणियाँ आपस में उसी प्रकार वार्तालाप करती हैं, जिस प्रकार मानस में श्रीराम को अवलोकित कर जनकपुरी की रमणियाँ। प्रसंग द्रष्टव्य है। तुलसी का प्रभाव स्पष्ट है। छन्द भी चिरपरिचित चौपाई ही है –

कहहिं परस्पर आपुस माहीं। अलि अस सुखमा त्रिभुवन नाहीं।।
लगत मयंक रंक मुख देखे। नख लखि छन छवि छवि केहि लेखे।।
हास विलास विलोकत नीको। अमी सुअंक रहे क्यों फीको।।
बंक बिलोकनि अति सुख देनी। मन्द मार सरसति दुख देनी।।
एक कहहिं विधि बड़ श्रम ठानो। त्रिभुवन रूप सार मथि आनो।।
तासो ये विधि रूप बनाये। प्रगट जगत दृगफल दरसाये।।
एक कहहिं अज ए नहिं जाये। बड़ तप करि शिव मनहिं बनाये।।
जे जग ऋषि मुनि सिद्ध उदासी। तिनहुँ देत सुख मदन मवासी।।[29]

इसी प्रकार अन्त तक वर्णनात्मक और भावनात्मक प्रसंगों की सुन्दर अवतारणा हुई है। कथा मात्र पूर्वार्द्ध है। अन्त में 'इति श्री हरिचरित्रचन्द्रिकायं नृपति जय सिंह कृतौ पूर्वार्ध समाप्तं' अंकित है। प्रतिलिपिकार द्वारा रचित दो दोहा और एक सोरठा भी अन्त में प्रकाशित है –

बाँधवपति वेंकट नृपति, तासु सुआज्ञा धारि।
जोशि भवानी दत्तवर, शोधि करी तैयारि।।
जीतन सिंह प्रवीन, यदा कदा देखी क्वचित।
छापि सुप्रस्तुत कीन, पाठक श्री रघुनाथ वर।।
सम्वत ग्रह सर ग्रह शशी, कुज दिन श्री मधुमास।
असित पक्ष एकादशी, पूरण कथा प्रकाश।।[30]

प्रतिलिपिकार ने यह प्रति चैत्र (मधुमास) कृष्ण पक्ष (असितपक्ष) एकादशी, विक्रमाब्द 1959 (ग्रह=9, सर=5, ग्रह=9, शशि=1 तात्पर्य 'अंकानां वामतोगतिः' सूत्रानुसार 1959), मंगलवार (कुजदिन) को तैयार किया। दूसरे

---

29. तदेव, पृ. 207

30. तदेव, पृ. 252

वर्ष विक्रमाब्द 1960 में इसका प्रकाशन हुआ। श्रीमन्नृपति जय सिंह जू देव की कवि–कीर्ति–कौमुदी की आधारशिला 'हरिचरित्रचन्द्रिका' ही है। निश्चय ही कृष्णभक्ति धारा की यह एक श्रेष्ठ कृति है।

मध्यकालीन रीति–साहित्य में आश्रयदाताओं की प्रशस्ति से सम्बन्धित पुष्कल सामग्री उपलब्ध होती है। महाराजाधिराज जय सिंह जू देव के आश्रयदाता–पक्ष को आरेखित करते हुए रीवा के एक राजकवि ने लिखा है –

धरणि धरा को धर धरम धरा में थापि,
भूपनि पताके सुचि सीख बीज ब्वै गयो।
भगति भगवन्त जू की बिरति बिबेक युत,
कै कै नरलोक परलोक सुद्ध ह्वै गयो।
मान गुणवानन को पालिबो प्रजानन को,
जै सिंह नरेश विश्वनाथ हाथ दै गयो।
धन दै दुज श्रेणी में, तन दै त्रिवेणी मध्य,
मन दै मुकुन्द में मुकुन्द रूप ह्वै गयो।।[31]

उपर्युक्त कवित्त महाराजा जय सिंह जू देव के वैकुण्ठवासी होने के उपरान्त लिखा गया है। 'हरिचरित्रचन्द्रिका' के संशोधक पण्डित भवानीदत्त जोशी ने उपर्युक्त कवित्त के रचयिता के स्थान पर 'रीवाँ के एक राजकवि' लिखा है। नाम गोपन क्यों किया गया? कुछ समझ में नहीं आता।

महाराजाधिराज जय सिंह के जीवन–काल में रीतिकालीन महाकवि पद्माकर (1753 ई. से 1833 ई. तक) द्वारा लिखी गयी उनकी प्रशस्ति महाराज जय सिंह की काव्यात्मकता और गुणग्राहकता को प्रकट करती है–

बकस वितुण्ड दै दै झुण्डन की झुण्ड रिपु–
मुण्डन की मालिका दई ज्यों त्रिपुरारी को।
कहै 'पदमाकर' करोरिन को कोष दैं दैं,
षोडशहू दीन्ह्यो महादान अधिकारी को।
ग्राम दयो, धाम दयो अमित अराम दयो,
अन्न जल दयो जगती के जीवधारी को।

---

31. उपक्रम : हरिचरित्रचन्द्रिका, पृ. 3

दाता जय सिंह द्वय बात तो ना दीन्हीं कहूँ,
बैरिन को पीठ अरु दीठि परनारी को।।[32]

महाराजाधिराज जय सिंह जू देव अपने समय के पहुँचे हुए वैष्णवोपासक थे। उन्होंने अन्त समय में अपने सुयोग्य पुत्र युवराज विश्वनाथ सिंह जू देव को राज्य-भार सौंप कर गंगा तट पर मृत्यु की इच्छा से प्रयाग के लिए प्रस्थान किया। चलते समय उन्होंने 'गंगालहरी' की रचना आरम्भ कर दी। इनकी प्रतिज्ञा थी कि जिस दिन सौंवा छन्द पूरा हो जायेगा, उसी दिन मृत्यु होगी। गंगाजी के तट पर पहुँचते ही जब बारह हाथ दूर थे, तब सौंवाँ छन्द पूरा हो गया, जिसकी अन्तिम पंक्ति थी- '**जय सिंह तारो जो तो तारिबो तिहारो है।**' बारह हाथ दूर ही मृत्यु शय्या लगायी गयी। उस पर महाराज लेट गये और कहा- 'जब मैं इतनी दूर से चलकर आया हूँ, तो क्या गंगाजी थोड़ी दूर आकर मेरा उद्धार नहीं कर सकतीं?' थोड़ी देर में गंगाजी की उत्ताल तरंगें बढीं और महाराज जय सिंह को भवसागर से पार कर दिया।[33] गंगा की छत्रछाया में शरीरत्याग का वृत्तान्त और मोक्षप्रदात्री भागीरथी गंगा जी द्वारा अगवानी करने की बात महाराजाधिराज जय सिंह जू देव के प्रतिभा-प्रसन्न पौत्र कविर्नृपति रघुराज सिंह जू देव ने भी स्वीकार किया है-

फहरातो जेहि धर्म को, अबलों ध्वजा महान।
जेहिं गमनत गोविन्दपुर, गंग कियो अगुवान।।[34]

'गंगालहरी' का प्रणयन और सौंवें छन्द की सम्पूर्ति के पश्चात् स्वयं गंगा का अपने निर्मल अंक में महाराजाधिराज जय सिंह जू देव को ले लेने की घटना से गंगालहरीकार पण्डितराज जगन्नाथ को गंगा द्वारा निज अंक में समाहित कर लेने का प्रकरण याद आता है। एक शासक के रूप में जय सिंह का त्रिवेणी में समाधिस्थ होने का सन्दर्भ चन्देल सम्राट् धंगदेव का स्मरण कराता है। सम्राट् धंगदेव ने भी अपने जीवन की लीला को गंगा-यमुना की गोद में संगता प्रदान की थी। शिलालेखों में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है-

---

32. उपक्रम : तदेव, पृ. 34
33. पण्डित रामसागर शास्त्री : विन्ध्य-दर्शन, भाग-1, पृ. 296
34. उपक्रम : हरिचरित्रचन्द्रिका, पृ. 22

रक्षित्वा क्षितिमम्बुराशिशरशनमितामनन्यायतिम्
जीवित्वा शरदां शतं समधिकं श्रीधङ्गपृथ्वीपतिः।
रुद्रं मुद्रितलोचनः स्वहृदये ध्यायं जपं जाह्नवी
कालिन्द्याः सलिले कलेवर परित्यागादगान्निर्वृतिम्।।[35]

भक्तकवि के रूप में पण्डितराज जगन्नाथ और भक्तभूपति के रूप में सम्राट् धंगदेव के अनुवर्ती महाराजाधिराज जय सिंह जू देव निश्चय ही भक्ति काव्य धारा के श्रेष्ठ कवि थे। कृष्णोपासना और अन्त में हरिचरणजा गंगा में समाधि लेकर उन्होंने अपनी ही पंक्ति को चरितार्थ कर दिखाया–

सुनि काननि ओर न शोर परै, दिन रैनि रहै रव बेनु छयो।
अँखियानि न दूसरो देखि परै, जबते वह रूप समाइ गयो।
हविवेष धरे तुम देखि परे बिन स्याम सुनैबौ को ज्ञान नयो।
मनमोहन के तन पानिप में मिलि कै मन लोन सो लीन भयो।।[36]

उपर्युक्त छन्द में 'मन लोन' के स्थान पर 'तन लोन' कर देने से गंगा–समाधि का सन्दर्भ उद्घाटित हो जाता है। कवि का लिखा सन्दर्भ बाद में सत्य सिद्ध हुआ, इसे 'कवयो मन्त्र द्रष्टारः' के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जय सिंह जू देव रीवा के अद्वितीय कविर्नृपति थे। इनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

❑❑

---

35. एपिग्रैफिका इण्डिका, जिल्द–1, पृ. 146, श्लोक–55
36. महाराजाधिराज जय सिंह जू देव : हरिचरित्रचन्द्रिका (1903 ई.), पृ. 239

राजा शिव सिंह एवं राजा कृष्णदत्त सिंह

हिमालय की प्राकृतिक सुषमा के परिष्वंग में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित अन्तर्वैश्विक धार्मिक महत्त्ववाले बौद्धधर्मस्थल श्रावस्ती को उत्तर प्रदेश का नूतन जनपद बनाये जाने पर प्राचीन भिनगा राज की महत्ता स्वयमेव बढ़ गयी। भिनगा राज की स्थापना गोंडा के बिसेनवंशीय राजा रामचन्द्र सिंह के द्वितीय पुत्र राजा भवानी सिंह ने की थी। राजा भवानी सिंह न केवल एक कुशल प्रशासक थे, अपितु एक श्रेष्ठ योद्धा भी थे। उन्होंने बावन युद्धों का नेतृत्व किया था। राजा भवानी सिंह के तीन पुत्र थे– कल्याण सिंह, फ़तेह सिंह और बरिवण्ड सिंह। कल्याण सिंह और फ़तेह सिंह के अल्पकालीन शासन के पश्चात् राजा बरिवण्ड सिंह का शासनकाल प्रारम्भ हुआ। राजा बरिवण्ड सिंह के समय में ही भिनगा राज की अधिकांश ज़मीन कृषि योग्य बनायी गयी।

सन् 1783 ई. में क्रूर नाज़िम द्वारा राजा बरिवण्ड सिंह की हत्या कर दी गयी और उनके सिर को काटकर गोंडा भेज दिया गया, जहाँ इज़्ज़त पवार के द्वारा उनका अन्तिम संस्कार किया गया। राजा बरिवण्ड सिंह के पश्चात् उनके पुत्र सर्वदमन सिंह और पौत्र शिव सिंह भिनगा के राजा हुए। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की 'Annual Report on the search for Hindi Manuscripts' से राजा शिव सिंह के कर्तृत्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। 'अवध के तालुक़दार' के विद्वान् लेखक श्री पवन बख़्शी ने राजा शिव सिंह और उनके चचेरे भाई कुँवर जगत सिंह के विषय में लिखा है– 'एक बार शिव सिंह के चचेरे भाई जगत सिंह ने उन पर हत्या करने के उद्देश्य से हमला करने का प्रयास किया। शिव सिंह ने उन्हें इस शर्त पर क्षमा कर दिया कि वे फिर कभी अपना मुँह नहीं दिखायेंगे। उन्हें गोंडा भेज दिया गया, जहाँ

उन्होंने देवतहा में एक छोटा-सा तालुक़ा कायम किया।'[1]

राजा शिव सिंह का जन्म सन् 1768 ई. के आसपास हुआ था और मृत्यु 1826 ई. में हुई। इनका रचनाकाल सन् 1793 ई. से सन् 1818 ई. के मध्य का है। राजा शिव सिंह का एक छन्द ठाकुर शिव सिंह सेंगर (1833-1878 ई.) ने अपने सुप्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में शिव सिंह प्राचीन के नाम से संकलित किया है-

ही जमुना जल जात अचानक, बानक सों नँदलाल ठई।
तब दौरि धर्‌यौ कर सों कर को, उर लाइ लई जनु निद्धि पई।
शिव सिंह जहीं परस्यो कुच को, तुतुराइ कह्यो अब छोड़ बई।
भुज ते निमुकाइ गुपाल के गाल में, आँगुरि ग्वालि गड़ाइ गई।।[2]

राजा शिव सिंह कृत छह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज में उपलब्ध हुए हैं, जिनमें प्रथम चार पिंगल ग्रन्थ (छन्दःशास्त्र) हैं।

1. **भक्तिप्रकाश** (1923/397C) : रिपोर्ट के अनुसार इसका रचनाकाल विक्रमाब्द 1852 (1795 ई.) है। रचनाकाल-सूचक छन्द उद्धृत नहीं है।
2. **भाषावृत्त मंजरी** (1923/397D)
3. **भाषावृत्त रत्नावली** (1923/396 E) : यह संस्कृत से अनूदित ग्रन्थ है-

सुभग वृत्त रत्नावली, छन्दशास्त्र सुरवानि।
सो ताको भाषा कियो, गिरिजापद नुति ठानि।।[3]

---

1. श्री पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार : रूपा पब्लिकेशन्स् इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, 7/16, अंसारी रोड, नई दिल्ली : द्वितीय संस्करण, 2012 ई., पृ. 303
2. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज : सम्पादक-डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण, 1970 ई., पृ. 560
3. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण, 1967 ई., पृ. 710

4. **श्रुतिबोध भाषा** (1923/397 H) : यह भी संस्कृत से अनूदित है।

5. **काव्यदूषण प्रकाश** (1923/397 F) : इस ग्रन्थ में तीन अध्याय हैं। पहले में काव्य-दोष, दूसरे में चित्रकाव्य और तीसरे में प्रहेलिका का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में कवि ने रचनाकाल अवश्य दिया है, पर वह बहुत स्पष्ट नहीं है-

वारिजजात खडानन आनन अंक।
सिद्धिसदन गजमुख लखि अवदन संक।।
शुक्रवार अष्टमि तिथि सिति वैसाष।
प्रगट कर्‌यो यह ग्रन्थै करि अभिलाष।।[4]

वारिजजात (ब्रह्मा) के चार मुख हैं और षडानन (स्कन्द) के छह इस बरवै में यही दो अंक दृग्गत हो रहे हैं। सीधा पढ़ने पर इनसे 46 और उल्टा पढ़ने पर 64 बनता है। 1800 इसमें दिया नहीं गया है। इस ग्रन्थ की रचना या तो विक्रमाब्द 1846 में हुई है अथवा विक्रमाब्द 1864 में।

कवि-नरेश शिव सिंह ने किसी ग्रन्थ में अपना नाम नहीं दिया है। केवल पिंगल ग्रन्थ 'भक्तिप्रकाश' की बरवैत्रयी में उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

नाम प्रगट करि बरनै कवि निज सर्व।
हाँ कैसे करि भाषौं मति अति खर्व।।
ताते प्रगट न भाखत, राखि विगोइ।
जू कवि सुमति लखि जानै, और न कोइ।।
कौ बरनै मंगल जग, करि-रिपु कौन।
सो बरनै वा ग्रन्थ, लखि कवि तौन।।[5]

उपर्युक्त बरवै में प्रश्नोत्तर के माध्यम से राजा शिव सिंह ने अपना नामोल्लेख किया है-

---

4. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 710
5. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 710

प्रश्न : को बरनै मंगल जग?

उत्तर : शिव।

प्रश्न : करि-रिपु कौन?

उत्तर : करि (हाथी) रिपु (शत्रु) = सिंह।

दोनों प्रश्नों के उत्तर में कवि-नाम 'शिव सिंह' छिपा है।

6. **रामचन्द्र चरित** (1933/397 G) : खोज रिपोर्ट के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना विक्रमाब्द 1857 (1800 ई.) में हुई। रचनाकाल-सूचक दोहा दिया हुआ है, किन्तु रचनाकाल बहुत स्पष्ट नहीं है-

वेद ससी जमकुसन तिथि, सप्तमि सित गुरुवार।
मास भादि दे बीच लखि, सम्पूरन सुबिचार।।[6]

राजा शिव सिंह ने इस ग्रन्थ में भी प्रच्छन्न रूप से अपना नाम दिया है-

मुक्ति करन कल्यानप्रद, अर्द्ध दिवदल रिपु व्याल।
ये पूरन मिलि नाम जिहि, किये ग्रन्थ हित बाल।।[7]

रीति-साहित्य के पण्डित डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने 'मुक्ति करन कल्यानप्रद' का अभीष्ट 'शिव' और 'रिपु व्याल' का अभीष्ट 'सिंह' स्वीकार किया है। इस प्रकार दोनों के संयोग से 'शिव सिंह' सिद्ध होता है। राजा शिव सिंह के उपर्युक्त छहों ग्रन्थ भिनगा राज के पुस्तकालय में एक ही ज़िल्द में सुरक्षित हैं।

खोज में राजा शिव सिंह के एक अन्य ग्रन्थ 'अमरकोष' का भी उल्लेख हुआ है। यद्यपि डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सरोज-सर्वेक्षण' में 'अमरकोष' के सम्बन्ध में विचार करते हुए उसे शिवप्रसाद कायस्थ की रचना स्वीकार किया है, तथापि 'अमरकोष' की दो प्रतियों में रचनाकार के रूप में राजा शिव सिंह का नामोल्लेख हुआ है-

ता दिन ग्रन्थ अरम्भ किय, श्री शिव सिंह सुजान।
अमरकोष भाषा कियो, दोहा को परनाम।।[8]

---

6. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 711
7. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 711
8. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : तदेव, पृ. 711

राजा शिव सिंह की मृत्यु के तीन वर्ष पूर्व ही सन् 1823 ई. में उनके ज्येष्ठ पुत्र युवराज सर्वजीत सिंह का मात्र बत्तीस वर्ष की अल्पायु में स्वर्गवास हो चुका था। इसलिए राजा शिव सिंह के बाद युवराज सर्वजीत सिंह के एक मात्र अवयस्क पुत्र कृष्णदत्त सिंह भिनगा राज के उत्तराधिकारी हुए। राजा कृष्णदत्त सिंह के विषय में श्री पवन बख़्शी लिखते हैं- 'कृष्णदत्त सिंह का जन्म 1821 में हुआ था और बालिग होने पर 1836 में गद्दी मिली। इनके अल्पायु के दिनों में राजप्रबन्ध इनकी दादी विद्याकुमारी देखती थीं। 1839 में नाज़िमा बेगम बजुन्निशा से बारह दिनों तक युद्ध चला। रसद की कमी के कारण किले को खाली करना पड़ा। नगर लूट लिया गया और किले को जला दिया गया। अत्यधिक कर वसूलने के कारण दो बार नाज़िमों से इनका युद्ध हुआ।

सन् 1836 में किले के निकट जंगल में कुछ बन्दूकें मिलने के कारण भिनगा का आधा राज्य जब्त कर लिया गया। इसका एक बड़ा भाग बलरामपुर रियासत को मिला। मई 1862 में अवध के तत्कालीन चीफ़ कमिश्नर सर जार्ज पूल के साथ शिकार करते समय गोली चल जाने से राजा कृष्णदत्त सिंह की मृत्यु हो गयी। वे संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। उनका संस्कृत पुस्तकों का ग्रन्थालय इस प्रान्त के सर्वोत्तम ग्रन्थालयों में से एक था। वे स्वयं कवि थे और कवियों के आश्रयदाता भी थे।'[9]

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने राजा कृष्णदत्त सिंह बिसेन का परिचय देते हुए लिखा है- 'यह राजा, काव्य में निपुण थे और इस रियासत में सदैव कवि-कोविदों का मान होता था। भैया जगत सिंह इसी वंश के नामी कवि हो गये हैं और शिव कवि इत्यादि इन्हीं के यहाँ रहे। अब भी भैया लोग खुद कवि हैं और काव्य की चर्चा बहुत है, जैसा बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के रईस अपना काल काव्यविनोद में व्यतीत करते हैं, वैसे ही इस रियासत के भाई बन्धु हैं।'[10] डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अपने 'सरोज-सर्वेक्षण' में राजा कृष्णदत्त सिंह का साहित्यिक परिचय दिया है। 'मिश्रबन्धु विनोद' (2317) में इनके एक ग्रन्थ 'गंगाष्टक' का उल्लेख है। राजा कृष्णदत्त सिंह अपने पितामह राजा शिव सिंह के

---

9. श्री पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार, पृ. 303

10. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, पृ. 666-667

न केवल राज्य के उत्तराधिकारी थे, अपितु उनकी साहित्यिक विरासत के भी उत्तराधिकारी थे। शिवदीन कवि विलग्रामी ने राजा कृष्णदत्त सिंह के नाम पर 'कृष्णदत्त रासा' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है, जिसमें राजा कृष्णदत्त सिंह और अवध के नवाब के नाज़िम महमूद अली ख़ां के बीच विक्रमाब्द 1901 (1844 ई.) में हुए युद्ध का सजीव वर्णन हुआ है।

राजा कृष्णदत्त सिंह का एक छन्द द्रष्टव्य है–

कानन समीप बसैं त्रिकुटी अपांग अंग,
आसन अजिन मृग अंजन अनाधा के।
अरुन विभाग कोर, विसद विभूति अंग,
त्यागे नींद विषय निमेष विष बाधा के।
'कृष्ण सिंह' काम-कला विविध कटाच्छ ध्यान,
धारना समाधि मनमथ सिद्धि साधा के।
प्रेम के प्रयोगी भये सुख सम्पति सँयोगी, अति
श्याम के वियोगी, भये जोगी नैन राधा के।।[11]

राजा कृष्णदत्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् 3 सितम्बर, 1850 ई. को जन्में इनके पुत्र युवराज उदयप्रताप सिंह भिनगा राज के उत्तराधिकारी हुए, किन्तु उस समय उनकी आयु मात्र बारह वर्ष थी, इसलिए राज का कार्य 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' के अधीन संचालित होता रहा। सन् 1869 ई. में राजा उदयप्रताप सिंह को भिनगा राज का पूर्णतः दायित्व प्राप्त हुआ। राजा उदयप्रताप सिंह का विवाह अगोरी-बड़हर नरेश रघुनाथ शाह की चतुर्थ पुत्री मुरारि कुँवरि से हुआ था। मई 1884 में ग्रेट ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने राजा उदयप्रताप सिंह को 'कोर्ट ऑफ आर्म्स' एवं सी.एस.आई. की उपाधि से अलंकृत किया। पिता और प्रपितामह की विद्या-व्यसनी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए राजा उदयप्रताप सिंह ने वाराणसी में उदयप्रताप महाविद्यालय का निर्माण कराया। राजा उदयप्रताप सिंह को क्षत्रिय महासभा ने 'राजर्षि' की गौरवपूर्ण उपाधि से अलंकृत किया और अंग्रेजी सरकार ने भी 'राजर्षि' उपाधि को मान्यता प्रदान किया।

---

11. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : तदेव, पृ. 79

वस्तुतः भिनगा राज की साहित्यिक परम्परा राजा शिव सिंह से प्रारम्भ होकर राजा कृष्णदत्त सिंह तक आती है। राजर्षि उदयप्रताप सिंह ने उस परम्परा को अपने उज्ज्वल कृतित्व से आगे बढ़ाया। निश्चय ही बिसेन वंश की काव्य-कला-प्रियता जगत्प्रसिद्ध है। राजा शिव सिंह और राजा कृष्णदत्त सिंह इसी जगत्प्रसिद्ध परम्परा के मुकुटमणि हैं। इन्हीं दोनों कवि-नरेशों एवं राजर्षि उदयप्रताप सिंह की उज्ज्वल कीर्ति के कारण भारतीय जनमानस में आज भी भिनगा राज प्रतिष्ठित है।

❑❑

राजा जसवन्त सिंह

'भाषाभूषण' के सुप्रसिद्ध रचनाकार जोधपुर नरेश महाराज जसवन्त सिंह राठौर (26 दिसम्बर, 1629 ई. – 28 दिसम्बर, 1678 ई.) से पृथक् तिरवा के राजा जसवन्त सिंह बघेल का साहित्यिक प्रदेय भी किसी से छिपा नहीं है। राजा जसवन्त सिंह के रचना-संसार के विषय में साहित्य-जगत् को सर्वप्रथम सूचना ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' से प्राप्त होती है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर लिखते हैं- 'जसवन्त सिंह बघेले, राजा तिरवा, ज़िले कन्नौज, सं. 1855 में उपस्थित। यह महाराज संस्कृत भाषा, फ़ारसी आदि के बड़े पण्डित थे। अष्टादश पुराण और नाना ग्रन्थ साहित्य इत्यादि सब शास्त्रों के इकट्ठे किये। शृंगारशिरोमणि ग्रन्थ नायिका-भेद का, भाषाभूषण अलंकार का और शालिहोत्र ये तीन ग्रन्थ इनके बनाये हुए बहुत अद्‌भुत हैं। संवत् 1971 में स्वर्गवास हुआ।'ड1. राजा जसवन्त सिंह के विषय में डॉ. किशोरीलाल गुप्त अपने 'सरोज-सर्वेक्षण' में लिखते हैं- 'जसवन्त सिंह बघेल क्षत्रिय थे। यह फ़र्रुख़ाबाद ज़िले के अन्तर्गत स्थित तिरवा के राजा थे। शृंगारशिरोमणि की अनेक प्रतियाँ खोज में मिली हैं।[2] पर इनसे कवि के विषय में कोई सूचना नहीं मिलती। यह रस ग्रन्थ है। इसमें अनेक कवियों के भी उदाहरण हैं। विनोद (1105) के अनुसार इनका रचनाकाल सं. 1856 है। शालिहोत्र की कोई प्रति अभी तक नहीं मिली है।'[3]

---

1. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज (सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1970 ई., पृ. 700
2. खोज रिपोर्ट-1909।136, 1923।184 ए. बी. सी. डी., 1926।202
3. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 1967 ई., पृ. 305

तिरवा में बघेल क्षत्रियों का आगमन मध्य प्रदेश के रीवा राज्य से ही हुआ है। तिरवा रियासत के बघेलवंश की स्थापना राव हरिहरदास ने की थी। राव हरिहरदास के एक मात्र पुत्र राव धरमदास हुए। राव धरमदास के दो पुत्र राव बिहार सिंह और राव महा सिंह हुए। राव महा सिंह के पुत्र राव प्रताप सिंह हुए। राजा सुमेर सिंह, राजा डम्मर सिंह, राजा रतन सिंह, राजा लायक सिंह आदि राव प्रताप सिंह के पुत्र हुए। राजा सुमेर सिंह ही तिरवा के प्रथम राजा हुए। राजा सुमेर सिंह अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी और प्रखर बुद्धि के शासक थे– INDIAN PRINCELY STATES के निर्माता हेनरी सोस्ज़यन्स्की (Henry Soszynski) ने राजा सुमेर सिंह के सन्दर्भ में लिखा है– 'Raja SUMER SINGH, Raja of Tirwa, he fought in the army of Nawab Shujauddaula at Buxar, afterwards he was granted the title of Raja by Padshah Shah Alam of Delhi, with a mansab of 3,000, the title was afterwards confirmed by the British government, his property was called Tirwa taluqa and comprised 87 villages.'[4]

राजा सुमेर सिंह की निःसन्तान मृत्यु हो जाने के बाद उनके अनुज राजा डम्मर सिंह तिरवा की गद्दी पर आरूढ़ हुए। इन्हीं राजा डम्मर सिंह के पौत्र थे राजा जसवन्त सिंह, जो अपने पिता राजा अनिरुद्ध सिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् 1803 ई. में तिरवा के शासक हुए। राजा जसवन्त सिंह को भी कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उनके मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई राजा प्रीतम सिंह तिरवा के उत्तराधिकारी हुए। राजा प्रीतम सिंह के पुत्र राजा जगत सिंह के उत्तराधिकारी बने राजा उदितनारायण सिंह के परिचय के सन्दर्भ में सी. हयवदन राव ने तिरवा के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– ' Tirwa, Raja of; Udit Narayan Singh; b. 1855; succeeded to estate, 1857; belongs to a family of Baghel Rajputs who had come over from Madhogarh in the days of Jai Chand of Kanauj, at the time of the Mutiny of 1857, the Raja was a mere child and the estate was managed by his mother on his behalf; after the Mutiny, it was taken over by the Court of Wards and was handed over to the Raja on his attaining majority; the estate comprises

4. Henry Soszynski : http://members.iinet.net.au/~royalty/ips/t/tirwa.html

of 126 villages in Farrukhabad and others in Mainpuri, Cawnpore and Etawa. Address: Tirwa, Farrukhabad, U.P., India.'[5]

राजा जसवन्त सिंह शृंगार के प्रौढ़ रचनाकार थे। स्वप्न में अभिलषित नायिका के साथ रमण कर रहे नायक के निद्राभंग के साथ ही सौन्दर्य-मूर्ति का परी की तरह उड़ जाने की अप्रतिम कल्पना राजा जसवन्त सिंह को श्रेष्ठ कवियों की अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित करती है-

लै सपने अपने मन की दुलही उलही छबि भाग भरी-सी।
अंक निसंक सों लै परयंक लला मुख चूँमि सुचारु धरी-सी।
यों लपटी चपटी हिय सों 'जसवन्त' बिसाल प्रसून छरी-सी।
नैनन के खुलते वह मूरति पास परी उड़ि जात परी-सी।।[6]

वस्तुतः रीतिकालीन कवियों ने शृंगार के जिन क्षणों को अपनी कल्पना से अमरत्व प्रदान किया है, उन्हें यदि आधुनिक टेक्नोलॉजी के युग में फोटोग्रॉफ़ी की दृष्टि से देखा जाय, तो रीति-कवियों के सौन्दर्यबोध के प्रति मन श्रद्धाभिभूत हुए बिना नहीं रहता। सद्यःस्नाता नायिका के द्वारा धोती निचोरते हुए भौंह मरोरने, नेह जोरने के साथ साथ नायक के चित्त को चुराने की कला का रेखांकन केवल चित्रकार की तूलिका ही नहीं करती, अपितु कवि की लेखनी भी शब्दों से ऐसे क्षणों को अमर बना देती है। राजा जसवन्त सिंह के शृंगारशिरोमणि के निम्नांकित सवैये को इसी दृष्टि से देखा जा सकता है-

छूटी लटैं लटकैं मुख पै जल बिन्दु लसैं मनो पोहत मोती।
बोलत बोल, तमोल विराजत राजत, है नथ में ससि-गोती।
ओज सरोज, उरोज कली, सुभली त्रिबली अलि आनँद ओती।
जोरति नेह, मरोरति भौंह, सुचोरति चित्त, निचोरति धोती।।[7]

---

5. C. Hayavadana Rao : The Indian Biographical Dictionary (1915) : https://en.m.wikisource.org/wiki/The_Indian_Biographical_Dictionary_(1915)/Tirwa,_Raja_of;_Udit_Narayan_Singh
6. राजा जसवन्त सिंह : शृंगारशिरोमणि : ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 547, पृ. 191
7. राजा जसवन्त सिंह : शृंगारशिरोमणि : छन्द सं. 548, पृ. 191

इसी क्रम में शृंगार का एक और सवैया छन्द प्रस्तुत है–

हेरौं त हेरो न जात भटू, हरि हेरे बिना नहिं लागत नीको।
नैन जुरैं न, मुरैं न भली बिधि, कौतुक कासों कहौं यह जी को।
को समुझै 'जसवन्त' इसै हौं सुताको करौं बलि पौरि जनी को।
जीव कली कहे, लाज तुरंग, कहौ कहिबो करौ लाज कै जी को।।[8]

लंक तक लटके लम्बे लम्बे लटोंवाली नायिका के चित्त तोड़ने, हिय जोड़ने, कंचुकी छोड़ने और जम्हाते हुए मुख मोड़ने का कितना सुन्दर चित्रण राजा जसवन्त सिंह ने किया है, इसका केवल अनुभव किया जा सकता है–

लाँबी लाँबी लटैं लोनी लटकत लंक लौं लौं,
लीक लागि लोचन, उड़त झकझोरि झोरि।
छूटि गये सकल सिंगार हार टूटि गये,
लूटि गये लपटि भुअंग अंग कोरि कोरि।
सकुचि सयानी अँगरानी प्रान प्यारी बाल,
प्यारे 'जसवन्त' के निकट तन तोरि तोरि।
तोरि तोरि चित्त, हिय जोरि जोरि लाड़िलो सों,
छोरि छोरि कंचुकी, जम्हात मुख मोरि मोरि।।[9]

भारतीय नरेशों को अश्वविज्ञान का उच्चकोटि ज्ञान रहा है। 'शालिहोत्र' नामक ग्रन्थ की रचना अधिकांश कवि–नरेशों ने किया है। राजा जसवन्त सिंह ने भी 'शालिहोत्र' का प्रणयन किया है। एक कुशल अश्वारोही को कैसा होना चाहिए, इसका वर्णन करते हुए राजा जसवन्त सिंह लिखते हैं–

जंघै जमाव दुवौ घुटुवान लौं, पींडुरी ढीली दुहूँ दिसि चालै।
कानन मध्य में दीठि रहै, थिरता करिकै कटि नेकु न हालै।
जानै तुरंगम के मन की गति, चाहिए ता बिधि चाबुक धालै।
सोई सवार कहे 'जसवन्त' बचाये चलै जो तमाल दिवालै।।[10]

---

8. राजा जसवन्त सिंह : शृंगारशिरोमणि : छन्द सं. 549, पृ. 191
9. राजा जसवन्त सिंह : शृंगारशिरोमणि : छन्द सं. 550, पृ. 191
10. राजा जसवन्त सिंह : शालिहोत्र : छन्द सं. 551, पृ. 192

वस्तुतः एवं तत्त्वतः राजा जसवन्त सिंह उच्चकोटि के कवि थे, किन्तु कतिपय संग्रह ग्रन्थों में उद्धृत कविताओं के अतिरिक्त उनका साहित्य अभी भी अप्रकाशित ही है। इसलिए साहित्येतिहास में राजा जसवन्त सिंह की उतनी चर्चा नहीं हो पायी है, जितनी होनी चाहिए थी। कविर्मनीषी राजा जसवन्त सिंह के उपलब्ध घनाक्षरी-सवैये उनकी सारस्वत साधना के वाङ्मय-मधुपर्क हैं। इसमें कथमपि सन्देह नहीं।

❑❑

महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह

भारतीय कवि–नरेशों की परम्परा में डुमराँव राज्य के महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतेन्दु–पूर्व युग के प्रसिद्ध भक्तकवि महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह रामभक्ति–परम्परा की माधुर्य–प्रधान शाखा के प्रमुख स्तम्भ हैं। रामभक्ति–परम्परा में दो शाखाएँ हैं–पहली ऐश्वर्य–प्रधान और दूसरी माधुर्य–प्रधान। प्रथम शाखा में प्रचुर साहित्य प्रकाशित है। दूसरी शाखा में भी पर्याप्त साहित्य रचा गया है, किन्तु रसिक साधना की गोप्य प्रकृति के कारण वह अपने सम्प्रदाय तक ही सीमित रहा। परिणामस्वरूप रामभक्ति की मधुरोपासना का बहुत कम साहित्य प्रकाश में आ पाया। डुमराँव के महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह ने 'लीलारसतरंगिणी' नामक वृहत्काय ग्रन्थ का प्रणयन कर रामभक्ति की मधुरोपासना के साहित्यिक भाण्डागार को समृद्धि प्रदान किया है।

हिन्दी–साहित्येतिहास में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का सर्वप्रथम उल्लेख अप्रैल 1878 ई. में प्रकाशित काँथा के तालुक़ेदार श्रीमन्महाराजकुमार ठाकुर रंजीत सिंह सेंगर के पुत्र पुलिस इंस्पेक्टर ठाकुर शिव सिंह सेंगर के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में हुआ है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' की कवि–संख्या 768 पर 'शिवप्रसाद सिंह बाबू डुमराँव' के नाम से महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का उल्लेख करते हुए इनके द्वारा रचित 'रामतत्त्वबोधिनी' नामक ग्रन्थ से निम्नलिखित घनाक्षरी उद्धृत किया है–

तुलसी–प्रसाद हिय हुलसी श्री राम कृपा,
सोई भवसागर के पुल–सी ह्वै लसी है।
जाकी कविताई अनरथ–तरु टंगा सम,
गंगा की–सी धार, भक्त जन मन धसी है।

परम-धरम-मारतण्ड उर-व्योम उग्यो,
काम-क्रोध-लोभ-मति-तम-निसा-नसी है।
वाही के प्रकास जम गन मुँह मसि लाई,
अति सुख पाय जिय मेरे आय बसी है।।[1]

इसी तरह ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' के उत्तरार्ध 'कवियों का जीवन चरित्र' नामक खण्ड में 856/768/24 संख्या पर शिवप्रकाश सिंह बाबू डुमराँव का एक पंक्ति में परिचय दिया है- 'इन्होंने विनयपत्रिका का तिलक रामतत्त्वबोधिनी नाम बहुत सुन्दर बनाया है।'[2]

प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी-कविता के वरेण्य विद्वान् एवं विश्रुत पाठालोचक डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने सरोजकार की अपेक्षा अपने वृहत्काय ग्रन्थ 'सरोज-सर्वेक्षण' में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का परिचय ठीक ठीक दिया है।[3]

महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह डुमराँव (बिहार) के महाराज बहादुर जयप्रकाश सिंह के छोटे भाई थे। महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह परमार क्षत्रिय थे। परमारों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि महर्षि वसिष्ठ की यज्ञाग्नि से इनकी उत्पत्ति हुई थी, इसलिए परमार अग्निवंशीय क्षत्रिय कहलाते हैं। विक्रमाब्द 1070 के लगभग के कवि धनपाल ने अपने 'तिलकमंजरी' नामक गद्यकाव्य में लिखा है कि आबू के गुर्जर लोग, वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न एवं विश्वामित्र को पराजित करनेवाले परमार-नरेश के प्रताप को अब भी स्मरण करते हैं-

---

1. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज : सम्पादक-डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण 1970 ई., छन्द सं. 1734, पृ. 604
2. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : तदेव, पृ. 802
3. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी : प्रथम संस्करण 1967 ई., पृ. 713

वासिष्ठैस्म कृतस्मयो वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो
भूपालः परमार इत्यभिधया ख्यातो महीमण्डले।
अद्याप्युद्गतहर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्यार्बुदे
विश्वामित्रजयोज्झितस्य भुजयोर्विस्फूजितं गुर्जराः।।[4]

राजा मुंज के सभाकवि पद्मगुप्तकृत 'नवसाहसांकचरित' के अनुसार सरिताओं तथा फल-मूल के प्राचुर्य को देखकर मुनि वसिष्ठ ने आबू पर्वत पर आश्रम बनाया। एक बार विश्वामित्र उनकी कामधेनु छीन ले गये। इस पर क्रुद्ध होकर वसिष्ठ ने अथर्व-मन्त्र से अग्निकुण्ड में आहुति देकर एक वीर पुरुष उत्पन्न किया, जो उनके शत्रुओं को मारकर उनकी गाय ले आया। महर्षि वसिष्ठ ने प्रसन्न होकर उस वीर का नाम 'परमार' रख दिया और उसे छत्र से विभूषित कर राजा बना दिया।[5]

महर्षि वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से परमारों की उत्पत्ति के समर्थन में अनेकशः तथ्य प्राप्त हैं, किन्तु वाल्मीकिरामायण में वसिष्ठ-विश्वामित्र के युद्ध-प्रसंग में अग्निकुण्ड से किसी पुरुष की उत्पत्ति का उल्लेख नहीं है, बल्कि उनकी प्रसिद्ध गौ कामधेनु के हुंकार से पह्लव, शक, यवन, काम्बोज, बर्बर आदि की उत्पत्ति का वर्णन है।[6]

आबू के अचलेश्वर-मन्दिर में प्राप्त अभिलेख के अनुसार वसिष्ठ ने अपने अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए पुरुष को शत्रुओं का नाश करने में समर्थ देखकर उसका नाम परमार रख दिया।[7] इन तथ्यों के आधार पर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि महर्षि वसिष्ठ के शत्रुओं को मारनेवाले वीर पुरुष के वंशज ही

---

4. धनपाल कवि : तिलकमंजरी, 39 : उद्धृत-विश्वेश्वरनाथ रेउ : राजा भोज : हिन्दुस्तानी एकेडमी : प्रथम संस्करण 1932 ई., पृ. 5
5. महाकवि पद्मगुप्त : नवसाहसांकचरित, सर्ग 11, श्लोक सं. 49, 64-69, 71
6. वाल्मीकिरामायण, सर्ग 54, श्लोक 18, 21 एवं सर्ग 55 श्लोक 1-3
7. विश्वेश्वरनाथ रेउ : राजा भोज, हिन्दुस्तानी एकेडमी : प्रथम संस्करण 1932 ई., पृ. 6

परमार क्षत्रिय हैं और पर (शत्रु) को मारने के कारण ही उनको परमार कहा गया–'परान् मारयतीति परमारः।'

यह तथ्य परम्परा–प्रसिद्ध है कि पूरे देश के परमार क्षत्रिय अपने को अग्निवंशी और वसिष्ठगोत्रीय मानते आये हैं। कर्नल जेम्स टॉड के 'राजस्थान का इतिहास' के अनुसार आबू पर्वत पर मुनियों की यज्ञ–रक्षा के निमित्त ब्राह्मणों द्वारा निर्मित अग्निकुण्ड से क्रमशः परिहार, चालुक्य, परमार और चौहान की उत्पत्ति हुई। इसलिए ये चारों अग्निवंशी क्षत्रिय कहलाते हैं। कर्नल जेम्स टॉड के अनुसार परमार वंश से पैंतीस शाखाएँ निःसृत हुईं और उनके राज्य का बहुत अधिक विस्तार हुआ है, इसलिए प्रसिद्ध है कि पृथ्वी परमारों की है–'पृथ्वी तणां पँवार की।'[8] 'बीकानेर–वंशावली' के अनुसार[9] उज्जैन के परमारवंशीय राजा सूरशाह की सन्तान थे, किन्तु 1947 ई. की 'राजपूत पत्रिका' के अनुसार उज्जैनी क्षत्रिय परमार हैं और सुप्रसिद्ध सम्राट् विक्रमादित्य और महाराज भोज के वंशज हैं। सम्राट् विक्रमादित्य के 69वीं पीढ़ी तक परमारों ने मालवा के उज्जैन को राजधानी बनाकर राज्य किया। 'परमार–दर्पण' के अनुसार शकारि विक्रमादित्य की 69वीं पीढ़ी में राजा शान्तनशाह का नामोल्लेख है।[10] राजा शान्तनशाह राजा गणेशशाह के पुत्र थे। इन्होंने शाहाबाद ज़िले के मौज़े कुरूर परगना धनवार में अपने गढ़ का निर्माण करवाया था। मुंशी विनायकप्रसाद ने अपने हिन्दी ग्रन्थ 'परमार–दर्पण' और फ़ारसी ग्रन्थ 'तवारीख़–ए–उज्जैनिया' में डुमराँव राज्य का इतिहास प्रस्तुत किया है। प्रो. अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र' का अनुमान है कि बिहार में

---

8. कर्नल जेम्स टॉड : राजस्थान का इतिहास : अनुवादक–श्री केशवकुमार ठाकुर : प्रकाशक : आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद : संस्करण 1962 ई., पृ. 65, 67

9. बीकानेर–वंशावली, पृ. 103 : उद्धृत–ठाकुर इन्द्रदेवनारायण सिंह : बृहत् क्षत्रियवंश–भास्कर : प्रकाशक–लेखक, भिदपुर, मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार : संस्करण 1947 ई., पृ. 147

10. मुंशी विनायकप्रसाद : परमार–दर्पण : प्रकाशक–मुंशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ : संस्करण 1901 ई., पृ. 1

लगभग छह सौ वर्षों से परमार-नरेशों की अविच्छिन्न परम्परा है।[11]

राजा शान्तनशाह के प्रपौत्र राजा रामशाह के पुत्र राजा दलपतिशाह सन् 1577 ई. में बिहटा (परगना नेउर) में गद्दी पर बैठे। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के उप-निदेशक (अनुसन्धान) पद पर कार्यरत रहते हुए महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह कृत 'लीलारसतरंगिणी' का 1982 ई. में सम्पादन करनेवाले विद्वान् पाठालोचक डॉ. परमानन्द पाण्डेय लिखते हैं कि दलपतिशाह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र राजा मकुटनशाह गद्दी पर बैठे, और 1607 ई. में उनके चचेरे भाई होलशाह के पुत्र नारायणमल ने भोजपुर और जगदीशपुर की गद्दी सँभाली। उनके बाद छठे राजा होरिल सिंह ने सन् 1708 ई. में अपने नाम पर होरिलनगर बसाया, जो डुमराँव से सटा हुआ था। बाद में दोनों मिलकर एक हो गया, जो वर्तमान डुमराँव है। होरिलनगर अब लुप्त हो गया।... सन् 1746 ई. में होरिल सिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र छत्रधारी सिंह और उनके बाद उनके पुत्र विक्रमाजीत सिंह (सन् 1770-1805 ई.) राजा हुए। राजा विक्रमाजीत सिंह के भ्रातृज बाबू दुष्टदवन सिंह के पुत्र महाराज बहादुर जयप्रकाश सिंह सन् 1805 ई. के 10 मार्च को गद्दी पर बैठे। इन्हीं के अनुज कवि महाराज शिवप्रकाश सिंह थे।[12]

लीलारसतरंगिणीकार भक्तकवि महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का जन्म आश्विन शुक्ल 8 संवत् 1844 वि. (सन् 1787 ई.) में हुआ था। इनके पिता महाराजकुमार बाबू दुष्टदवन सिंह डुमराँव के महाराज बहादुर विक्रमाजीत सिंह के अनुज थे। महाराजकुमार शिवप्रकाश सिंह के ज्येष्ठ भ्राता महाराज बहादुर जयप्रकाश सिंह तथा कनिष्ठ भ्राता महाराजकुमार बाबू हरप्रकाश सिंह थे। डुमराँव राज्य की प्रजा के बीच महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह 'बड़ा बाबू साहेब' एवं महाराजकुमार बाबू हरप्रकाश सिंह 'छोटा बाबू साहेब' के रूप में

---

11. प्रो. अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द्र' : आत्मचरितचम्पू : प्रकाशक-पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय : संस्करण 1939 ई., पृ. 6
12. डॉ. परमानन्द पाण्डेय : महाराज शिवप्रकाश सिंह-कृत 'लीलारसतरंगिणी' : प्रकाशक-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना : प्रथम संस्करण 1982 ई., पृ. 3

प्रसिद्ध थे। बाबू शिवप्रकाश सिंह का पाणिग्रहण संस्कार जीगीरशण्ड के बाबू रोपन सिंह की पुत्री रामकली कुँवरि के साथ सम्पन्न हुआ, जिनसे संवत् 1866 वि. (सन् 1809 ई.) में लाल रामेश्वरबख़्श सिंह का जन्म हुआ।

लाल रामेश्वरबख़्श सिंह मौज़ा मझवारी, परगना भोजपुर-रियासत के स्वामी हुए। जुलाई, 1868 ई. में लाल रामेश्वरबख़्श सिंह की मृत्यु हो गयी। इनकी पत्नी (बाबू शिवप्रकाश सिंह की पुत्रवधू) राजवंशी कुँवरि 'काकीजी' ने पुराना भोजपुर में 40 बीघे में आम का बाग़ लगवाया और उसके पूरब में मुसाफिरों के लिए पक्का इनारा बनवाया। कवि-पुत्रवधू 'काकीजी' ने पुराने तालाब के दक्षिण तटबन्ध पर पंचमन्दिर का निर्माण करवाया और जानकीनाथ का श्रीविग्रह स्थापित किया। मन्दिर की व्यवस्था के लिए पुराना भोजपुर में बेलहारी गाँव दे दिया। इन्होंने पण्डित व्यास को पुराणकथा-श्रवण के दक्षिणा-स्वरूप 25 बीघे ज़मीन दिया, जिसकी सनद महाराज सर राधाप्रसाद सिंह बहादुर के हस्ताक्षर और मुहर से जारी की गयी है। लाल रामप्रकाश सिंह महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह के एक मात्र पौत्र थे, जिनकी 25 वर्ष की अल्पायु में संवत् 1915 वि. में मृत्यु हो गयी। विधवा पौत्रवधू गुनराज कुँवरि का संवत् 1945 वि. में स्वर्गवास हो गया। इसके बाद बाबू शिवप्रकाश सिंह के वंशजों का उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः पौत्र लाल रामप्रकाश सिंह को कोई सन्तति न थी।

महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह के ज़िम्मे क़र्ज़ लगाने और वसूलने का कार्य सौंपा गया था। वे ज़रूरतमन्द अन्य छोटी रियासतों को क़र्ज़ देते थे। क़र्ज़दारी के कारोबार से इन्होंने ख़ज़ाने में काफ़ी धन बढ़ाया। क़ाज़ी मुहम्मद रज़ा के द्वारा रचित 'कारनामा नामदाराने भोजपुर' नामक हस्तलिखित ग्रन्थ के अनुसार इसी तरीके से महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह ने रियासत क्वाथ, ममलूका नवाब नूरूल हसन खाँ साहब, राज बक्सर, राज हल्दी, रियासत रहथुआ, सामपुर दिखती तथा राजपुर को क़र्ज़ से दबाकर और इन रियासतों को ख़रीदकर डुमराँव राज्य में मिला लिया।[13]

महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह की लोकोपकारीवृत्ति प्रसिद्ध है। इनकी उदारता के सम्बन्ध में श्री परमानन्ददत्त 'परमार्थी' ने लिखा है कि इन्होंने

---

13. कारनामा नामदाराने भोजपुर, पृ. 62-63

सरकार को पच्चीस हज़ार रुपये देकर वरुणा नदी का पुल बनवा दिया था।[14] महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह की अर्धांगिनी रानी रामकली कुँवरि 'ईयाजी' स्वयं उदारहृदया और धर्मनिष्ठा थीं। मुंशी विनायकप्रसाद के अनुसार नया भोजपुर में ककुआजी के बाग़ से दक्षिण 20 बीघे में और छतनवार (परगना भोजपुर) पोखरा से पूर्व 25 बीघे में अवस्थित दो आम्रकुंज रानी रामकली कुँवरि की कीर्ति-कथा के जीवन्त प्रमाण हैं।[15] दूसरे आम्रकुंज में यात्रियों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए एक पक्का इनारा (कूप) भी बनवाया था। ये दोनों आम्रकुंज आज भी विद्यमान हैं। सन् 1844 ई. में रानी रामकली कुँवरि का एवं सन् 1847 ई. में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का स्वर्गवास हो गया।

जीवन के उत्तरार्ध में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह को वैराग्य हो गया था और वे काशी में रहने लगे थे। काशी-प्रवास-काल में ही इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासकृत 'विनयपत्रिका' की 'रामतत्त्वबोधिनी' टीका लिखी, जो बड़ी मधुर एवं लोकप्रिय हुई। इसी टीका का उल्लेख 'शिवसिंह सरोज' में हुआ है। यह टीका सन् 1880 ई. में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित हुई थी। रामतत्त्वबोधिनी टीका की कार्तिक शुक्ल 7, संवत् 1735 वि. की एक हस्तलिखित प्रति नागरीप्रचारिणी सभा, काशी के संग्रहालय में सुरक्षित है। इस टीका के अन्त में लिपिकार गुरदीनदास वैष्णव ने भक्तकवि महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का परिचय देते हुए लिखा है-

भोज वंश अवतंस कहि, जै प्रकास महराज।
रजधानी डुमराँव मैं, है तिन सुभग समाज।।

तिनके लघु भाई सुहृद, सिवप्रकास जेहि नाम।
तिननै यह टीका करी, सकल सास्त्र को धाम।।[16]

---

14. परमानन्ददत्त 'परमार्थी' : 'बिहार के प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दी-साहित्यसेवी' : जयन्ती-स्मारक-ग्रन्थ : प्रकाशक-पुस्तक-भण्डार : संस्करण 1942 ई., पृ. 628
15. मुंशी विनायकप्रसाद : परमार-दर्पण, पृ. 21
16. नागरीप्रचारिणी सभा, काशी : खोज रिपोर्ट 1947/386

'विनयपत्रिका' की 'रामतत्त्वबोधिनी' टीका में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह ने अपनी रचनाओं का उल्लेख किया है–

प्रथम कियो सतसंग विलास। श्रीरामायण तत्त्व प्रकास।।
दूसर भजन रसार्णव अमृत। भजन तरंगन करि सो आवृत।।
भगवत रस सम्पुट तीसर है। जामे रस को उठति लहर है।।
अद्‌भुत रस तरंग है नाम। चौथ सो सब सिद्धान्त ललाम।।
इतिहास लहरि पंचम सो भयो। कहत सुनत जेहि नित सुख नयो।।
भगवत तत्त्व भासकर षट् जो। अज्ञान तिमिर नासत झटपट सो।।
सप्तम विनयपत्रिका टीका। रामतत्त्वबोधिनी सुनीका।।[17]

लगभग ऐसा ही उल्लेख 'लीलारसतरंगिणी' में भी किया गया है–

षट मैं ग्रन्थ प्रथम ही किये। संग्रह करि विचारि सुख लिये।।
संस्कृत भाषा मिले प्रकास। नाम तासु सतसंग विलास।।
संग्रह चौपाई दोहा कर। नाम तासु इतिहास लहरिवर।।
संग्रह एक कवित्त सुहावा। भगवत रस सम्पुट तेहि गावा।।
अद्‌भुत रस तरंग दोहाचय। संग्रह ललित किये सो रसमय।।
भजन रसार्णव अमरित नाम। संग्रह सो विस्नु पद ललाम।।
केवल संस्कृत संग्रह जोय। भागवत तत्त्व भास्कर सोय।।
विनयपत्रिका गीतावली। टीका बातूनी सो भली।।
रामगीता वेद स्तुतिहूँ कर। टीका लिखी वचनिका सुखकर।।[18]

मुंशी विनायकप्रसाद ने 'तवारीख़–ए–उज्जैनिया' में बड़ा बाबू साहेब शिवप्रकाश सिंह कृत 1. सतसंगविलास, 2. रसार्णव, 3. भागवत रस, 4.

---

17. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : विनयपत्रिका, रामतत्त्वबोधिनी टीका : लिपिकार–गुरदीनदास वैष्णव : नागरीप्रचारिणी सभा काशी।

18. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक–डॉ. परमानन्द पाण्डेय, पृ. 5

रसतरंगविलास, 5. इतिहासलहरी, 6. भजन विष्णु पद भास्कर, 7. गीतावली तिलक और 8. तुलसीदास कृत रामायण की टीका का उल्लेख किया है।[19]

बाबू शिवनन्दन सहाय ने महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या 12 बताते हुए लिखा है–'डुमराँव के राजभवन में श्रीमान् महाराजकुमार शिवप्रकाश सिंहजी, पं. राधावल्लभजी, पं. रामचरित्रजी एवं बच्चू मल्लिक आदि के संग कविता–गान तथा पुस्तक–निर्माण में मग्न थे। आपके द्वारा विनयपत्रिका की टीका हुई और कालान्तर में अन्य 11 पुस्तकों की भी रचना हुई।'[20]

'लीलारसतरंगिणी' के पूर्व महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह ने स्वयं 6 ग्रन्थों के निर्माण का उल्लेख किया है–1. सतसंगविलास, 2. इतिहासलहरी, 3. भागवतरससम्पुट, 4. भजनरसार्णव, 5. भागवततत्त्वभास्कर और 6. विनयपत्रिका, गीतावली, रामगीता एवं वेदस्तुति की टीका। कवि ने विनयपत्रिका, गीतावली, रामगीता एवं वेदस्तुति की टीकाओं को एक ही ग्रन्थ माना है, किन्तु डुमराँव–राज पुस्तकालय में विनयपत्रिका और रामगीता की टीकाएँ दो ग्रन्थ के रूप में सुरक्षित हैं। डुमराँव–राज पुस्तकालय में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह के 9 ग्रन्थ उपलब्ध हैं, यथा–1. लीलारसतरंगिणी, 2. भागवततत्त्वभास्कर, 3. सतसंगविलास, 4. इतिहासलहरी, 5. भजनरसार्णव, 6. विनयपत्रिका की टीका, 7. रामगीता, 8. उपदेश–प्रवाह और 9. स्फुट कवित्त संग्रह।

'लीलारसतरंगिणी' 79 तरंग में विभक्त रामभक्ति की मधुरोपासना का एक वृहत्काय ग्रन्थ है। रामभक्ति में मधुरभाव से उपासना करनेवाले भक्तों में द्रविड़ के भक्तकवि शठकोप (नम्मालवार) का प्रथम स्थान है। रसिक गद्दियों की आचार्य–परम्परा में नम्मालवार को प्रथम आचार्य माना गया है। इन्होंने 'सहस्रगीति' में

---

19. मुंशी विनायकप्रसाद : तवारीख़–ए–उज्जैनिया (शाहाबाद का इतिहास) : सम्पादक–ब्रह्मा पाण्डेय : प्रकाशक–वातायन मीडिया एण्ड पब्लिकेशन्स प्रा. लि., फ्रेजर रोड, पटना : प्रथम संस्करण 2007 ई., पृ. 55
20. 'बिहार में गत पचास वर्षों में हिन्दी की दशा' : साहित्य–पत्रिका : नागरीप्रचारिणी सभा, आरा, खण्ड 8, संख्या 10, सन् 1914 ई., पृ. 13

काकुत्स्थ (राम) के प्रति प्रणयोद्‌गार व्यक्त कर कान्ताभाव की उपासना की पुष्टि की है। हिन्दी में सर्वप्रथम अग्रदासजी ने 'ध्यानमंजरी' की रचना कर रसिक-साधना-पद्धति को सुव्यवस्थित एवं व्यवहारिक रूप दिया। जिन ग्रन्थों के आधार पर रामभक्ति-शाखा में रसिक-भक्ति का विकास हुआ है, उनमें 'सत्योपाख्यान' का उल्लेखनीय स्थान है। इसके रचयिता ललकदास लखनऊ-निवासी थे और इनका काल 1793 ई. माना जाता है।[21] रसिकों के लिए 'सत्योपाख्यान' श्रोतव्यग्रन्थ है। इसके श्रवण से पापों का नाश होता है और रामभक्ति की प्राप्ति होती है। इसमें शृंगारिक उपासना-पद्धति के भक्तों के लिए स्पष्टतः 'रसिक' शब्द प्रयुक्त हुआ है तथा इस कथा को गोपनीय बताया गया है। श्रद्धावान् रामभक्त ही इसके श्रवण के अधिकारी हैं-

इदं तु चरितं रम्यं रामस्य परमात्मनः।।
श्रोतव्यं रसिकैः सर्वैर्भावुकैः प्रीतिपूर्वकम्।
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति रामे भक्तिः प्रजायते।।
येषां तेषां न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः।
श्रद्धावन्तं च वक्तव्यं रामभक्ताय शौनक।।[22]

'लीलारसतरंगिणी' की तरंग संख्या 74 के अन्त में उपर्युक्त श्लोक के भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

रसिक अनन्यहि कहिय यह, कथा न आनहि कोय।
भावक जन के प्रानधन, अवरहिं विष सम होय।।
स्त्रद्धा बिन रसबात, अनरस होत प्रसिद्ध पय।
चोखो तीर नसात, पत्थर पर के मार तें।।[23]

---

21. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय, पृ. 540
22. महात्मा ललकदास : सत्योपाख्यान-74/49-51
23. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक-डॉ. परमानन्द पाण्डेय,पृ. 422

'लीलारसतरंगिणी' की कथावस्तु का मुख्याधार 'सत्योपाख्यान' ही है। इसका उल्लेख स्वयं कवि ने 'लीलारसतरंगिणी' में ही किया है–

कथाबीज रिषि उक्त प्रमान। तेह बिन कथा न करहि सुजान।।
ताते मैं सत्योपाख्यान। ललित रहस्य रामरसख़ान।।
कथाबीज ताही को लैहौं। उक्ति जुक्ति बहु औरहु कैहौं।।[24]

'लीलारसतरंगिणी' की विशेषता इस अर्थ में उल्लेखनीय है कि इसमें भक्तकवि महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह ने रसिक कृष्णभक्तों के विपरीत लीलाचित्रण में श्लाघनीय संयम का परिचय दिया है, जिससे श्रीराम का एकपत्नीव्रत और मर्यादापुरुषोत्तम रूप अक्षुण्ण रह सका है। 'लीलारसतरंगिणी' के अन्तिम तरंग में कहा गया है कि श्रीराम सीता और सभी भाइयों सहित अवधपुरी में विविध प्रकार की लीलाएँ कर माता–पिता और प्रजा को अनिर्वचनीय आनन्द देते हैं। इसी तरंग में सीता और राम का रसमय नख–शिख–वर्णन भी है। सीता के नख–शिख–वर्णन के पूर्व कवि ने 'भवत्रास नास हित जगतजननि सिय रूप' का हृदय में ध्यान किया है। 'लीलारसतरंगिणी' के कवि की विशेषता है कि वे शृंगारिक वर्णनों के बीच भी निरन्तर स्मरण रखते हैं कि राम परब्रह्म और सीता आदिशक्ति हैं –

जगतजननि सिय रूप लेस प्रथमहि कहि भाषौं।
ध्यान सोई भवत्रास नास हित हिय में राखौं।।
चरन चारु मृदु अरुन अँगुरिरन्ह पर नख सोहत।
मनहु कमल दल मध्य बैठि मुक्ता मन मोहत।।[25]

अन्तिम तरंग के अन्त में कवि ने परब्रह्म राम की वन्दना तथा उनके विराट् रूप के गुणगान के अनन्तर 'लीलारसतरंगिणी' में नवरस का जलप्रवाह और कथा–तथ्य का सांगोपांग रूपक प्रस्तुत किया है। कवि का कहना है कि

---

24. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक–डॉ. परमानन्द पाण्डेय, पृ. 6
25. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक–डॉ. परमानन्द पाण्डेय, पृ. 488

वेद–पुराणादि–गिरि से निःसृति यह स्वतः 'राम–रूप–सिन्धु' से मिलकर अचल महिमा आयत्त कर लेती है–

राम तीर्थजात्रा सुपावन गुन सरित बसे,
लसे सब काल सो निहाल करे टरे पाप।
स्वामि स्वामिनी विवाह सुख को प्रवाह जामे,
पर्व जो उत्सव उछाह लाह हरे ताप।
बेद इतिहास बर पुरान गिरि जो अनूप,
लीलारसतरंगिनी ये तातैं चलि ढरे आप।
रामरूप सिन्धु मिलि अचल प्रभाव जाको,
महिमा कलाप को अलाप बिनु जोख नाप।।[26]

निश्चय ही 'लीलारसतरंगिणी' भक्ति और शृंगार के मधु–मिसिरी–संयोग से रसिक भक्तों तथा काव्यरसिकों को परमानन्द प्रदान करनेवाली अनुपम कृति है। छन्दोविधान की दृष्टि से भी 'लीलारसतरंगिणी' का हिन्दी–काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें 140 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रयुक्त छन्दों में प्रचुर प्रवाह एवं प्रांजलता है। प्रायः रसानुरूप छन्द–योजना के कारण काव्य में हृदयावर्जक ओज एवं माधुर्य का आस्वादन होता है। दण्डक और सवैया की रचना में कवि को अधिक सफलता मिली है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपनी वाणी के मुख्य संवाहक के रूप में इन्हीं दोनों छन्दों का प्रयोग किया है। दण्डक के प्रयोग में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह जहाँ महाकवि भूषण और महाकवि पद्माकर के समकक्ष दृग्गत होते हैं, वहीं सवैये में रसख़ान और तुलसीदास की सरसता आयत्त कर लेते हैं। यहाँ दण्डक वृत्त का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

कहूँ हिहिनात सोर घोर अति घोरन्ह को,
कहूँ चितकार बहु दिग्गज करत हैं।
रथन्ह के चक्का हचक्का होत घरघरात,
तुरग उचक्का धक्का गिरत परत हैं।

---

26. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक–डॉ. परमानन्द पाण्डेय, पृ. 507

खुरन्ह के काटे धुरी धुन्ध नभ पूरि रह्यौ,
धरा अकुलानी धीर सेस न धरत हैं।
सूझत न बूझत न बात कोउ पूछत है,
सूखत सरित पसु लूकत डरत हैं।।[27]

काव्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी 'लीलारसतरंगिणी' में अनेक मनोहर प्रसंग हैं। अनेक स्थलों पर शृंगार रस के हृदयावर्जक वर्णन मिलते हैं। सखियाँ राम-सीता को झूला रही हैं। उन्होंने पेंग को बढ़ाकर जोर से झकोरा दिया कि झूला बहुत ऊँचे द्रुम के ऊपर चला गया, जिससे सीता डर गयीं और हा हा कर राम के 'कोरा' (अंक) में जा गिरीं। यहाँ भयभीत सीता की छवि चित्रित करने में कवि की सूक्ष्म दृष्टि दर्शनीय है –

चाव भरी सखि भाव हियैं अति पैंग बढ़ाव दई झकझोरा।
ऊचो विसेष गयो द्रुम ऊपर राम हँसे गहि फूलन्ह तोरा।
सीय डरी करि हा हा तबैं अकुलाय गिरी परी पीय के कोरा।
देखि हँसी रस ध्यान बसी हिय डोर कसी सखि राखि हिँडोरा।।

पीय के हीय रही सट सीय डराय के जीय उसास भरी।
उढ़ाय लई पट पीत तबैं उपमा सो अनूप विचार करी।
मानो सुहावन स्याम घटा बिजुरी उर माँझ छिपाय धरी।
रसख़ान सो ध्यान कविस्वर बुद्धि सुजान थकी जकि पेखि खरी।।[28]

महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह तुलसी-वाङ्मय के गम्भीर अध्येता और वैदुष्यपूर्ण टीकाकार थे, इसलिए 'लीलारसतरंगिणी' के ऊपर तुलसी-वाङ्मय विशेषतः श्रीरामचरितमानस के प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह भारतेन्दु-पूर्व युग के महनीय रचनाकार हैं। रामभक्ति की रसिक-काव्य-परम्परा के वरेण्य कवि

---

27. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक-डॉ. परमानन्द पाण्डेय, पृ. 226
28. महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह : लीलारसतरंगिणी : सम्पादक-डॉ. परमानन्द पाण्डेय, पृ. 431

के रूप महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का प्रदेय अविस्मरणीय है। परमार राजवंश के अद्वितीय रत्न सम्राट् विक्रमादित्य, योगिराज भर्तृहरि, महाराज भोजदेव, महाराजकुमार बाबू नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह 'ईश' एवं महाराजकुमार बाबू दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह की विद्वत्परम्परा में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का योगदान उल्लेखनीय है। विनयपत्रिका की 'रामतत्त्वबोधिनी' टीका के नीरक्षीरविवेकी टीकाकार एवं रसिक-परम्परा के वृहत्काय ग्रन्थ 'लीलारसतरंगिणी' के रचनाकार के रूप में महाराजकुमार बाबू शिवप्रकाश सिंह का ऊर्जस्वल कर्तृत्व एवं अनुकरणीय व्यक्तित्व साहित्य-जगत् में सदैव अमर रहेगा।

❑❑

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध के साहित्यकारों में रीवा–नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव का विशिष्ट स्थान है।[1] बान्धवेश विश्वनाथ सिंह जू देव अपने समय के रससिद्ध सुकवि, प्रखर प्रतिभा सम्पन्न आचार्य, प्रथम हिन्दी–नाट्यकार, श्रेष्ठ टीकाकार, उच्चकोटि के रामभक्त और लोकप्रिय प्रजापालक नरेश थे। राजनीति और साहित्य–दोनों ही क्षेत्रों में इनका समानाधिकार था। काव्यशास्त्रीय धरातल पर काव्यकला को विकसित करने के साथ ही संगीत, चित्र और वास्तुकला के क्षेत्र में भी इन्होंने अप्रतिम मेधा का विनियोग किया। महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह सहृदय कलाकार और मर्मज्ञ कलानुशीलक ही नहीं, अपितु कलाकारों के प्रोत्साहक आश्रयदाता भी थे।

बान्धवेश विश्वनाथ सिंह जू देव के आविर्भावकाल को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सं.1778 (1721 ई.) से सं. 1794 (1740 ई.) तक इनका शासनकाल स्वीकार करते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा के मतानुसार 'रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव का जन्म सं. 1790 वि. में हुआ।'[2] मिश्रबन्धुविनोदकार के अनुसार 'अपने पिता के पीछे आप सं. 1891(सन् 1834) में बान्धव (रीवाँ) नरेश हुए और सम्वत् 1911 (सन् 1854) तक राज्य करते रहे।'[3] 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका' के

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास (संस्करण – द्वादश), पृ. 317
2. डॉ. रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (तृतीय संस्करण), पृ. 476
3. मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धु विनोद, तृतीय – भाग (द्वितीय संस्करण), पृ. 1022

लेखक डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने मिश्रबन्धुओं के मत का समर्थन करते हुए लिखा है–'महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव का राज्यकाल सन् 1833 से सन् 1854 ई. तक था।'[4] रीवाराज्यदर्पणकार दीवान जीतन सिंह ने इस सम्बन्ध में लिखा है ... 'महाराज जय सिंह देव का वैकुण्ठवास सन् 1833 ई. में हुआ और तत्पश्चात् महाराज विश्वनाथ सिंह सिंहासन पर बैठे। ... 1854 में आप गोलोकवासी हुए।'[5]

'रीवा स्टेट डाइरेक्ट्री' के 'रूलर ऑफ़ रेवा' शीर्षकानुच्छेद में महाराज विश्वनाथ सिंह का राज्यकाल सन् 1833-54 ई. दिया गया है।[6] 'विन्ध्यभूमि' (त्रैमासिक पत्रिका) के अक्टूबर, 1956 ई. के अंक में प्रकाशित एक लेख के अनुसार ... 'जय सिंह देव के पुत्र महाराज विश्वनाथ सिंह का जन्म सम्वत् 1846 में हुआ। इनका राज्यकाल 1890 से 1911 वि० तक है।'[7] गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री ने 'युगप्रवर्तक विश्वनाथ सिंह का राज्यकाल वि० सं.18901911 वि० तक माना।'[8]

विन्ध्य प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रीवा द्वारा प्रकाशित महाराज विश्वनाथसिंह कृत 'आनन्द रघुनन्दन' के भूमिकाकार ने लिखा है–'महाराज विश्वनाथ सिंह का जन्म वैशाख शुक्ल 14, सम्वत् 1846 (सन् 1789) में हुआ था। .....इनका स्वर्गवास 65 वर्ष की आयु में कार्तिक कृष्ण सप्तमी शुक्रवार को सम्वत् 1911 में हुआ।'[9]

---

4. डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 238
5. दीवान जीतन सिंह : रीवा राज्य दर्पण, (1919 ई.), पृ. 67
6. The Rewa State directory (1947), Krishna Murti Saksena, P. 24.
7. सं. अम्बिकाप्रसाद श्रीवास्तव : विन्ध्यभूमिः परिचय – अंकः अक्टूबर, 1956; सूचना एवं प्रसार विभाग, विन्ध्यप्रदेश, पृ. 110
8. गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री : विन्ध्य प्रदेश का इतिहास (प्रथम संस्करण), पृ. 136
9. आनन्दरघुनन्दन : विन्ध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भूमिका, पृ. 2

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव के सुपुत्र कविनरेश रघुराज सिंह जू देव ने प्रख्यात ग्रन्थ रामरसिकावली (भक्तमाल) में अपने पिता के आविर्भावकाल के सम्बन्ध में लिखा है–

'अष्टादश षट चालिस साला । माधव सित चौदशि शुभकाला ।।

लियो जन्म मौ पितु विशुनाथा । रीवाँ नगर महामुद गाथा।।[10]

रीवा स्टेट गजेटियर में महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव का राज्यकाल सन् 183354 दिया हुआ है।[11]

उपर्युक्त कथनों पर दृष्टिपात करते ही स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शुक्ल का दिया गया संवत् अशुद्ध है। इसी तरह डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन भी निश्चित रूप से शुद्ध नहीं है। अन्य सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि महाराज का जन्म 1789 ई. (सं. 1846 वि०) में हुआ और उनका राज्यकाल सन् 1833 ई. से 1854 ई. पर्यन्त था।

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव परमभागवत महाराजाधिराज जय सिंह जू देव के प्रथम पुत्र थे। महाराज जय सिंह जू देव का दो विवाह हुआ था– प्रथम माण्डा (इलाहाबाद) के गहरवार नरेश उदयवन्त सिंह की दुहिता शम्भु कुँवरि से और और द्वितीय गोरैया (सतना) के दिखित राजा माधव सिंह की दुहिता हरवंश कुँवरि से। महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह का जन्म प्रथम महारानी शम्भु कुँवरि से हुआ था। महारानी हरवंश कुँवरि विमाता थीं।

विश्वनाथ सिंह के अनुज रावेन्द्र लक्ष्मण सिंह जू देव 'माधौगढ़ चौरासी' तथा अनुजात अनुज रावेन्द्र बलभद्र सिंह जू देव 'अमरपाटन' के जागीरदार थे। महाराज साहब की भगिनी सहोदर कुँवरि का विवाह विक्रमाब्द 1880 में उदयपुर के महाराणा जवान सिंह के साथ सम्पन्न हुआ था। इनके विवाहोत्सवावसर पर राज्य भर में प्रथम बार 'दैजावन' लगाया गया था, जो एक प्रकार का कर था, जिसे राजकुमारी साहिबा के विवाहोत्सव के समय प्रजा को देना पड़ा था।

---

10. महाराज रघुराज सिंह : रामरसिकावली (भक्तमाल), चतुर्थ संस्करण, पृ. 900

11. `Jai Singh was succeeded on his death in 1833 by Visvanath Singh'– Rewa State Gazetteer, Valume IV, Page-17.

पहले राजवंश में बहुविवाह प्रथा का प्रचलन था। इसी परम्परानुसार विश्वनाथ सिंह के 5 विवाह हुए थे। प्रथम विवाह नागौद के परिहार शासक राजा शिवराज सिंह की तनया सुभद्रा कुँवरि से हुआ, जिनसे युवराज रघुराज सिंह और राजकुमारी जानकी कुँवरि का जन्म हुआ। द्वितीय विवाह मझौली (गोरखपुर) के बिसेन राजा अजीतमल की दुहिता शिवनाथ कुँवरि से हुआ। तृतीय विवाह गोरैया (सतना) के दिखित राजा प्रतिपाल सिंह की तनया हरनाथ कुँवरि से हुआ। चतुर्थ विवाह बरदी (सीधी) के चन्देल राजा जगजीत सिंह की दुहिता सुभद्रा कुँवरि के साथ सम्पन्न हुआ और पंचम विवाह टेउगा (प्रतापगढ़) के राजा हमशील गुलाब सिंह की पुत्री सोमवती नँदहा कुँवरि के साथ हुआ। प्रथम महारानी सुभद्रा कुँवरि की सन्तति परम्परा के अतिरिक्त शेष चार महारानियों की सन्ततियों के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह की गणना प्रमुख रसिक रामभक्तों में की जाती है। रसिक साहित्य में इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि रामभक्ति की इस धारा के वे सहायक ही नहीं, अपितु विधिवत् दीक्षित साधक थे। उन्होंने राधावल्लभीय गुरु आचार्य प्रियादास से उपदेश लिया था, जिसकी पुष्टि उनके द्वारा रचित ग्रन्थों से होती है। अपने ग्रन्थ 'परमतत्त्वप्रकाश' के प्रारम्भ में उन्होंने अपने गुरु प्रियादास जी की वन्दना की है –

'.....जय गनेस हरि गुरु प्रियादास चरन धरि सीस।'[12]

ग्रन्थान्त में लिखा है –

'ग्यान जोग अरु भक्ति को, कीन्ह्यो नव्य प्रकास।
जासु कृपा तेहि पद एहौं जै जै गुरु प्रियादास।।63।।'[13]

महाराज साहब ने 'उत्तम-काव्य-प्रकाश' (व्यंग्य-प्रकाश) के प्रारम्भ में भी गुरु प्रियादास जी की वन्दना की है–

---

12. महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव : परमतत्वप्रकाश (पाण्डुलिपि), सरस्वती कोष भाण्डार, किला रीवा पत्र सं. 1
13. तदेव, पत्र सं. 32

'श्री हरि गुरु प्रियादास जै जै शिवा धिवा गणेश।
सरस्वती सीता राम जै जै राधा राधेश।।1।।'[14]

'आह्निक अष्याम' के प्रारम्भ में भी गुरु प्रियादास जी की वन्दना की गयी है। 'ध्रुवाष्टक सतिलक' से भी सिद्ध होता है कि महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव आचार्य प्रियादास जी के शिष्य थे।

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह नित्य श्री सीताराम की अष्टयाम भावना सखी रूप में किया करते थे। श्रृंगारी साधना के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने महात्मा प्रियादास जी से 'षडक्षर राम मन्त्रोपदेश' लिया था, जिसका उल्लेख करते हुए उनके पुत्र महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव ने लिखा है –

'लियो जन्म मो पितु विशुनाथा। रीवाँ नगर महामुद गाथा।।
आह्निक तासु रह्यो यहि भाँती। चार दण्ड बाकी उठि राती।।
करैं भावना ध्यानहिं माँही। सखी रूप सिय रामहिं काहीं।।
आह्निक श्री सीतापति केरो । करहि भावना वेद निवेरो।।
चारि ध्यान निशि दिन में करहीं। भव वासना सकल परिहरहीं।।

एक समय विशुनाथा को, स्वप्ने शंकर आय।
राम षडक्षर मंत्र को, तेहि एकान्त ले जाय।।'[16]

रसिक भावना की प्रेरणा विश्वनाथ सिंह को महात्मा प्रियादास जी से ही मिली थी, इसका आभास महात्मा जानकीरसिकशरण जी की निम्नांकित पंक्तियों से होता है –

'गुरु प्रियादास जी से राममंत्र बीज पाय,
सतगुरु भाव–जल सींचि कै बढ़ाये हैं।

---

14. महाराज विश्वनाथ सिंह : उत्तम–काव्य–प्रकाश (व्यंग्य–प्रकाश): वही, पत्र सं. 1
15. महाराज विश्वनाथ सिंह : आह्निक अष्टयामः वही, पत्र सं. 1
16. महाराज रघुराज सिंह : रामरसिकावली (भक्तमाल), पृ. 900

कीरति सुखाई रसिकन सुखदाई बिन,
देखे को प्रतीति कोई कोई जन पाये हैं।।'[17]

कहा जाता है कि एक बार रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह ने रामचरणदास जी को सतसंग के लिए रीवा बुलाया। उनके कर्मचारी इन्हे ले जाने के लिए सवारी लेकर आये। इन्होने उनके एक स्वरचित पद देकर लौटा दिया, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

'बात यह को नहिं सुनत हँसी।
तजि रघुनाथ जो जाचत औरहिं तामुख मलो मसी।।'[18]

रसिकाचार्य रामचरणदास जी से महाराज साहब के द्वारा रसिक–दीक्षा लेने तथा मानसी–पूजा की विधि सीखने का भी वर्णन प्राप्त होता है और विश्वनाथ सिंह को 'श्रृंगार–पंथ' का 'भेदी' बताया जाता है–

'जगत विदित उत्तम कथा विश्वनाथ नृपराज की।
सीताराम चरित्र ग्रन्थ अवलोकत निसिदिन।
जुगल नाम अरु जुगल रूप सुधि लेत छिनहिं छिन।।

उत्तम पन्थ श्रृंगार भक्ति दसधा के भेदी।
पण्डित कला प्रवीन रसिक रस ग्रन्थ निवेदी।।

श्रीरामचरण सतगुरु कृपा क्रिया मानसी साज की।
जगत विदित उत्तम कथा विश्वनाथ नृपराज की।।'[19]

महाराजाधिराज रघुराज सिंह के अनुसार विश्वनाथ सिंह की रसिक साधना इतनी ऊँची स्थिति की थी कि एक बार चित्रकूट के नित्यरास में वे सखी रूप में सम्मिलित भी हुए थे। इस घटना के बाद आजन्म वे अपने को दिव्य–दम्पति का पारिषद् मानकर उनकी उपासना करते रहे –

'पुनि चलि चित्रकूट यक काला। पुरश्चरण तहँ कियो विशाला।
लख्यौ स्वप्न महँ यक निशि माँहीं। सखी रूप चलि गोपुर काहीं।।

---

17. महात्मा जानकीरसिकशरण : रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ. 125
18. डॉ.भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 420
19. महात्मा जानकीरसिकशरण : रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ. 124

सीताराम रास जहँ होतो। महा मोद छन छनहिं उदोतो।।
सखी रूप तहँ आपु सिधाई। रहन लग्यो पुर महँ सुख छाई।।

आयो पुनि रीवाँ नगर, राम रंग मँह छाकि।
पार्षद वपु मानत निजै, रहन लगो प्रभु ताकि।।'[20]

सखी भाव के रहस्यों की दीक्षा प्राप्तकर लेने के अनन्तर महाराज विश्वनाथ सिंह की रास-लीला में इतनी निष्ठा हो गयी कि एक बार जब किसी सन्त ने उन्हें एक सुन्दर शालिग्राम की मूर्ति भेंट की तो उसका नाम उन्होंने 'रासविहारी' ही रखा –

'एक समय आयो इक सन्ता। लीन्हें शालिग्राम अनन्ता।
पितु लै मूरति सिर धरयो, चक्र चिह्न दरसाय।
रासविहारी नाम तेहि, राख्यो प्रीति बढ़ाय।।'[21]

'रामरसिकावली' से ज्ञात होता है कि 'संगीतरघुनन्दन' नामक ग्रन्थ, जो अपने विषय का उत्तम ग्रन्थ माना जाता है और 'रामाह्निक' अथवा 'रामाष्टयाम' की रचना भी राम के रसमय चरित्र को लेकर हुई थी। इसकी प्रेरणा उन्हें 'रासविहारी राम' से ही प्राप्त हुई थी–

'स्वप्न माँहि प्रभु शासन दीन्हों। क्यों नहिं ग्रन्थ संस्कृत कीन्हों।।
तब संगीत रघुनन्दन ग्रन्था। रच्यो राम-सिय-रास सुपन्था।।
बहुरि राम आह्निक निर्मान्यो। निशि दिन चरित राम जो ठान्यो।।'[22]

महाराज विश्वनाथ सिंह की रामभक्ति सगुणक्षेत्र तक ही सीमित न रही। निर्गुण क्षेत्र भी उनकी दिव्याभा से अनुरंजित हुआ, जिसका अनुमान 'कबीर-बीजक' पर उनकी 'पाखण्डखण्डिनी' टीका से सहज ही लगाया जा सकता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा–

रमैनी- **'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम को मर्मैं आना।।'**

---

20. महाराज रघुराज सिंह : रामरसिकावली (भक्तमाल), पृ. 900
21. महाराज रघुराज सिंह : रामरसिकावली (भक्तमाल), पृ. 902
22. तदेव, पृ. 901

टीका– **'सो दशरथ सुत को तो तीनों लोक जानै हैं पै राम नाम को मर्म कोऊ कोऊ जानै हैं अर्थात् कबहूँ दशरथ सुत कबहूँ नारायण कबहूँ व्यापक ब्रह्म ही अवतार लेइहैं। नित्य साकेत बिहारी परम पुरुष पर जे श्री रामचन्द्र हैं जिनके नाम ते ब्रह्म ईश्वर वेद शास्त्र सब निकले हैं तौने राम नाम को तो मर्मैं आन है।'**[23]

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव का यह राम-प्रेम भावना-जगत् से बाहर व्यावहारिक-जगत् में भी प्रकाशित हुआ। अयोध्या-दर्शन और सरयू-स्नान उनकी रामभक्ति के अविभाज्य अंग हो गये थे। सरयू में स्नान करते हुए एक बार उनके तीन क्रोश तक बह जाने का उल्लेख मिलता है।[24] रसिक साधकों की सुविधा के लिए इन्होंने चित्रकूट में अनेक मन्दिर एवं भवनों का निर्माण करवाया। कहा जाता है कि अयोध्या के रसिक सन्त श्री युगलानन्यशरण जी पर इनकी विशेष श्रद्धा थी और चित्रकूट के भवनों के निर्माण की प्रेरणा इन्हें उनके (युगलानन्यशरण जी के) चित्रकूटवास के अवसर पर मिली थी। राजधानी रीवा में स्थापित सीताराम मन्दिर में चैत्र मास में रामलीला का आयोजन बड़ी धूमधाम से महाराज साहब किया करते थे। यथा–

'पुनि मन्दिर सुन्दर बनवायो। सीताराम तहाँ पधरायो।।
करैं रामलीला मधुमासा। कहुँ कहुँ होइ प्रत्यक्ष तमासा।।'[25]

'इस प्रकार शृंगारी रामोपासना के प्रचार में इनका बड़ा योगदान था। राजकार्य के साथ ही भक्ति-साधना और काव्य-साधना के इस विषमव्रत के पालन में उनकी समता में विरले ही भूमि-पति आते हैं।'[26]

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। वे जहाँ एक ओर शान्तिप्रिय थे, वहीं दूसरी ओर शत्रुओं को नष्ट करनेवाली शक्ति भी उनमें विद्यमान थी। उच्चकोटि के भक्त होने के साथ ही वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ शासक थे। प्रजापालन करते हुए साहित्य-निर्माण में संलग्न साहित्यकार

---

23. महाराज विश्वनाथ सिंह : बीजक सटीक, पृ. 413
24. महाराज रघुराज सिंह : रामरसिकावली (भक्तमाल), पृ. 905
25. तदेव, पृ. 900
26. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 434

होने के साथ ही वे उदारमना आश्रयदाता भी थे। उनके दरबार में अच्छे अच्छे साहित्यकारों को आश्रय प्राप्त था। रामनाथ प्रधान, जुगलदास जुगलेश, गोपाल कवि, बक्शी समन सिंह 'समनेश', महाकवि अजवेश प्रभृति उनकी राजसभा के श्रेष्ठ सुकवि थे।

धर्मनिष्ठ होते हुए भी महाराज साहब संकीर्ण नहीं थे। उनकी दृष्टि में राम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं था। इसी तरह निर्गुण और सगुण में भेद न मानते हुए गोस्वामी जी की पंक्ति **'निगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा'** को उन्होंने अपने इसी जीवन में चरितार्थ कर दिखाया था। हिन्दू-मुस्लिम का भेद भी उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था। वे सदैव मन की शुद्धता पर बल देते थे।

बान्धवेश विश्वनाथ सिंह स्वभावतः भ्रमणशील नहीं थे, किन्तु मृगया के प्रति आसक्ति के कारण कभी कभी सन्निकट की अरण्यानी में भ्रमण कर लेते थे। भक्ति-भाव के कारण चित्रकूट, अयोध्या, विन्ध्याचल आदि तीर्थस्थानों का भी उन्होंने भ्रमण किया था।

महाराज की दानवीरता भी प्रसिद्ध है। एक बार हरिनाथ कवि विभिन्न राज्यों का भ्रमण करते हुए उनके दरबार में उपस्थित हुए। वे पहले कई राज्यों में जा चुके थे और याचना करने पर भी उन्हें कुछ प्राप्त नहीं हुआ था। महाराज विश्वनाथ सिंह की राजसभा में उन्होंने अवसर देखकर यह कवित्त सुनाया –

'मेरो भाल विधि ने लिख्यो है तू सुकवि ह्वै है,
पै पैहै न कौड़ी कहूँ जाँचे बार पाँचौं हैं।
तेरो भाल विधि ने लिख्यो है तोहि जाचे कोई,
विमुख न ह्वै है यह यश जग राचौं है।
तृष्णा है तरल तऊ थिर न रहत मेरी,
जाय जाय देश के महीपतन जाँचौ है।
आयो विश्वनाथ सिंह आज मैं परीक्षा लेन,
तेरो भाल साँचौ है कि मेरो भाल साँचौ है।।'[27]

कवित्त का श्रवणकर महाराज अत्यधिक प्रसन्न हुए और हरिनाथ को एक लक्ष मुद्रा राशि पुरस्कार रूप में देकर उनकी दरिद्रता दूर करने का प्रयत्न

---

27. गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री : विन्ध्य प्रदेश का इतिहास, पृ. 243

किये। इसी तरह 'एकबार महाकवि पं० उमापति त्रिपाठी 'कोविद' लखनऊ में महाराज विश्वनाथ सिंह की गुणग्राहकता सुनकर रीवा गये। दरबार में जाकर इन्होंने आशीर्वाद के रूप में निम्नलिखित छन्द पढ़ा –

यस्य हृदोऽवनिजाता जातु न यातु।
विश्वनाथ विश्वाद्यस्सत्वां पातु।।

संस्कृत भाषा के इस बरवै छन्द से उनकी मौलिकता का पता चलता है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत को कहाँ तक वे जीता जागता स्वरूप देने में समर्थ थे। इनके पाण्डित्य का कहना ही क्या? रीवा की राजसभा में जब भागवत के प्रथम श्लोक के इन्होंने 47 अर्थ किये और उनमें से अधिकांश महाराज विश्वनाथ सिंह पर घटाये, तब सभी चकित हो गये। फिर भी इनकी परीक्षा लेने के विचार से दरबारी पण्डितों ने बड़ी नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि 'पण्डित जी यह श्लोक तो पुराना है।' इसका मर्म समझकर पण्डित उमापति जी ने उक्त बरवै के ही 17 अर्थ कर डाले।[28] महाराज विश्वनाथ सिंह ने पण्डित उमापति जी को आदरपूर्वक एक वृहद् पुरस्कार राशि प्रदानकर सम्मानित किया।

कवि–सम्राट् महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव का हृदय जितना स्वच्छ एवं विशाल था, कहीं उससे अधिक उनका मस्तिष्क महान् था। उनकी प्रतिभा और विद्वत्ता का सहज ही अनुमान उनकी विपुल रचना–राशि से लगाया जा सकता है। वे हिन्दी और संस्कृत पर समानाधिकार तो रखते ही थे, अन्य भाषाओं का भी उन्हें ज्ञान था। भोजपुरी, मैथिली, बघेली, अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के शब्दों का उनके द्वारा अपनी रचनाओं में उदारतापूर्वक प्रयुक्त करना इस तथ्य का प्रमाण है। उनके साहित्य में विवृत विषयों से अभिज्ञात होता है कि वे रामभक्ति, वेदान्त, निर्गुणोपासना, वैराग्य, नीति, विनय, धनुर्विद्या, पाकविद्या, शृंगार काव्यशास्त्रादि विषयों के उद्भट विद्वान् थे। गद्यकार और पद्यकार – दोनों ही रूपों में उनकी लेखनी सुफला हुई है। मौलिक प्रतिभा के साथ ही उनमें व्याख्याकार की योग्यता भी थी। टीकाकार तो वे थे ही, आलोचक के बीज भी उनकी प्रतिभा–धरा में सन्निहित थे। वस्तुतः वे सर्वविध सिद्धसाहित्यकार थे।

---

28. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 455

अनेक आलोचक उनको हिन्दी के प्रथम नाट्यकार होने का गौरव प्रदान करते हैं। उनकी विद्वत्ता और प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए सभी साहित्येतिहासकारों ने अपनी लेखन की धन्य बनाया है। यथा –

'... ये महाराज अच्छे कवि थे और कवियों एवं विद्वानों का इन्होंने अच्छा सम्मान किया। इनकी भाषा व्रजभाषा और कविता प्रशंसनीय है।[29] ... आपका विशाल पाण्डित्य अनेकानेक उत्कृष्ट हिन्दी और संस्कृत ग्रन्थों से प्रकट है और इतने अधिक ग्रन्थों की रचना से आपका भारी साहित्य-प्रेम एवं श्रम-शीलता प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है। आप बड़े दानी थे और कवियों का सदैव अच्छा मान करते थे।'[30] **– मिश्रबन्धु**

'ये रीवाँ के बड़े ही विद्या-रसिक और भक्त नरेश तथा प्रसिद्ध कवि महाराज रघुराज सिंह के पिता थे। ..... ये जैसे भक्त थे वैसे ही विद्याव्यसनी तथा कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता थे। काव्य-रचना में भी ये सिद्धहस्त थे।[31] '... व्रजभाषा में नाटक पहले पहल इन्होंने लिखा। इस दृष्टि से इनका 'आनन्दरघुनन्दन' नाटक विशेष महत्त्व की वस्तु है। ... हिन्दी के प्रथम नाटककार के रूप में ये चिरस्मरणीय हैं।'[32] **– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल**

'ये रीवाँ नरेश राम के प्रसिद्ध भक्त थे। ... कवियों के आश्रयदाता थे और स्वयं कवि थे। ... इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनकी रचनाएँ दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम भाग में वे रचनाएँ हैं, जो सन्त-साहित्य से सम्बन्ध रखती हैं और दूसरे भाग में वे हैं जो राम-साहित्य पर लिखी गयी है। ... महाराज विश्वनाथ सिंह रामोपासक भी थे। यहाँ तक कि 'कबीरबीजक' की टीका उन्होंने साकार राम के अर्थ में लिखी है।'[33]

– डॉ. रामकुमार वर्मा

---

29. मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धु विनोद, तृतीय भाग, सं. 1985, पृ. 1022
30. तदेव, पृ.1045-46
31. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, द्वादश संस्करण, पृ. 317
32. तदेव, पृ. 318
33. डॉ. रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 476

'महाराज विश्वनाथ सिंह महाराजा भर ही न थे, सच्चे कलाकार और गुणियों के आश्रयदाता भी थे। ये वैद्यक और संगीतशास्त्र के महान् पण्डित थे। ... महाराज विश्वनाथ सिंह बहुत बड़े विद्वान् और अद्वितीय महाकवि थे। यह संस्कृत साहित्य के विद्वान् तो थे ही, हिन्दी साहित्य के भी उद्भट जानकार थे। ..... ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस पर इन्होंने अपनी लेखनी न चलायी हो। यह हिन्दी के सर्वप्रथम नाटककार माने जाते हैं। यह वेदान्त विषय के भी बहुत बड़े पण्डित थे।[34]

– गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री

'शृंगारी रामोपासना के प्रचार में उनका बड़ा योगदान था। राजकार्य के साथ ही भक्ति-साधना और काव्य-रचना के इस विषयव्रत के पालन में उनकी (महाराज विश्वनाथ सिंह की) समता में विरले ही भूमि-पति आते हैं।'[35]

– डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह

'विश्वनाथ सिंह का राज्यारम्भ 1834 ई. में हुआ और मृत्यु कार्तिक कृष्णा सप्तमी, सं. 1911 (1854 ई.) को हुई। जीवन के अन्त के लगभग 35 वर्षों तक ये संस्कृत और हिन्दी में निरन्तर सर्जना करते रहे। इनकी सभा दार्शनिकों, कवियों और राजनीतिज्ञों से भरी रहती थी। ये स्वयं कितने ही काव्यकारों एवं विचारकों के प्रेरणा-स्रोत थे। ये अपने काल में उत्तर भारत में अत्यन्त विख्यात विद्वानों में से एक थे। चित्रकूट, काशी, मिथिला, अयोध्या, वृन्दावन, प्रयाग और कांची जैसे विद्याकेन्द्रों के विद्वान् इनसे मिलने और शास्त्रार्थ करने आया करते थे। स्वयं भी अनेक स्थानों की यात्रा इन्होंने विद्वानों से वार्ता करने के लिए ही की थी।'[36]

– डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री

उपर्युक्त उद्धरणों से महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव की लोकप्रसिद्धि और उनकी मौलिक प्रतिभा-प्रभा का दर्शन होता है। महाराज साहब का अध्ययन व्यापक और गम्भीर था। वैष्णव साहित्य, सन्त साहित्य, वेदान्त, रीतिशास्त्रादि

---

34. गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री : विन्ध्य प्रदेश का इतिहास, पृ. 243
35. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 434
36. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य, पृ. 227-28

में उनकी गहरी पैठ थी। जीवन के व्यापक अनुभवों से जो कुछ उन्हें प्राप्त हुआ वह सब उनके साहित्य में उपलब्ध है। महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव का व्यक्तित्व आकर्षक, मस्तिष्क सम्पन्न, अध्ययन विस्तृत एवं गहन, अनुभव विशाल और जीवन अनुकरणीय था। वे अपने युग की महान् विभूति थे। हिन्दी-जगत् उनकी सेवाओं को सदैव स्मरण रखेगा और उनकी साधना के लिए कृतज्ञ रहेगा।

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव का रचना-संसार अत्यन्त विशाल है। उनकी रचना-राशि के सन्दर्भ में विद्वानों में वैमत्य है। ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि उनके ग्रन्थों की संख्या कितनी है। यहाँ पर एक सिरे से सभी प्रामाणिक-अप्रामाणिक रचनाओं का मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। महाराज साहब के संस्कृत ग्रन्थों की सूची डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री ने प्रस्तुत की है, जो शोधपूर्ण और विश्वसनीय है। इसी प्रकार हिन्दी ग्रन्थों की सूची डॉ. गोविन्दलाल छावड़ा ने प्रस्तुत किया है, जो अधिक विश्वसनीय है। अतः यहाँ पर डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री द्वारा निर्धारित संस्कृत ग्रन्थों और डॉ. गोविन्दलाल छावड़ा द्वारा निर्धारित हिन्दी ग्रन्थों की सूचिका प्रस्तुत है।

संस्कृत-ग्रन्थः डॉ. अग्निहोत्री ने बान्धवेश विश्वनाथ सिंह जू देव के संस्कृत-ग्रन्थों को तीन उपवर्गों में विभक्त किया है –

(क) अध्यात्मपरक मौलिक ग्रन्थ

1. राधावल्लभीयमतप्रवर्तकब्रह्मसूत्रभाष्यम्।
2. सर्वसिद्धान्तम्।
3. रामरहस्यत्रयार्थ।
4. राममन्त्रार्थनिर्णयः।
5. रामपरत्त्वम्।
6. तत्त्वमस्यर्थसिद्धान्तभाष्यम्।
7. वासुदेवसहस्रनामभाष्यम्।

(ख) अध्यात्मपरक टीकाएँ

8. अध्यात्म रामायण तिलक।

9. श्रीमद्भागवत तिलक (चण्डभास्कर)।
10. वेदस्तुति टीका।
11. रामगीता की टीका।
12. ज्योत्स्ना (सुमार्ग की टीका)
13. वाल्मीकि रामायण सन्दर्भ।

(ग) काव्य

14. आनन्दरघुनन्दन नाटकम्।
15. रामचन्द्राह्निक।
16. संगीतरघुनन्दनम्।
17. धर्मशास्त्र त्रिशतश्लोकी।
18. धनुर्विद्या।[37]

हिन्दी-ग्रन्थः डॉ. छावड़ा ने बान्धवेश विश्वनाथ सिंह जू देव के हिन्दी ग्रन्थों को तीन उपवर्गों में विभक्त किया है –

(क) गद्यात्मक रचनाएँ

1. परमधर्मनिर्णय।
2. पाखण्डखण्डिनी कबीर बीजक की टीका।
3. गीतरघुनन्दन की टीका।

(ख) पद्यात्मक ग्रन्थ

4. धनुर्विद्या।
5. आह्निक अष्टयाम।
6. फुटकर भजन।
7. परमतत्त्वप्रकाश।
8. अवध नगर का वर्णन।

---

37. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : संस्कृत साहित्य को बान्धव नरेशों की देन, पृ. 181-182

9. सिकार के कवित्त।

10. रामायण।

(ग) गद्य-पद्य मिश्रित कृतियाँ

11. आनन्दरघुनन्दन नाटक।

12. शान्तशतक।

13. ध्रुवाष्टक सतिलक।

14. उत्तम काव्य प्रकाश।[38]

इस प्रकार संस्कृत और हिन्दी दोनों में मिलाकर बान्धवेश विश्वनाथ सिंह की 32 रचनाएँ हैं।

सन् 1840 – 41 ई. में महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव ज्वर से अत्यन्त पीड़ित हुए। युनानी चिकित्सकों के इलाज से जब उन्हें आराम न मिला तब उन्होंने मौलवी हकीम अयाज अली को फतेहपुर से रीवा बुलवाकर अपना इलाज कराया। फलतः स्वास्थ्य में कुछ सुधार आया। सन् 1842 ई. में शासन का काफी कुछ दायित्व उन्होंने युवराज रघुराज सिंह जू देव को सौंप दिया और परामर्श देते रहे। सन् 1854 ई. में पुनः बान्धवेश ज्वर – प्रकोप से पीड़ित हुए और कार्तिक सुदी 9 विक्रमाब्द 1911 को वे वैकुण्ठ की अनन्त यात्रा के लिए प्रस्थित हो गये। सम्पूर्ण विन्ध्य प्रान्त रो उठा। बान्धवीय केतु झुक गया। भारती – मन्दिर में शोक की लहर व्याप्त हो गयी। महाराज का नश्वर शरीर नष्ट हो गया, किन्तु उनका यशः काय शरीर जरा – मरण के भय से रहित अजरामरवत है।

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव का समय रीवा राज्य में प्रायः प्रत्येक दृष्टि से समुन्नति एवं सम्पन्नता का द्योतक था। आज भी वहाँ की जनता जब महाराज द्वारा निर्मित मन्दिरों में भगवान् के दर्शानार्थ जाती है तो श्रद्धा – भक्तिपूर्वक महाराज के चित्र को भी मस्तक झुकाती है। महाराज में अच्छे

---

38. डॉ. गोविन्दलाल छावड़ा : हिन्दी के प्रथम नाटककार विश्वनाथ सिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 161

शासक के सभी गुण विद्यमान थे। आज भी रीवा दरबार के परिचारक आपका नाम आदर और श्रद्धा से लेते हैं तथा आपके शौर्य की गाथाएँ वर्णित करते नहीं थकते। आपका यशगान करने में वे स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। उनकी दृष्टि में आप शासक नहीं, भक्त थे। आपकी तलवार, जो रीवा दरबार में विद्यमान है, के सम्मुख आज भी रीवा – निवासी अपना शीश झुकाते हैं। वास्तव में आपका शासन वहाँ के निवासियों के हृदय पर था।

महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव का अध्ययन व्यापक एवं गम्भीर था। वैष्णव साहित्य, सन्त साहित्य, वेदान्त, रीतिशास्त्रादि में आपकी गहरी पैठ थी। जीवन के व्यापक अनुभवों से जो कुछ उन्हें प्राप्त हुआ, वह सब उनके साहित्य में उपलब्ध है। वे अपने युग की महान् विभूति थे। हिन्दी और संस्कृत – जगत् उनकी साहित्य – सेवा को सदैव स्मरण रखेगा और उनकी अमित साधना के लिए कृतज्ञ रहेगा

❑❑

राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर'

हिन्दी-साहित्येतिहास के आधार ग्रन्थों में परिगणित ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह-सरोज' जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं बहुश्रुत संग्रह-ग्रन्थ को भी स्थायी आधार प्रदान करनेवाले 'विद्वन्मोदतरंगिणी' नामक संग्रह-ग्रन्थ के प्रणेता राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के विषय में साहित्येहास के अनुसन्धित्सुओं को सर्वप्रथम सूचना 'शिवसिंह-सरोज' से ही प्राप्त होती है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने 'शिवसिंह-सरोज' की कवि-संख्या 701 पर राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के दो सवैयों[1] को उद्धृत किया है और 'कवियों का जीवन चरित्र' नामक खण्ड में कवि-संख्या 867/701/34 पर इनका परिचय देते हुए लिखा है- 'श्रीधर कवि 2 राजा सुब्बा सिंह चौहान ओयल ज़िले खीरीवाले 1874 उ.। इन्होंने एक महा अद्‌भुत ग्रन्थ भाषा साहित्य में विद्वन्मोदतरंगिणी नाम बनाया है। इस ग्रन्थ में अपनी औ अपने गुरु सुवंश शुक्ल कवि के सेवाय और 44 सतकवियों के कवित्त उदाहरण में प्रसंग प्रसंग पर लिखे हैं। इस ग्रन्थ में नायक-नायिका भेद, चारों दर्शन, सखी, दूतिका दूती वर्णन, षट् ऋतु, रस निर्णय, विभाव, अनुभाव, भाव, रस, रस-दृष्टि, भाव सबलादि, भाव उदय इत्यादि विस्तारपूर्वक कहे गये हैं।'[2] राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के विषय में सर डॉ. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने भी यही बातें लिखी हैं। लगता है कि डॉ. ग्रियर्सन ने सरोजकार की बातों को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है। यही नहीं ठाकुर शिव सिंह सेंगर की ही तरह डॉ.

---

1. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह-सरोज (सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण-1970 ई., पृ. 551
2. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : तदेव, पृ. 804

ग्रियर्सन ने भी 'विद्वन्मोदतरंगिणी' में मात्र 44 कवियों की ही रचनाएँ संगृहीत होने की बात स्वीकार की है। लगता है डॉ. ग्रियर्सन को 'विद्वन्मोदतरंगिणी' की प्रति देखने को नहीं मिल पायी थी। राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के विषय में डॉ. ग्रियर्सन लिखते हैं–

'Raja Subba Singh, the Chauhan, Alias the poet Sri Dhar of Oel District Khere FL 1817 A. D.

He was author of an important work of Vernacular Composition entitled Bidwan Moda Tarangini (written 1817 A. D.) which deals with the whole subject matter of covers confidents, the seasons, the various styles etc. But the most important aspect of the work is that is forms an anthology of extracts from works by the author's preceptor, Subans Sukal (N. 589 and forty four other poets)'[3]

'विद्वन्मोदतरंगिणी' की रचना में राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' को अपने गुरु सुवंश शुक्ल से पर्याप्त सहायता मिली है। इस तथ्य का उल्लेख ठाकुर शिव सिंह सेंगर[4] के अतिरिक्त डॉ. ग्रियर्सन[5] और मिश्रबन्धु महोदयों[6] ने भी किया है। मिश्रबन्धुओं ने राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के सम्बन्ध में एक खटकनेवाली बात यह लिखी है कि 'ये महाशय ओयलवाले राजा बख़्त सिंह के लघु भ्राता बैस ठाकुर ज़िला खीरी के निवासी थे।' इससे यह प्रकट होता है कि ये बख़्त सिंह के

---

3. Sir Dr. George Abraham Grierson : The Modern Vernacular literature of Hidusthan, First Edition 1889 A. D., Page 127
4. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह-सरोज :सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण-1970 ई., पृ. 813
5. 'He then went to Raja Subba Singh (No. 590) of Oel and assisted him the compilation of the Bidwan Moda Tarangini' : Sir Dr. George Abraham Grierson : The Modern Vernacular literature of Hidusthan, First Edition 1889 A. D., Page 127
6. मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धु-विनोद, भाग 2, पृ. 924

लघु तनय न होकर लघु भ्राता थे और चौहान क्षत्रिय न होकर बैस क्षत्रिय थे, किन्तु राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने 'विद्वन्मोदतरंगिणी' के प्रारम्भ में ही अपना परिचय देते हुए लिखा है–

सुबा जानियो नाम, बख़त सिंह को लघु तनै।
द्विज मत लै अभिराम, श्रीधर कविता में कियो।।[7]

ऐसी स्थित में मिश्रबन्धुओं की लघु भ्राता सम्बन्धी धारणा निराधार है। यहाँ अन्तःसाक्ष्य ही सबसे बड़ा आधार है। मिश्रबन्धुओं के अनुसार ये निःसन्तान थे। इनके जन्म के विषय में मिश्रबन्धुओं का अनुमान है कि विक्रम संवत् 1850 के लगभग ये उत्पन्न हुए होंगे। राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' को जहाँ ठाकुर शिव सिंह सेंगर एवं सर डॉ. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने चौहान क्षत्रिय माना है, वहीं मिश्रबन्धुओं का उन्हें बैस क्षत्रिय कहना भी तथ्यसम्मत नहीं है, क्योंकि नागरी प्रचारिणी सभा काशी के द्वारा हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज कराये जाने के क्रम में राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' द्वारा रचित एक और रचना 'शालिहोत्र प्रकाशिका' की पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है। राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने विक्रम संवत् 1896 में 'शालिहोत्र प्रकाशिका' का प्रणयन किया था। खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ का उल्लेख इस प्रकार हुआ है–

'(A) Name of Book : Sali Hotra Prakasika. Name of author Sridar, Substance : country made paper leaves 208 Size : 10 × 7 inches. Lines per page : 18 Extent 800 Slokas Appearance : New Character : Nagari Date of composition 1896 (1839 A. D.) Date of manuscript 1943 (1886 A. D.) Place of deposit Thakur Digvijai Singh, Taluqedar Dekolia, District Sitapur.'[8]

'शालिहोत्र प्रकाशिका' में राजा सुब्बा सिंह ने अपना वंश–परिचय देते हुए लिखा है–

---

7. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी : सम्पादक डॉ. किशोरीलाल : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण–1991 ई., छन्द संख्या 2, पृ. 74
8. नागरी प्रचारिणी सभा काशी : खोज रिपोर्ट 1912/177 ए, 1923/401 ए, 1926/455 ए, बी, 1947/418

औ चलिहै चौहान वंश याही ते भाष्यो।।
मात-पिता स्वाहा अनल वत्स गोत्र चौहान।
याहि वंस में प्रकट भे शंकर नृपति सुजान।।
उपजे शंकर वंश में पृथीराज महराज।
जाहिर जम्बू दीप में करै धर्म के काज।।[9]

इसी क्रम में आगे उन्होंने अपनी वंशावली का वर्णन करते हुए लिखा है-

हेम सिंह नृप के भये, बख़त सिंह त्यों नन्द।।
बख़त सिंह के चारि सुत, जेठे नृप रघुनाथ।
बहुरि सु जालिम सिंह भो, तासु अनुज उमराउ।।
तासु अनुज लघु जानि, सुब्बा जानौ नाम तेहि।
श्रीधर नाम बखानि, बिरचित छन्द प्रबन्ध में।।[10]

'शालिहोत्र प्रकाशिका' के उपर्युक्त छन्दों का अन्तःसाक्ष्य ग्रहण करने पर राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' चौहान वंशोत्पन्न क्षत्रिय ही सिद्ध होते हैं।

एक ओर जहाँ लखनऊ से 10 कोस दक्षिण उन्नाव ज़िले में बसे काँथा के राजा रणजीत सिंह के तृतीय पुत्र एवं अवध प्रान्त के इंस्पेक्टर ऑफ़ पुलिस ठाकुर शिव सिंह सेंगर, डब्लिन (आयरलैण्ड) के निवासी भारतीय विद्या-विशारद आई.सी.एस. अधिकारी सर डॉ. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, लखनऊ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के उपाध्यक्ष पण्डित गणेशबिहारी मिश्र, डिप्टी कमिश्नर तथा काउंसिल ऑफ़ स्टेट के सम्मानित सदस्य रायबहादुर रावराजा पण्डित डॉ. श्यामबिहारी मिश्र एवं भरतपुर राज्य के दीवान रायबहादुर पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र जैसे महानुभावों ने साहित्य-जगत् में राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' की कीर्ति-कौमुदी का प्रीतिपूर्वक साक्षात्कार किया, वहीं उनके स्वयं के राज्य ओयल के इतिहास में उनका कहीं नामोल्लेख तक नहीं है। इण्टरनेट पर उपलब्ध तीन वेबसाइट क्रमशः OEL-members.iinet.com.au[11], Oel (Taluk)

---

9. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : शालिहोत्र प्रकाशिका, छन्द संख्या 5-8
10. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : शालिहोत्र प्रकाशिका, छन्द संख्या 13-17
11. OEL-members.iinet.com.au : https://members.iinet.net.au/~royalty/;ips/o/oel.html

Homepage and Map : Rajput Provinces of India[12] Skeb OEL-Royal Family of India[13] ओयल राज्य का अद्यतन इतिहास प्रस्तुत करती हैं, किन्तु इनमें से कोई भी वेबसाइट हिन्दी–साहित्य के अमर रत्न राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के विषय में किसी भी प्रकार की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं कराती। पहली वेबसाइट में ओयल राज्य का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार दिया हुआ है- 'The ancestors of the family were originally Chauhan Kshatriyas in the service of the Sayyids of Pihani, having migrated from Rajasthan in the 16th century. Jamni Khan, an early ancestor, obtained the post of Chaudhuri of Kheri from Sayyid Khurda in 1553, with a right to levy tax on all the lands in that pargana. His descendants gradually increased their possessions, the Chaudhri Parbal Singh owning Oel, Kaimahra, and Khogi, and his descendant, the Rai Than Singh, of Oel, owning many more villages. The estate in 1911 comprised 164 villages in Kheri and the village of Baransa in Sitapur.'[14] पहली वेबसाइट जहाँ ओयल के राजघराने को चौहान कहती है, वहीं दूसरी और तीसरी वेबसाइटें जनवार कहती हैं।

उपर्युक्त वेबसाइटों में चौहान एवं जनवार का जो सन्दर्भ आया है, उसका निराकरण इतिहासकार श्री पवन बख़्शी की पुस्तक 'अवध के तालुक़दार' से होता है। श्री पवन बख़्शी लिखते हैं– 'पुस्तक मैनुअल ऑफ़ टाइटिल लिखती है कि यह घराना अपने आपको लखीमपुर खीरी के चौहान क्षत्रियों की एक शाखा मानता है। इस ताल्लुक़े के वास्तविक संस्थापक जनवार क्षत्रिय थे, जो कई शताब्दियों पूर्व इस परगने के मुख्य भू–स्वामी थे। अकबर के शासनकाल में उन्हें चौधरी का पद और राय की उपाधि प्राप्त थी। इस घराने के अन्तिम वंशज मेहमान सिंह हुए जिन्होंने राजा की पदवी हासिल की। वे निःसन्तान थे। इनके

12. Oel (Taluk) Homepage and Map : Rajput Provinces of India : https://www.indianrajputs.com/view/oel
13. OEL-Royal Family of India : https://www.royalfamilyofindia.com/oel/
14. OEL-members.iinet.com.au : https://members.iinet.net.au/~royalty/;ips/o/oel.html

निधन के बाद हलदेव सिंह ताल्लुक़े के उत्तराधिकारी हुए। हलदेव सिंह जयपुर के मूर के राजा चौहान वीरसिंह देव के पुत्र थे। हलदेव का विवाह मेहमान सिंह की पुत्री से हुआ था।'[15]

वस्तुतः अकबर के पूर्व ओयल का राज्य जनवार क्षत्रियों के अधीन था। जनवार वंश के अन्तिम राजा मेहमान सिंह के पश्चात् यह राज्य उनके चौहान वंशीय दामाद राजा हलदेव सिंह के अधीन हो गया। तब से अब तक ओयल में चौहान क्षत्रियों का ही राज रहा है। इतिहासकार श्री पवन बख़्शी की पुस्तक 'अवध के तालुक़दार' में भी राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' का उल्लेख नहीं है। इस सम्बन्ध में दूरभाष के माध्यम से पूछने पर श्री पवन बख़्शी ने बताया कि 'अवध के तालुक़दार' के प्रणयन-काल में सामग्री-संचयन के सन्दर्भ में ओयल के राजा साहब श्री विष्णुनारायणदत्त सिंह से मिलने का मैंने कई बार प्रयत्न किया, किन्तु हर बार मुलाकात उनके चचेरे भाई कुँवर प्रद्युम्ननारायणदत्त सिंह से ही हुई। उन्होंने जो जानकारी उपलब्ध कराया उसके आधार पर मैंने ओयल का इतिहास लिखा।' इसका तात्पर्य यह है कि ओयल राज्य के वर्तमान उत्तराधिकारियों को राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अपने 'सरोज-सर्वेक्षण' में राजा सुब्बा सिंह के प्रपितामह का नाम गजराज बताया है,[16] किन्तु इण्टरनेट पर उपलब्ध अलग अलग वेबसाइटों, श्री पवन बख़्शी की पुस्तक 'अवध के तालुक़दार' एवं राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के ग्रन्थों के अन्तःसाक्ष्यों का गम्भीरतापूर्वक अन्वीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि चौहान राजा वीरसिंह देव की बारहवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए राजा देवी सिंह के अनुज राव आनन्द सिंह के दो पुत्रों में बड़े राजा गजराज सिंह को कैमहा का राज मिला और छोटे राजा प्रीतम सिंह उर्फ हेम सिंह को ओयल का। राजा प्रीतम सिंह उर्फ हेम सिंह के दो पुत्रों में ज्येष्ठ राजा बख़त सिंह और कनिष्ठ कुँवर शिव सिंह

---

15. श्री पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार : रूपा पब्लिकेशन्स् इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, 7/16, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110 002, द्वितीय संस्करण-2012 ई., पृ. 246-247
16. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1967 ई., पृ. 723

उर्फ सेवा सिंह हुए। राजा बख़त सिंह के चार पुत्र क्रमशः राजा रघुनाथ सिंह, कुँवर जालिम सिंह, कुँवर उमराव सिंह एवं राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' हुए। राजपूतों की पारिवारिक परम्परा के अनुसार बड़े भाई राजा रघुनाथ सिंह के रहते सुब्बा सिंह को राजा उपाधि नहीं मिल सकती है। इसका मतलब यह है कि राजा रघुनाथ सिंह के बाद सुब्बा सिंह 'श्रीधर' कुछ समय तक ओयल के राजा अवश्य रहे हैं। मिश्रबन्धुओं के अनुसार राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' निःसन्तान थे। इसलिए उनके बाद कुँवर उमराव सिंह के पुत्र अनिरुद्ध सिंह ओयल के राजा हुए।

राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं– 1. विद्वन्मोदतरंगिणी और 2. शालिहोत्र प्रकाशिका। प्रथम ग्रन्थ 'विद्वन्मोदतरंगिणी' का सम्पादन नदीष्ण विद्वान् एवं पाठालोचक डॉ. किशोरीलाल जी ने किया है, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित है। द्वितीय ग्रन्थ 'शालिहोत्र प्रकाशिका' की चार पाण्डुलिपियाँ नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[17] 'शालिहोत्र प्रकाशिका' की रचना विक्रम संवत् 1896 में नकुल एवं शारङ्गधर के संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थों के आधार पर हुई है। इसका उल्लेख राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने स्वयं किया है–

सारङ्गधर अरु नकुल मत, सालिहोत्र लखि ग्रन्थ।
समुझि सुरुचि भाषा करी, लै औरौ कछु पन्थ।।

तिनके मतहिं प्रकाशिका, कातिक बदि रविवार।
संवत षट् नव वसु ससी, त्रयोदसी अवतार।।[18]

अर्थात् षट् (6), नव (9), वसु (8), ससी (1)। 'अंकानां वामतो गतिः' सूत्रानुसार उल्टा कर देने पर 1896 विक्रम संवत् होता है। 'शालिहोत्र प्रकाशिका' में पूर्ववर्ती रचना 'विद्वन्मोदतरंगिणी' का भी उल्लेख हुआ है–

विद्वन्मोदतरंगिणी, ज्यों कीन्हीं रसखानि।
त्यों विरच्यो बहु छन्द में, सालिहोत्र सुखदानि।।[19]

---

17. नागरी प्रचारिणी सभा काशी : 1912/177 ए, 1923/401 ए, 1926/455 ए, बी, 1947/418 : द्वै. त्रै. रिपोर्ट, पृ. 224
18. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : शालिहोत्र प्रकाशिका, छन्द संख्या 18–19
19. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : शालिहोत्र प्रकाशिका, छन्द संख्या 17

वस्तुतः 'विद्वन्मोदतरंगिणी' षोडश तरंगों में विभक्त रीति शैली का एक विशाल संग्रह-ग्रन्थ है। हिन्दी-रीति शैली में जो लक्षण-ग्रन्थ लिखे गये वे संस्कृत लक्षण-ग्रन्थों की तुलना में सर्वथा पृथक् हैं। हिन्दी में लक्षण और लक्ष्यांशों का रचयिता एक ही व्यक्ति होता था। पर संस्कृत में लक्षणकार और लक्ष्यकार का व्यक्तित्व सर्वथा भिन्न रहा है। संस्कृत में पण्डितराज जगन्नाथ ही एक ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने 'रसगंगाधर' में स्वरचित लक्षणों और उदाहरणों का ही प्रयोग किया है।[20] राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने 'विद्वन्मोदतरंगिणी' में संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परम्परा का पोषण किया है, क्योंकि लक्षण उनके हैं और उदाहरण रीतिकाल के विविध कवियों से गृहीत हैं। इसका उल्लेख वे स्वयं करते हैं- 'लक्षन निज मति रचित करि उदाहरन प्राचीन।'

'विद्वन्मोदतरंगिणी' के सम्पादक डॉ. किशोरीलाल जी ने इसका परिचय देते हुए लिखा है- 'अप्रकाशित रहने के कारण इस विद्वन्मोदतरंगिणी को बहुत-से लोगों ने यह समझा कि यह संस्कृत विद्वन्मोदतरंगिणी का अनुवाद है। श्री चिरंजीव भट्टाचार्य कवि द्वारा रचित संस्कृत की विद्वन्मोदतरंगिणी आठ तरंगों में विभक्त है और उसमें शाक्त, वैष्णव, वेदान्ती, मीमांसक, वैय्याकरण, साहित्यिक आदि की रुचिर वार्ता नाटकीय शैली में प्रस्तुत की गयी है। यहाँ प्रत्येक अपने सिद्धान्तों और विचारों का तो समर्थन करता है और दूसरे के सिद्धान्तों और विचारों का उपहास करता है। यह बहुत छोटी पुस्तक है और सं. 1985 में वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से छप चुकी है। नाम-साम्य के कारण इस प्रकार का भ्रमोत्पादन स्वाभाविक है। प्रस्तुत विद्वन्मोदतरंगिणी उससे भिन्न है और सचमुच विद्वानों के आनन्द की सरिता है जिसकी अनेकशः शृंगारिक वीचियों में सहृदय रसिकों का मानस मत्स्य की भाँति निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। इस तरंगिणी की 16 तरंगों में अधिक तरंगें शृंगार के विभिन्न स्वरूपों की सूक्ष्म एवं गम्भीर

---

20. निर्माय नूतनमुदाहरणस्वरूपं
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः
कस्तूरिका जनन शक्तिभृता मृगेण।।

-पण्डितराज जगन्नाथ : रसगंगाधर, पृ. 3

विवेचना के निमित्त अर्पित हैं।'[21]

'विद्वान्मोदतरंगिणी' में 49 कवियों के छन्द हैं। इसके अतिरिक्त 89 छन्द अज्ञात कवियों के भी हैं। इसमें राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के कुल 24 छन्द हैं।[22] मंगलाचरण के निमित्त लिखित घनाक्षरी छन्द से ही राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' की काव्य-कला का परिज्ञान हो जाता है-

इतै सीस मकुट विराजै सीसफूल उतै,
इतै भाल खौरि उतै बेंदी है पख़ान की।
इतै श्रुति कुण्डल तर्योना उतै राजत है,
इतै बनमाल उतै माल मुकतान की।
इतै पीत पट उतै सारी जरतारी सोहै,
दोऊ नेह भरे जोरी मानो एक प्रान की।
'श्रीधर' बखानि बन्दै बर बरदानि सदा,
नन्द के किसोर औ किसोरी बृषभान की।।[23]

इसी तरह राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने एक मत्तगयन्द सवैये में 'विद्वन्मोदतरंगिणी' की रचना के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-

कारन भाव को भाव को रूप नवो रस पूरन को दरसायो।
नाइका दूती रसौ मिलि जात इन्हैं करि न्यारोई भेद बतायो।
जन्य पिता अविरोध विरोध औ दिष्टि सबै रसाभास जनायो।
विद्वन्मोदतरंगिनी श्रीधर आनँदखानि बखानि बनायो।।[24]

---

21. डॉ. किशोरीलाल : विद्वन्मोदतरंगिणी, पृ. 26
22. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 1, पृ. 73
23. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 1, 10, 35, 221, 322, 343, 347, 706, 712, 716, 717, 718, 891, 949, 981, 982, 1012, 1013, 1016, 1042, 1101, 1102 एवं 1176
24. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 6, पृ. 74

चारुसर्वांगी नायिका के उदाहरण के रूप में राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' का निम्नलिखित सवैया द्रष्टव्य है–

जासु की दीपति दीप ते सौगुनी दामिनी कुन्दन केसरि आइका।
काम की खानि सदा मृदु बानि सनेह छकी छिति में छवि छाइका।
अंग अनूपम को बरनै सब अंगन पीतम को सुखदाइका।
मानो रची विधि मूरति मोहनी श्रीधर ऐसी सराहत नाइका।।[25]

इसी क्रम में मध्या नायिका का भी उदाहरण देखा जा सकता है–

बाह गहे ते न बात कहे अरु मूँदति नैन कै चारु चलाँकी।
अंक भरै को करै रहि जाति लजाति देखावति भा चपलाकी।
यों दुविधा बिच बाल परी भले मोहति है मति नित्त ललाकी।
श्रीधर साज कहाँ लौं कहै मनौ मूरति लाज औ काम कला की।।[26]

राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने महाकवि देव की तरह दूतिका–प्रसंग में जाति विषयक नायिकाओं के गुण का वर्णन किया है। बरइनि जाति की दूतिका के गुण का वर्णन करते हुए श्रीधर लिखते हैं–

एला लवंग कपूर भरो अरु और सुगन्ध कहाँ लौं गनावौं।
मोहिं जो लोभ देखावै कोऊ त्यहि को कबहूँ नहिं नाव बतावौं।
श्रीधर जौन सबै सर है हिय धीर धरौ न बिलम्ब लगावौ।
तौ मैं तमोलनि रावरी हौ सुनौ सुन्दर पात को बीरा लगावौ।।[27]

राधिका–कृष्ण की रासलीला का एक सरस चित्र श्रीधर की लेखनी से अवतरित हुआ है–

कानन मैं हरि राधिकै पूछत नाम दुराइ कह्यौ हम गोपी।
राधिकै पूछी कि को तुम नायक हैं हम गोप कोऊ चित चोपी।

---

25. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 10, पृ. 74
26. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 35, पृ. 80
27. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 343, पृ. 157

ये छलछन्द भरी बतियाँ वर कौन बखानि सकै बुधि ओपी।
देखि छटा घन की कहि श्रीधर दोऊ भुजा भरि कै रति रोपी।।[28]

अन्तिम में इस ग्रन्थ का समापन करते समय राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि इसमें राधिका और कृष्ण का चरित्र होने के कारण ज्ञानीजन अवश्य प्रसन्न होंगे–

राधिका कृष्ण को यामें चरित्र विचित्र महा सुनि रीझिहैं ज्ञानी।
अंग उपंग समेत नवों रस राजत है अति ही सुखदानी।
विद्वन्मोदतरंगिणी श्रीधर आनँद रूप अनूप बख़ानी।
याहि पढ़े गुने आनँद कीरति बुद्धि औ सिद्धि मिलै मनमानी।।[29]

वस्तुतः 'विद्वन्मोदतरंगिणी' की रचना रीति–परम्परा को समझने और नवोदित कवियों को काव्य–रचना का मर्म समझाने के लिए की गयी है। राजधर्म का पालन करते हुए राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' के द्वारा कविकर्म का सम्पादन किया जाना अपने आप में प्रशंसनीय है। जब जब ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह–सरोज' की चर्चा होगी, तब तब उसके प्रमुख आधार ग्रन्थ के रूप में 'विद्वन्मोदतरंगिणी' की चर्चा होगी ही। राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' भले ही ओयल में 'स्वदेशे पूज्यते राजा' को चरितार्थ न कर सके हों, किन्तु उन्होंने 'विद्वान सर्वत्र पूज्यते' को भलीभाँति चरितार्थ किया है। इसमें किंचित् सन्देह नहीं।

❑❑

---

28. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 716, पृ. 228
29. राजा सुब्बा सिंह 'श्रीधर' : विद्वन्मोदतरंगिणी, छन्द संख्या 1176, पृ. 314

राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय 'प्रताप'

भारतीय नरेशों का कविता से जन्मजात सम्बन्ध रहा है। कविता और लोकनिर्माण का अद्‌भुत समन्वय भारतीय नरेशों ने किया है। गोरखपुर जनपद की पडरौना रियासत के राजा राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय का नाम कवि–नरेशों की इसी उज्ज्वल परम्परा में रखा जा सकता है। पडरौना रियासत की स्थापना के विषय में प्रो. राजबली पाण्डेय ने 'तुजक जहांगीरी' के पृष्ठ संख्या 328 का सन्दर्भ देते हुए लिखा है– 'सोलहवीं शताब्दी विक्रम के अन्त में, जिस समय जहांगीर दिल्ली का मुग़ल सम्राट् था, प्राचीन मल्लराष्ट्र के उत्तरी भाग में भी एक स्थानीय राज्य की स्थापना हुई। यह राजवंश था सैंथवार क्षत्रियवंश, इसके संस्थापक थे भूपाल राय जिनकी राजधानी आगे चलकर पडरौना हुई।'[1] प्रो. राजबली पाण्डेय ने सैंथवार वंश को पृथक् पृथक् क्षत्रियों का समूहगत नाम स्वीकार करते हुए लिखा है– 'इस क्षत्रिय–संघ ने शाक्य, कोलिय, मौर्य तथा मल्ल गणजाति और सूर्य, चन्द्र तथा नागवंशी क्षत्रियों के वंशज, जो भगवान् बुद्ध के समय में बौद्ध हो गये थे और पीछे वैदिक हिन्दू धर्म में वापस आये, सम्मिलित हैं। इस संघ में मल्ल, राव, रावत, सिंह, राय, राम, महत आदि उपाधिधारी क्षत्रियों की गणना है।'[2]

---

1. प्रो. राजबली पाण्डेय : गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास : प्रकाशक ठाकुर महातम राव ओमप्रकाश, रेती चौक, गोरखपुर : द्वितीय संस्करण : 2015 ई., पृ. 248
2. प्रो. राजबली पाण्डेय : तदेव, पृ. 159

यद्यपि पडरौना का राजवंश अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय कहता है[3], तथापि प्रो. राजबली पाण्डेय ने अनेक अकाट्य तथ्यों एवं प्रमाणों के आलोक में सिद्ध किया है कि पडरौना का राजघराना सैंथवार क्षत्रिय-संघ से सम्बन्धित है। वस्तुतः सैंथवार कई जातियों का समन्वित अभिधान है और भूपाल राय सैंथवार क्षत्रिय-संघ के ही सदस्य थे। मुग़ल बादशाह अकबर के समय में भूपाल राय ने मुग़लों की सैनिक सेवा की, इसके बदले जहांगीर ने उनको तोपख़ाने की सरदारी और राय की उपाधि दी। इसी समय भूपाल राय ने सिधुआ में एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया। सिधुआ पर सिद्धान्ततः मझौली राज्य के मल्ल शासक अपना अधिकार समझते थे, यद्यपि इस समय उनका आधिपत्य वहाँ नहीं था। इस स्थान पर मकवाना के राजपूतों को दबाकर भूपाल राय ने अपना राज्य बढ़ाया। मझौली राज्य ने अपनी आन्तरिक दुर्बलता और उत्तर से बंजारों के उपद्रव के कारण पडरौना रियासत के विकास को प्रोत्साहित किया।

मल्ल गणराज्य में भूपाल राय द्वारा स्थापित किये गये पडरौना राज्य के विषय में प्रो. राजबली पाण्डेय अपनी पुस्तक 'गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास' में लिखते हैं- 'इस नये पडरौना राज्य का सम्बन्ध मुग़ल बादशाहों से अच्छा रहा और भूपाल राय के वंशजों को बराबर सनदें और पुरस्कार मिलते रहे। इस वंश के दूसरे प्रसिद्ध पुरुष नाथ राय हुए, जो औरंगज़ेब के समकालीन थे। ये बड़े महत्त्वाकांक्षी और वीर पुरुष थे। इन्होंने बटसरा तप्पा में चन्देलों से कई एक गाँव जीत लिया और अपने पश्चिमोत्तर में बुटवल राज्य को दबाकर अपने राज्य का विस्तार किया। इनकी राजभक्ति और सेवाओं के बदले औरंगज़ेब बादशाह ने 35 गाँवों की जागीर इनको प्रदान की, जिसकी सालाना मालगुजारी 55000 थी।'[4]

---

3. (a) INDIAN PRINCELY STATES : http://members.iinet.net.au/~royalty/ips/p/padrauna.html
   (b) Royal Family Of India : http://www.royalfamilyofindia.com/padrauna/
   (c) Rajput Provinces of India : http://www.indianrajputs.com/view/padrauna
4. प्रो. राजबली पाण्डेय : तदेव, पृ. 251

पडरौना के सैंथवार राजवंश में राय भूपाल राय की ग्यारहवीं पीढी एवं राय नाथ राय की छठवीं पीढ़ी में राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय का जन्म हुआ था। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' में लिखा है– 'राय ईश्वरीप्रतापनारायण रायजी का जन्म सं. 1859 में गोरखपुर ज़िले के पडरौना–राजवंश में हुआ। हिन्दी, संस्कृत और फ़ारसी में इनकी अच्छी गति थी। ये निम्बार्क–सम्प्रदाय के शिष्य थे। राधाकृष्ण के बड़े प्रेमी उपासक थे। पडरौना में इनके बनवाये हुए बहुत सुन्दर मन्दिर, बाग़ और तालाब हैं। ये बड़े उदार, दानी, भगवद्भक्त और सुविचारवान् थे। 22 वर्ष की अवस्था से ही कविता–रचना का इनको चसका लग गया था। राजा होकर, राजकाज के झंझटों में फँसे रहकर भी इन्होंने बड़े मनोयोग से सुन्दर कविता की है, यह इनकी प्रकृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है। इनका सं. 1925 में देहान्त हुआ।'[5]

राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय ने संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता की है। कहीं कहीं पंजाबी की भी झलक आ गयी है। राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, किन्तु इनके प्रपौत्र एवं पडरौना के वर्तमान राजा आदित्यनारायण राय के वृद्धप्रपितामह राजाबहादुर ब्रजप्रतापनारायण राय के द्वारा प्रकाशित कराये गये 'रहस्य–काव्य–शृंगार' के अतिरिक्त अन्य कोई भी ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आ पाया है। राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय की कविता सरस और मनोहर है। इनका संगीत पर भी असाधारण अधिकार था। कविता में इन्होंने 'प्रताप' उपनाम का प्रयोग किया है। इनकी कविता में भक्ति और वैराग्य के स्वर प्रमुखता से मुखरित हुए हैं। श्रीवन में निवास करने की कामना करते हुए राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय लिखते हैं–

मोह को जाल पसार चहूँ दिसि सन्तत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया तजि मूरख काहू को तू न कोऊ कहुँ तेरो।
नश्वर या तन को समबन्ध 'प्रताप' छुटै छिन साम सबेरो।
छोड़ि सबै भ्रमजाल निरन्तर श्रीबन में बस हे मन मेरो।।[6]

---

5. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता–कौमुदी, पहला भाग : हिन्दी–मन्दिर, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1919 ई., पृ. 509–510
6. राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय : कविता–कौमुदी, पहला भाग, पृ. 510

राय ईश्वरीप्रतापनारायन राय ने इसी भाव-भूमि पर कविता की प्रतिष्ठा की है। भक्ति और भक्तचरित का गायन इनकी कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य है। इन्होंने अपने मन को रसिक भक्तों की शरण में रहने का निर्देश दिया है-

कोई कहै आन कोई आपहि भगवान् बनै,
कोई कहै दूरि कोई नेरेही लखाव रे।
कोई कहै रूप औ' अरूपवान कोई कहै,
कोई कहै निर्गुन कोई सगुन लखाव रे।
तामें मति भरमैं औ भूलि के न बाद ठान,
तोहिँ क्या बिरानी पड़ी अपनी सुझाव रे।
अद्‌भुत 'प्रताप' मूरि जीवन है रसिकन की,
सदा रसिक भक्तन के सरन रहु बावरे।।[7]

कविवर राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय ने संगीत में सिद्धि प्राप्त करने के कारण अपनी कविता में राग-रागियों का भी यथास्थान उल्लेख किया है। यहाँ 'राग सोरठ मलार' का उदाहरण द्रष्टव्य है-

तो बिन को यह नेह निबाहे।
ऐसो हित प्रतिपालन हारो तू ही एक सदा है।।
हँसे हँसत बोले बोलत हँसि मिले मिलन को उमाहै।
जोइ जोइ चाह 'प्रताप' करत चित सोइ सोइ राज तू चाहै।।[8]

इसी क्रम में एक उदाहरण 'राग धमार' का भी प्रस्तुत है-

बेसर थिरकि रही अधरन पै मोती थिरकत जात।
लखि 'प्रताप' पिचकारी लाल जी के रहि गयी हाथ की हाथ।।[9]

राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय की कविताएँ भक्ति और वैराग्य की भूमि पर अंकुरित हुई हैं। भक्ति और लोकमंगल का अन्तरंग सम्बन्ध है। न्यायनिष्ठ शासक

---

7. राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय : कविता-कौमुदी, पहला भाग, पृ. 510
8. राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय : कविता-कौमुदी, पहला भाग, पृ. 510
9. राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय : कविता-कौमुदी, पहला भाग, पृ. 511

के रूप में राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय दस वर्ष तक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट[10] भी रहे। निश्चय ही भारतीय नरेशों की परम्पराएँ भगवान् विष्णु से सम्पृक्त हैं। भारत के प्रत्येक शासक के सामने भगवन् विष्णु, भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् बुद्ध, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी जैसे शासकों का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित है। इसलिए यहाँ के शासकों ने अपने उदात्त चरित से सदैव लोकमंगल की प्रतिष्ठा का ध्यान रखा है। इसलिए कविता और संगीत जैसी ललित कलाओं के संवर्धन में भारतीय नरेशों ने पर्याप्त समय दिया है। कविता की पूँजी से भारतीय नरेशों का भाण्डागार जितना समृद्ध रहा है, उतनी समृद्धि अन्यत्र विरल है। राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय इसी परम्परा के एक ऐसे समृद्ध रत्न थे, जिन्होंने न केवल अपनी कविता को, अपितु अपने शासन और व्यवहार को भी लोकमंगल के निकष पर सदैव खरा रखा।

❑❑

10. http://gana.sainthwar.tripod.com/10.2-the-establishment-of-padrauna-estate.html

महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा

भारत की दक्षिणी–पश्चिमी सीमा पर अवस्थित अरब सागर की उद्दाम तरंगों से आलिंगित, सह्याद्रि पर्वत श्रृंखलाओं से संरक्षित एवं मलयाळम् भाषा की मणिप्रवालम् शैली से अभिव्यंजित, द्वितीया के चन्द्रमा की तरह सुन्दर आकृतिवाले, 38863 वर्ग किलोमीटर विस्तारवाले केरल प्रान्त की कला–संस्कृति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इतिहास है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार भगवान् परशुराम ने अपना परशु समुद्र में फेंक दिया था, जिसके कारण उसी आकार की भूमि समुद्र से बाहर निकली और केरल प्रान्त अस्तित्व में आया। यहाँ दसवीं सदी ईसा पूर्व से मानव जाति के निवास के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। केरल का शाब्दिक अभिप्राय समुद्र से निकला हुआ भूभाग होता है। समुद्र और पर्वत के संगम स्थान को भी केरल कहा जाता है। केरल के आधुनिक इतिहास में त्रावणकोर राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'त्रावणकोर' शब्द की व्युत्पत्ति 'तिरुवितांकूर' से हुई है और 'तिरुवितांकूर' नाम की उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि केरल के दक्षिणी सिरे पर पश्चिमी घाट और अरब सागर के मध्य की उर्वर भूमि को 'श्रीवाषुंक़ोड' नाम से जाना जाता था, जिसका अभिप्राय 'लक्ष्मी का निवास–स्थल' है। 'श्रीवाषुक़ोड' से 'तिरुवारंकोड' बना, जिसका देशज रूप 'तिरुवंकोड' बन गया और कालान्तर में इसी शब्द से 'तिरुवितांकूर' की उत्पत्ति हुई। ईसा के पश्चात् इस प्रदेश के शासक आय राजवंश के थे। यही प्रदेश वेणाड नाम से विख्यात हुआ। महाराज मार्तण्ड वर्मा (1729 ई.–1758 ई.) के शासनकाल में वेणाड प्रदेश कोच्चि तक फैलकर 'तिरुवितांकूर' नाम से जगत्प्रसिद्ध हुआ। महाराज मार्तण्ड वर्मा ने आट्टिंगल, कोल्लम, कोट्टारक्करा, कायंकुळम, अम्बलप्पुषा रियासतों को मिलाकर तिरुवितांकूर नामक शक्तिशाली प्रदेश की आधारशिला रखी थी। महाराज मार्तण्ड वर्मा के पश्चात् महाराज कार्तिकतिरुनाल राम वर्मा धर्मराज (1758 ई.–1798 ई.), महाराज

महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा

अविट्टमतिरुनाल बालराम वर्मा (1798 ई.–1810 ई.), महारानी गौरी लक्ष्मीबाई (1810 ई.–1815 ई.), महारानी गौरी पार्वतीबाई (1815 ई.–1829 ई.), महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा (1829 ई.–1847 ई.), महाराज उत्तरमतिरुनाल मार्तण्ड वर्मा (1829 ई.–1860 ई.), महाराज आयिल्यमतिरुनाल (1860 ई–1880 ई), महाराज विशाखमतिरुनाल (1880 ई–1885 ई), महाराज श्रीमूलमतिरुनाल (1885 ई–1924 ई), महारानी सेतु लक्ष्मीबाई (1924 ई–1931 ई) एवं महाराज चित्तिरातिरुनाल बालराम वर्मा (1931 ई–1949 ई) का तिरुवितांकूर राज्य पर शासन रहा।

तिरुवितांकूर के इतिहास में सर्वाधिक प्रसिद्धि महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा की है। महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा का जन्म चैत्र कृष्ण प्रतिपदा, विक्रमाब्द 1756 (16 अप्रैल, 1813 ई.) को 'स्वाति नक्षत्र' में हुआ था। तिरुवितांकूर के राजवंश की परम्परा के अनुसार राजकुमारों का नामकरण जन्म–नक्षत्र के आधार पर होता है। इसलिए इनका नाम स्वातितिरुनाल रखा गया। स्वातितिरुनाल राम वर्मा महारानी गौरी लक्ष्मीबाई एवं राजा राजा वर्मा कोयि थम्पुरन की द्वितीय सन्तति थे। इनका पालन–पोषण चंगनास्सेरी के राजमहल में हुआ था। राजकुमारी रुक्मिणीबाई महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा की ज्येष्ठा भगिनी थीं और महाराज उत्तरमतिरुनाल मार्तण्ड वर्मा (26 सितम्बर, 1814 ई.–18 अगस्त, 1860 ई.) एक मात्र अनुज थे। हिन्दी और मलयाळम् भाषा–साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्री के. नारायणन् ने महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है– 'गर्भ' में ही इन्हें राज्याधिकार प्राप्त हो गया था, इसलिए इनका 'गर्भश्रीमान्' उपनाम भी पड़ा। दो वर्ष की अवस्था में इनकी माँ गौरी लक्ष्मीबाई स्वर्ग सिधारीं। गौरी लक्ष्मीबाई की गौरी पार्वतीबाई नामक एक बहन थीं, जिन्होंने स्वातितिरुनाल को बड़े प्यार से पाल–पोसकर बड़ा किया। जिस प्रकार नवोदित चन्द्रमा कलाओं के बढ़ते बढ़ते पूर्ण विकास को प्राप्त होता है, उसी प्रकार ये कुमार भी राजोचित कलाओं में दक्षता प्राप्त करके सुशोभित हुए। संगीत और साहित्य में इनकी सहज विशेष रुचि ने थोड़े ही समय में इन्हें एक महान् वाग्गेयकार और कवि बना दिया। इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, तमिळ, मराठी, हिन्दुस्तानी आदि तेरह भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त की। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि थोड़े समय में ही स्वातितिरुनाल ने राजनीति में गहरे ज्ञान के साथ साथ इतनी

भाषाओं और कलाओं में निपुणता प्राप्त की। तेरह वर्ष की अवस्था में इनकी कर्नल वेल्स से मुलाकात हुई। वेल्स ने राजकुमार की बहुमुखी प्रतिभा, बहुभाषा ज्ञान आदि की भूरि भूरि प्रशंसा की। सोलह वर्ष की अवस्था में इनका राज्याभिषेक हुआ।'[1]

महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा का अल्पायु में ही विवाह हो गया था, परन्तु इनकी प्रथम पत्नी तिरुवात्तर अम्माची पानपिल्लई अम्मा श्रीमती नारायणी पिल्लई कोचम्मा का शीघ्र ही स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् इनका द्वितीय विवाह तिरुवात्तर अम्माची पनापिल्लई अम्मा श्रीमती नीलम्मा पिल्लई के साथ हुआ, जिनका सम्बन्ध तिरुवात्तर अम्मावीडू के परिवार से था। महाराज स्वातितिरुनाल की द्वितीय पत्नी कर्नाटक शैली की गायिका और कुशल वीणावादक थीं। द्वितीय पत्नी से ही महाराज स्वातितिरुनाल को एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, जिनका नाम तिरुवत्तर चित्तिरानाल अनन्त पद्मनाभन चम्पकरमण थम्पी था। सन् 1843 ई. में स्वातितिरुनाल ने त्रिवेन्द्रम् से विस्थापित मुदालियर की पुत्री वडस्सेरी अम्माची पानपिल्लई अम्मा सुन्दरालक्ष्मी पिल्लई के साथ अपना तृतीय विवाह कर लिया। सुन्दरालक्ष्मी को सुगन्धावल्ली के नाम से भी जाना जाता था। वे एक नृत्यांगना थीं। कहा तो यह भी जाता है कि महाराज स्वातितिरुनाल की दूसरी पत्नी ने तीसरे विवाह को मान्यता नहीं दी थी, इसलिए सुगन्धावल्ली त्रावणकोर को छोड़कर अन्यत्र चली गयीं। इससे महाराज स्वातितिरुनाल बहुत दुःखी हुए। इस सन्दर्भ में यह भी प्रसिद्ध है कि इस विरह-वेदना को महाराज स्वातितिरुनाल सहन नहीं कर पाये और इसी कारण मात्र 33 वर्ष की अल्पायु में ही हृदयघात के कारण उनका शरीरान्त हो गया।

स्वातितिरुनाल का पूरा नाम श्री पद्मनाभदास श्री स्वातितिरुनाल राम वर्मा कुलशेखर पेरुमाल था। महाराज स्वातितिरुनाल सन् 1830 ई. में हिज़ हाइनेस श्री पद्मनाभदास वंचिपाल श्री राम वर्मा कुलशेखर कीर्तिपति मान्नेय सुलतान महाराजा राजा रामराजा बहादुर शमशेर जंग के नाम से सिंहासनारूढ़ हुए।

---

1. श्री के. नारायणन् : केरल की सांस्कृतिक विरासत : सम्पादक-प्रो. जी. गोपीनाथन् : वाणी प्रकाशन, 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002 : प्रथम संस्करण-1998 ई., पृ. 127

स्वातितिरुनाल कुशाग्र बुद्धि, दूरदर्शी और अत्यन्त प्रतापी थे। 'महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दी गीत' नामक पुस्तक के विद्वान् सम्पादक डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर ने लिखा है कि 'स्वातितिरुनाल ने कई नये शासकीय विभाग तथा संस्थाएँ प्रारम्भ कीं। मुंसिफ़-अदालतों की स्थापना उन्होंने ही की। प्रथम सरकारी अंग्रेजी हाईस्कूल (1834), व्योमनिरीक्षणालय (1836), चिड़ियाघर व संग्रहालय (1836), त्रिवेन्द्रम का सार्वजनिक पुस्तकालय (1836), सरकारी मुद्रणालय (1836) और सरकारी मरम्मत विभाग स्वातितिरुनाल के प्रयत्न के सफल चिह्न थे। कई बर्बर दण्ड-प्रणालियाँ समाप्त करके सेना के संचालन में सुधार लाकर महाराजा ने कई युगान्तकारी कार्य किये।'[2] Wikipedia भी इन्हीं तथ्यों की ओर संकेत करती है- 'स्वातितिरुनाल राम वर्मा ने ही तिरुअनन्तपुरम् की खगोलीय वेधशाला, सरकारी प्रेस, त्रिवेन्द्रम जनता पुस्तकालय, पौर्वात्य पाण्डुलिपि संग्रहालय (Oriental Manuscript Library) आदि का शुभारम्भ किया। महाराज स्वातितिरुनाल सन् 1843 ई. से रॉयल एशियाटिक सोसायटी के सम्मानित सदस्य भी थे।'

महाराज स्वातितिरुनाल की मृत्यु-तिथि के विषय में कई धारणाएँ प्रचलित हैं। 'हिन्दी के दिवंगत अल्पायु रचनाकार' के विद्वान् लेखक डॉ. किरनपाल सिंह ने लिखा है- 'इनकी जन्म-तिथि पर विद्वत् समाज एकमत है, परन्तु मृत्यु-तिथि पर उनमें मत-भिन्नता है। 'केरली-वैभव' के लेखक डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै ने इनका देहावसान 25 दिसम्बर, 1846 दर्शाया है, जबकि डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर इसका वर्ष 1847 बताते हैं (महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दी गीत, पृ. 15)। 'अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति-कोश' के सम्पादक विश्वामित्र शर्मा ने इनका जीवन-काल 1813-1847 (पृ. 316) अंकित किया है। इस प्रकार इनकी कुल उम्र 33 वर्ष या 34 वर्ष बैठती है।'[3] इस सन्दर्भ में श्री के.

---

2. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दी गीत : प्रथम संस्करण-1963 ई., पृ. 14-15
3. डॉ. किरनपाल सिंह : हिन्दी के दिवंगत अल्पायु रचनाकार : भारतीय राजभाषा विकास संस्थान, देहरादून : प्रथम संस्करण-2016 ई., पृ. 5

नारायणन् लिखते हैं– 'संगीत और साहित्य को अपनी अमूल्य देन द्वारा समुन्नत करनेवाले इस महाराज कवि वाग्गेयकार का निधन 15–12–1846 को 34 वर्ष की अवस्था में हुआ।'[4] महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा के विषय में हिन्दी भाषा में उपलब्ध साहित्य में भले ही उनकी मृत्यु–तिथि को लेकर विद्वानों में मतैक्य न हो, किन्तु अंग्रेजी में तद्विषयक जितना भी साहित्य उपलब्ध है, सबमें महाराज स्वातितिरुनाल की मृत्यु–तिथि 27 दिसम्बर, 1846 ई. दी हुई है। 26 दिसम्बर, 2013 ई. के 'The Hindu' के चेन्नै संस्करण में लक्ष्मी देवनाथ ने महाराज स्वातितिरुनाल की मृत्यु के विषय में लिखा है– 'A deeply distraught Swati Tirunal increasingly retreated into solitude and silence. He weakened intensely in body and mind. Death swished across the guarded doorway of his palace, a shroud billowing behind it. The monarch of Travancore and a king of a musician passed away on December 27, 1846, at 3 a.m. He was just 33'.[5] Wikipedia में भी यही तथ्य विद्यमान हैं।[6] कहने का आशय यह है कि महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा की मृत्यु 27 दिसम्बर, 1846 ई. को रात्रि 3 बजे हुई थी।

महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा की साहित्य एवं संगीत की रसमाधुरी से सम्पूर्ण दक्षिण भारत आप्लावित है। अनेक भाषाओं में रचित ललित कविताएँ स्वातितिरुनाल की उत्कृष्टता को सिद्ध करती हैं। डॉ. किरनपाल सिंह ने स्पष्टतः लिखा है– 'दक्षिण भारत की भूमि साहित्य–सृजन के लिए कम उपजाऊ नहीं रही। इन क्षेत्रों के साहित्यकारों ने अपनी मातृभाषाओं के साथ साथ इतर भाषाओं में भी उच्चकोटि का साहित्य रचा है, जिनमें देववाणी संस्कृत और राष्ट्रवाणी हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया गया है। हमारे विवेच्य नायक भी इसके अपवाद नहीं रहे। स्वातितिरुनाल को दक्षिण का प्रथम हिन्दी–

---

4. श्री के. नारायणन् : केरल की सांस्कृतिक विरासत : तदेव, पृ. 131
5. The Monarch musician-The Hindu www.thehindu.com › article5504087
6. https://en.wikipedia.org/wiki/travancore royal family

कवि होने का सौभाग्य प्राप्त है। वे बहुभाषाविद् थे, क्योंकि उन्होंने मलयाळम्, संस्कृत, मराठी, कन्नड़, तमिळ्, अंग्रेजी तथा हिन्दी का गहन अध्ययन किया।'[7] महाराज स्वातितिरुनाल बहुभाषाविद् तो थे ही, साथ ही साथ रससिद्ध कवि और समर्पित भक्त थे। त्रावणकोर राज्य के चतुस्रमुखी विकास का उज्ज्वल चित्र महाराज स्वातितिरुनाल ने बनाया था। उनकी दूरदर्शी दृष्टि ही प्रशासन के साथ साथ साहित्य और संगीत का युगपत् समीकरण बना सकी। उनकी सहृदयता ही उन्हें शासक की जगह कवि, भक्त और वाग्गेयकार बनाती है। वे आंग्लयुगीन शासक होते हुए भी भगवान् पद्मनाभ के श्रीचरणों में समर्पित दास थे। त्रावणकोर के महाराजाओं का 'पद्मनाभदास' उपनाम स्वातितिरुनाल से ही चरितार्थ हुआ। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन एक राजयोगी की तरह व्यतीत किया। श्री के. नारायणन् ने स्वातितिरुनाल के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए लिखा है– 'कला और साहित्य का रसास्वादन स्वातितिरुनाल के लिए एक व्यक्तिगत मनोरंजन का विषय नहीं था, अपितु उसे आस्वादनीय मानकर दूसरे रसिकों तक प्रेरणीय भी बना देते थे। उन्होंने जगह जगह से कई विद्वानों, कवियों तथा संगीतज्ञों को आमन्त्रित कर उन्हें अपना आस्थान–विद्वान् बनाया और अपने दरबार को सुशोभित किया। इनके दरबार को अलंकृत करनेवाले विद्वानों में प्रमुख थे– किलिमानूर कोयि तम्पुरान, पंजाब सुलेमान, अलाउद्दीन, पोन्नैया, मेरुस्वामी (या अनन्तपद्मनाभस्वामी), तंजाऊर वडिवेलु, चिन्नैया, शिवानन्दम्, पालघाट वेंकटाद्रि अय्यर, परमेश्वर भागवतर, गणपति भागवतर, कन्हैया भागवतर, क्षीराब्धि शास्त्रिगल्।'[8]

स्वातितिरुनाल की कृतियों का सौरभ केरल में ही नहीं, अपितु समूचे भारत में फैला हुआ है। स्वातितिरुनाल की कृतियाँ साधारण मानव को ही नहीं, स्वयं भगवान् पद्मनाभ को भी मन्त्रमुग्ध करके अपने अधीन कर लेती हैं, क्योंकि भगवान् तो सुमधुर संगीत द्वारा गुणगान करनेवाले भक्तों के भी भक्त हैं। महाराज स्वातितिरुनाल के वाङ्मय का विधा और विस्तार की दृष्टि से विवरण निम्नलिखित है–

---

7. डॉ. किरनपाल सिंह : हिन्दी के दिवंगत अल्पायु रचनाकार, पृ. 5
8. श्री के. नारायणन् : केरल की सांस्कृतिक विरासत : तदेव, पृ. 128

(अ) काव्य :

1. स्थानदूरपुरवर्णनप्रबन्धम्
2. श्रीपद्मनाभशतकम्

(आ) कथा :

1. कुचेलोपाख्यानम्
2. अजामिलोपाख्यानम्

(इ) स्तोत्र :

1. भक्तिमंजरी

(ई) संगीत :

1. विविध देवी-देवताओं की स्तुति में कई भाषाओं में रचित कीर्तन।
2. नृत्य के लिए स्वर-जातियों, तान वर्णम्, पद वर्णम्, चौक वर्णम्, पदम्, जावली, तिल्लाना आदि।
3. हिन्दुस्तानी कृतियाँ- उत्तरी संगीत के ध्रुपद, टप्पा, ख्याल प्रभृति राग-रागिनियों में निबद्ध कीर्तन।

स्वातितिरुनाल की संगीत-कृतियों में 'नवरात्रि-कीर्तन' और 'नवरत्नमालिका' का अन्यतम स्थान है। श्री के. नारायणन् ने दोनों कृतियों के कीर्तन और राग का विस्तार से विवेचन किया है। 'नवरात्रि कीर्तन' में त्रिवेन्द्रम् में अवस्थित भगवान् पद्मनाभस्वामी के मन्दिर के आस्थान-मण्डप में नवरात्रि के अवसर पर विद्वानों द्वारा गाये जाने के लिए रचित नौ ललित कीर्तन हैं-

	रात्रि-कीर्तन	**राग**
1.	देवि! जगज्जननि!	शंकराभरणम्
2.	पाहि माँ श्रीवागेश्वरि	कल्याण
3.	देवि! पावने! सेवे चरणे	सावेरी
4.	भारति! मामव कृपया	तोड़ी
5.	जननि! मामवामेये!	भैरवी

6.	सरीरुहासनजाये !	पंतुवराली
7.	जननि ! पाहि सदा	शुद्धा सावेरी
8.	पाहि जननि ! सन्ततं	नाटकुरंजी
9.	पाहि पर्वतनन्दिनी !	आरभी

'नवरत्नमालिका' में नवधा भक्ति को प्रतिपादित करनेवाले अनुपम कीर्तन हैं–

	कीर्तन	राग	भक्ति-प्रकार
1.	भवदीपकथाभिनवसुधायाम्	भैरवी	श्रवणम्
2.	तावकनामानि शुभदानि	केदारगौलम्	कीर्तनम्
3.	सतत संस्मरणीह	नीलाम्बरी	स्मरणम्
4.	पंकजाक्ष ! तव सेवाम्	तोड़ी	पादसेवनम्
5.	आराध्यामि करणत्रेयेणाहम्	विलहरि	अर्चनम्
6.	वन्दे देवदेव	बंगड़	वन्दनम्
7.	परमपुरुष ! ननु कर्म	आहिरी	दास्यम्
8.	भवति विश्वासो मे भवतु	मुखारी	सख्यम्
9.	देवदेवः कल्पयामि	नाभनामक्रिया	आत्मनिवेदनम्[9]

वस्तुतः उच्चकोटि की कला भाषा–भेद को नहीं मानती। प्रत्येक भाषा की अच्छी चीज़ों को स्वीकार कर लेती है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण महाराज स्वातितिरुनाल द्वारा हिन्दुस्तानी संगीत के ध्रुवपद, टप्पा, ख्याल प्रभृति राग–रागिनियों में निबद्ध हिन्दी के पद एवं कीर्तन हैं। गर्भश्रीमान् स्वातितिरुनाल राम वर्मा ने हिन्दी में लगभग चालीस पद और गीत लिखे हैं। प्रारम्भ में ये गीत और पद मलयाळम् लिपि में ही निबद्ध थे, किन्तु सन् 1939 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की मुख–पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में

---

9. श्री के. नारायणन् : केरल की सांस्कृतिक विरासत : तदेव, पृ. 128–129

श्री एन. वेंकटेश्वरन् ने उन गीतों को कवि की जीवनी के साथ प्रकाशित करवाया था। स्वातितिरुनाल की कविता पर टिप्पणी करते हुए श्री एन. वेंकटेश्वरन् लिखते हैं- 'गर्भश्रीमान् के हिन्दी पदों और कीर्तनों की भाषा में ख़डीबोली और ब्रजभाषा का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। उनमें असीम श्रीकृष्ण-भक्ति के सूक्ष्म तथा मार्मिक भावों का अभिव्यंजन हुआ है। समुचित स्थानों पर सार्थक शब्द-रत्नों का सुन्दर चयन करके अपने पदों और गीतों की गति और गेयता में कमनीयता और कर्णप्रियता पैदा करने की कला ही गर्भश्रीमान् की लेखनी की सबसे बड़ी विशेषता है। हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में रचे हुए उनके तमाम पदों और कीर्तनों में हम एक सच्चे भक्त के सम्पूर्ण आत्मसमर्पण और तल्लीनता की अनुभूति का अभिव्यंजन पा सकते हैं। वे एक महान् तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक, विद्वान् अथवा महान् उपदेशक नहीं थे। वे मुख्यतः एक रसिक भावुक भक्तकवि और सफल गायक मात्र थे। अपने इष्टदेव तथा कुलदेव श्रीपद्मनाभ के प्रति अपनी अपार एवं अकलंक भक्ति की अभिव्यक्ति करना, उनके प्रेम में मस्त होकर अपने आपको भूल जाना, उनके प्रति होनेवाली भक्ति के सामने समस्त संसार को तुच्छ मानना, श्रीपद्मनाभ को छोड़कर दूसरे देवों की गौड़ता दिख़ाना आदि बातें हम गर्भश्रीमान् की प्रत्येक कविता में पाते हैं।'[10]

महाराज स्वातितिरुनाल के अधिकांश हिन्दी-गीत भक्तिपरक हैं, जिनमें विभिन्न देवी-देवताओं की अर्चना की गयी है। डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर ने स्वातितिरुनाल के हिन्दी-गीतों को विषयवार विभाजित करते हुए लिखा है- '(1) श्रीकृष्ण सम्बन्धी-20, (2) रामचन्द्र सम्बन्धी-4, (3) देवी-सम्बन्धी-9, (4) प्रेयसी-प्रिय-वार्ता-7, (5) सामान्य भक्ति-2। जैसा कि गीतों की संख्या से विदित होता है, श्रीकृष्ण सम्बन्धी और प्रेयसी-प्रिय-वार्ता के गीत प्रमुख हैं। श्रीकृष्ण के विविध रूपों में मुरलीधर, गोपी-चित्तचोर और कालियादमन रूपों की कीर्ति इन्होंने अधिक गायी है। चाहे बाललीला हो, चाहे विरह-वार्ता या विनय-निवेदन, प्रत्येक प्रसंग पर जयदेव

---

10. श्री एन. वेंकटेश्वेरन् : केरल की हिन्दी को देन : रजत-जयन्ती ग्रन्थ : राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा : प्रथम संस्करण-1962 ई., पृ. 120-121

की–सी सरसता प्रकट होती है। राजपद, यौवन एवं कलावन्तों के सतसंग में ऐसी सरसता का रहना स्वाभाविक है।'[11]

वस्तुतः महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा केरल के प्रथम हिन्दी–कवि हैं। उनके पद मीरा, सूर, तुलसी प्रभृति के पदों के समान कर्णप्रिय एवं भावपूर्ण हैं। तथा–

मैं तो नहिं जाऊँ जननी जमुना के तीर।
इतनी सुनके मात जसोदा पूछति मुरहर से।
क्यों नहीं जावत धेनु चरावन बालन कह हमसे।
कहत हरी सब ग्वालिन मिलि हम मींजत घन कुच से।
जब सब लाज–भरी ब्रजवासिनि कहे न कहो दृग से।
तौं हूँ बात सबै मधुसूदन बोले जसुमति से।
जब तब गोपिन सब हरि के मुख ढाँकत निज कर से।
ऐसी लीला कोटि कियो कैसे जायो मधुबन से।
'पद्मनाभ' प्रभु दीन–उधारण पालो सब दुख से।।[12]

उपर्युक्त गीत को केन्द्र में रखकर डॉ. आनन्दस्वरूप पाठक लिखते हैं– 'कवि की दृष्टि कृष्ण–भक्त कवियों द्वारा प्रतिपादित कृष्ण–जीवन के सभी रसमय स्थलों पर गयी है। किशोर और बालकृष्ण ही कवि के उपास्य हैं। गोपियों की रीझ–खीझ, गोपी–मिलन, बाल–लीलाएँ, वन्दन पद, उद्धव–गोपी–संवाद, बाँसुरी के प्रति उपालम्भ आदि अनेक विषय कवि की रूप विधायिनी तूलिकावत लेखनी से साकार हो उठे हैं। अबोध बालक गाय न चराने जाने का कारण कितने सहज रूप से कह देता है कि माँ! गोपियाँ मुझे अपने पीवर स्तनों से भींच देती हैं। उस प्रसंग में गोपियों का बालकृष्ण को नैनों–सैनों से मना करना कितना मनोवैज्ञानिक व स्वाभाविक है।'[13]

---

11. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दी गीत : प्रथम संस्करण–1963 ई., पृ. 21
12. श्री एन. वेंकटेश्वेरन् : केरल की हिन्दी को देन : तदेव, पृ. 122
13. डॉ. आनन्दस्वरूप पाठक : मलयालम भाषी ब्रजभाषा कवि–स्वातितिरुनाल : हरसिंगार : साहित्य–मण्डल श्रीनाथद्वारा, अप्रैल–जून 2005 ई., पृ. 68

महाराज स्वातितिरुनाल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और भगवती राधा को अपने मन में विराजित करने की कामना करते हैं–

कृष्णचन्द्र राधा मनमोहन मेरे मन मैं विराजो जी।
मोर पिंछ कटि काछनी राजे कर मुरली उर माल लसे।
फणिवर के पर निरत करत प्रभु देव मुनीश्वर मगन बसे।
हाथ जोड़ सब नाग-बधूजन करें बिनती हरि चरण से।
छोड़ो हमारे प्रीतम को हम अंचल धोवैं असुवन से।
'पद्मनाभ' प्रभु फणि पर शायी कब जीवौ चितवन से।
ऐसी लीला कोटि तुमारी नहीं कहि जावे कविजन से।।[14]

उपर्युक्त पद की सरसता मीरा और सूर के पदों के समतुल्य है। स्वातितिरुनाल ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का मार्मिक चित्रण किया है। एक गोपांगना श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी का वर्णन दूसरी गोपांगना से करते हुए कहती है–

बंसीवाले ने मन मोहा।
बोली बोले मीठी लागे दरदर उमंग करावे।
बेणन बाजे तान गावे निसिदिन गोपियाँ रिजावे।
साँवरो रंग मोहनी अंग सुमरन तन की भुलावे।
कालिन्दी के तीर ठाढ़े मोहन बाँसुरी बजावे।
'पद्मनाभ' प्रभु दीनबन्धु सुर नर चरण मनावे।।[15]

महाराज स्वातितिरुनाल रचित श्रीकृष्ण-विषयक कतिपय पद यहाँ उद्धृत हैं–

(1)

चलिये कुंजन मो तुम हम मिल स्याम हरी।
देखो जमुना रे बही सुन्दर अति नीर भरी।

---

14. श्री एन. वेंकटेश्वेरन् : केरल की हिन्दी को देन : तदेव, पृ. 122-123
15. डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै : कैरली-वैभव : प्रथम संस्करण-1976 ई., पृ. 108

छोड़िये कैसे मोकूँ मैं तो तेरे हाथ धरी।
सुनिये कोइल के बोल पिया क्या कह री।।[16]

(2)

सुनो सखि! मेरी मन की दरद री।
जब फिरती मैं रंग-महल में सेज पलँग पर तड़के जाती।
बेला चमेली दौना मरुवा चम्पई गुलाब की हार बनाती।
जैसे जल बिन तरसत पंछी तरस रही मेरो पिय बिन छाती।
सोवत नाहिं लगे गोरि निद्रा बीच बीच पिया कू बुलाती।
निसि दिन भर भर चोवा रे चन्दन अतर अगरजा अंग लगाती।।[17].

(3)

आज उनींदे चले आये ठाढ़ो मोरे अँगना
बृजराज नन्दकुँवर माई! गिरिधारी।
कोमल कपोलन में राजे जाके बिन्दन
अंजन अधर लसे चित्र-रूप-धारी।
मोसो कह आवन औरन ते रति पायो
मैं तो जागि रही, अब भोर भयो प्यारी।
'पद्मनाभ' दीनबन्धु छोड़े कैसे मोहे सखी!
गोपीनाथ साँवरो एरी बनवारी।।[18]

महाराज स्वातितिरुनाल के भक्ति-गीतों पर संगीत की राग-रागियों का स्पष्ट प्रभाव है। भगवान् श्रीराम के नृत्य को तालबद्ध करने का जैसा सुन्दर उपक्रम स्वातितिरुनाल ने किया है, वैसा वर्णन एक संगीताचार्य ही कर सकता है-

---

16. डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै : तदेव : पृ. 108
17. डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै : तदेव : पृ. 109
18. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दी गीत, पृ. 36

नाचे रघुनाथ रंग दासीजन गावे।
झनक झनक कनक कनक तोंततारि तनतनारि
धिकिधा धिलांक मधुर धुन बजावे।
थिरक थिरक थैय थैय दीतथिं ततकथ थैय्य
धुकुटधीं धुकुटधीं ताधिन्न तान सुर मिलावे।
सुर नरेश मुनि गणेश तेरो ही प्रताप गावे
'पद्मनाभ' चरणदास कामित फल पावे।।[19]

इस तरह की संगीतबद्ध रचनाएँ कच्छ–भुज–नरेश महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' कृत 'सदाशिव विवाह' नामक ग्रन्थ में प्राप्त होती हैं–

ताधिकि धिधिकटि धिधिकटि धिलांग।
धुकु धुकुटि धुकुटि धिवतां धुगांग।
ता थुंग थुंग बज्जत मृदंग।
अस नृतत नटेसुर नवल रंग।।

* * * *

बोलन्त बुलैया तान बोल।
तत् थेइ थेइ थेइ तान बोल।
तत् उघटन्त ताण्डव नि अंग अंग।
इमि नृतत नटेसुर नवल रंग।।[20]

इसी क्रम में प्रभु श्रीरामचन्द्र के श्रीचरणों में निवेदित दो पद और भी द्रष्टव्य हैं–

(1)

रामचन्द्र प्रभु! तुम बिन प्यारे कौन खबर ले मेरी।
बाज रही जिनकी नगरी मो सदा धरम की भेरी।

---

19. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : तदेव, पृ. 54

20. महाराव लखपति सिंह 'लखधीर' : सदाशिव विवाह, छन्द संख्या 203 एवं 210 : उद्धृत–डॉ. निर्मला आसनाणी : कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला–उससे सम्बद्ध कवियों का कृतित्व : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण, पृ. 118

जाके चरण-कमल की रज से तिरिया तन कू फेरी।
औरन कूँ कछु और भरोसा हमें भरोसा तेरी।
'पद्मनाभ' प्रभु फणि पर शायी कृपा करो क्यों देरी।।[21]

(2)

अवध सुखदाई अब बाजे बधाई।
रतन सिंहासन के पर रधुपति सीता सहित सुहायो।
राम भरत सुमित्रनन्दन ठाढ़े चामर चतुर डुलायो।
गाँव गाँव जन मंगल गावत देवन वाद्य बजायो।
राम रावण मारे, असुर सब मारे, राज विभीषण पायो।
माता कौसल्या करत आरती निज मनवांछित पायो।
राम 'पद्मनाभ' प्रभु! फणि पर शायी त्रिभुवन सुख आयो।।[22]

महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा की कृतियों को उनके रचना-काल में थोड़ी-बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी। उनके राजदरबार में विद्वानों द्वारा उनकी कृतियाँ गायी जाती थीं। मन्दिरों में भी स्वातितिरुनाल के पद गाये जाते थे, किन्तु उनकी अमूल्य कृतियों को जितने बड़े पैमाने पर प्रचारित होना चाहिए था, उतना लगभग पाँच दशक पूर्व तक नहीं हुआ था। श्री के. नारायणन् ने लिखा है- 'केरल की पाठशालाओं में लड़कियों को संगीत सिखाया जाता था, पर कुछ इने-गिने गानों को छोड़कर अन्य गाने स्वातितिरुनाल के नहीं थे। शीघ्र ही कुछ धीमानों का ध्यान इस भूल की ओर आकृष्ट हुआ। स्वातितिरुनाल के अनेक सुन्दर गीत अप्रचलित पड़े थे। उन गीतों को खोज निकाल कर और नयी नयी धुनों में बिठाकर उनको व्यापक तौर पर प्रचलित करने का ज़ोरदार प्रयत्न शुरू हुआ। प्रमुखतः इसी उद्देश्य से ई. 1940 में त्रिवेन्द्रम् में 'श्री स्वातितिरुनाल म्यूजिक अकादमी' कि स्थापना हुई। ... इस अकादमी द्वारा स्वातितिरुनाल की अनेक अप्रचलित कृतियाँ प्रकाशित

---

21. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : महाराजा स्वातितिरुनाल के हिन्दी गीत, पृ. 64
22. डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर : तदेव, पृ. 38

की गयीं हैं। सैकड़ों विद्यार्थी उन कृतियों के शुद्ध पाठ अर्थ सहित सीखकर उन्हें संगीत-कार्यक्रमों में प्रस्तुत कर रहे हैं। आज 'कर्नाटक संगीत' का ऐसा कार्यक्रम विरला ही होता है, जिसमें स्वातितिरुनाल की कुछ कृतियाँ न गयी जाती हों। स्वातितिरुनाल की कृतियाँ इतने ऊँचे स्तर की हैं कि वे 'कर्नाटक संगीत' की बृहत्त्रयी, 'कर्नाटक संगीत' के पितामह श्री पुरन्दरदास आदि के समकक्ष माने जाते हैं।'[23]

निश्चय ही महाराज स्वातितिरुनाल का जीवन और साहित्य अनुकरणीय है। इसी पक्ष को रेखांकित करते हुए डॉ. किरनपाल सिंह की वाणी सर्वथा उचित प्रतीत होती है- 'स्वातितिरुनाल एक वैभवशाली राजा थे। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन था। शासक के तौर पर प्रजापालन के साथ अनेक समस्याओं और झंझटों से जूझना पड़ता था। और सबसे अहम बात यह थी कि वे कम समय-अल्पायु में ही ब्रह्मलीन हो गये थे। 34 वर्ष की वय कोई अधिक नहीं होती। अपने इष्ट-देव की आराधना और साथ ही साहित्य-रचना करना कोई सरल कार्य नहीं और वह भी राजकीय परिवेश में। अपनी मातृभाषा से इतर ब्रजभाषा हिन्दी में सुन्दर गीतों की रचना कोई कम महत्त्वपूर्ण नहीं अति श्लाघनीय कार्य है। कम ही सही पर हिन्दी के लिए किये गये इस अंशदान-अवदान के लिए हिन्दी-जगत् कभी उऋण नहीं होगा, सदैव आभारी रहेगा उनका।'[24]

ब्रजमण्डल से सुदूर दक्षिण में अवस्थित केरल प्रान्त के मलयाळमभाषी शासक के द्वारा ब्रजभाषा में लिखी गयी पदावलियाँ ब्रजभाषा के माधुर्य एवं आकर्षण को सिद्ध करती हैं। ब्रजभाषा की माधुरी के लिए एक प्राक्तन उक्ति प्रचलित है, जिसमें कहा गया है कि ब्रजनारियों की वाणी में, मैथिलनारियों के कटाक्ष में, बंगालियों के दाँत में, ओड़िया स्त्रियों के जघन में, महाराष्ट्री

---

23. श्री के. नारायणन् : केरल की सांस्कृतिक विरासत : तदेव, पृ. 131-132

24. डॉ. किरनपाल सिंह : हिन्दी के दिवंगत अल्पायु रचनाकार, पृ. 14

स्त्रियों के नितम्ब में, केरल की नारियों के घने काले जूड़ों में, कन्नड़ी स्त्रियों की कटि में और गुजराती नारियों के स्तनों में कामदेव स्फुरण करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रजांगनाओं की वाणी, अर्थात् ब्रजभाषा का माधुर्य ही गर्भश्रीमान् महाराज स्वातितिरुनाल राम वर्मा को हिन्दी-कवि की श्रेणी में स्थापित करता है-

वाचि श्री माथुरीणां जनक-जनपदस्थायिनीनां कटाक्षे
दन्ते गौडाङ्गनानां सुललितजघने चोत्कले-प्रेयसीनाम्।
महाराष्ट्री नितम्बे सजलघनरुचौ केरलीकेशपाशे-
कर्णाटीनां कटौ च स्फुरति रतिपतिर्गुर्जरीणां स्तनेषु।।[25]

❑❑

---

25. उद्धृत-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य का इतिहास : रजत-जयन्ती ग्रन्थ : राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, पृ. 36

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव'

'अयोध्या' का नाम सुनते ही हृदय-मन्दिर के गर्भगृह में अवस्थित पद्मकोष पर बैठी स्मृति-युवती पुराणी की चित्रपटी पर दो मनोरम बिम्ब उभरते हैं- प्रथम बिम्ब सूर्यवंश के चक्रवर्ती इक्ष्वाकु नरेशों की परम्परा में रघुवंश-शिरोमणि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के विराट् व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का तथा द्वितीय बिम्ब रीतिकाल के अन्तिम आचार्यकवि शाकद्वीपीय मगद्विज-शिरोरत्न महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' के राजकीय पुरुषार्थ एवं सारस्वत शब्दार्थ का। द्विजदेव की वंश-परम्परा का इतिहास बिहार प्रान्त के भोजपुर से प्रारम्भ होता है। अठारहवीं शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक में दिल्ली के बादशाह के द्वारा गर्ग गोत्रीया शाकद्वीपीय ब्राह्मण पण्डित सदासुख पाठक भोजपुर के 'चौधरी' नियुक्त किये गये थे। कालान्तर में बंगाल के नवाब मीर क़ासिम (20 अक्टूबर 1760-7 जुलाई 1763) द्वारा 'भोजपुर' को अधिग्रहीत कर लेने के पश्चात् पण्डित सदासुख पाठक की ज़मीदारी समाप्त हो गयी और वे अनपे पुत्र गोपालराम पाठक के साथ अवध प्रान्त के बस्ती ज़िले में अवस्थित अमरोहा परगना के नन्दनगर नामक ग्राम में बस गये। पण्डित गोपालराम पाठक ने पलिया ग्राम के ज़मीदार सघईराम के घराने में गंगाराम मिश्र की दुहिता से अपने पुत्र पुरन्दरराम पाठक का विवाह किया। विवाहोपरान्त पुरन्दरराम पाठक अपनी ससुराल पलिया में ही बस गये।

पुरन्दरराम पाठक के पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः बख़्तावर सिंह, शिवदीन सिंह, दर्शन सिंह, इच्छा सिंह और देवीप्रसाद सिंह थे। पुरन्दरराम के पाँचों पुत्र परम प्रतापी और प्रसिद्ध पुरुष हुए। बख़्तावर सिंह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की घुड़सवार सेना में भर्ती हो गये थे। इनकी बहादुरी देखकर नवाब वज़ीर सआदत अली ख़ान की इन पर विशेष कृपा-दृष्टि हुई। नवाब वज़ीर सआदत अली ख़ान ने रेजिडेण्ट को लिखकर बख़्ताबर सिंह को अपनी सेना में

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव'

ले लिया। एक बार किसी विद्रोही ने सैर करते हुए नवाब पर जानलेवा हमला कर दिया, किन्तु उसका वार खाली चला गया। उसके दूसरी बार प्रहार करने के पूर्व बख़्तावर सिंह ने अपनी तलवार से उसे वहीं ढेर कर दिया। नवाब ने प्रसन्न होकर बख़्तावर सिंह को खिलअत एवं पलिया गाँव की जागीर देने के साथ ही उन्हें सौ सवारों का अधिकारी भी नियुक्त कर दिया। उसके कुछ समय बाद ही बख़्तावर सिंह की नियुक्त रिसलदार के पद पर हुई। नवाब ग़ाज़ियुद्दीन हैदर भी बख़्तावर सिंह से अत्यधिक प्रसन्न रहते थे, जिससे इनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी। इसी क्रम में बख़्तावर सिंह को ' राजा' की पदवीं से विभूषित करने के साथ-साथ चौवन मौज़े का 'महदौना' ताल्लुक़ा प्रदान किया गया।

राजा बख़्तावर सिंह ने सन् 1838 ई. में अपने अनुज दर्शन सिंह को दरबार में बुला लिया। इतिहासकार श्री पवन बख़्शी ने लिखा है-'दर्शन सिंह को एक पल्टन की अफसरी मिली। अगले ही वर्ष इन्हें सलौन तथा बैसवाड़ा का चकलेदार (मालगुजारी वसूल करनेवाला अधिकारी) बना दिया गया। इसके पाँच वर्ष के पश्चात् इन्हें सुल्तानपुर और बहराइच का प्रान्ताध्यक्ष बना दिया गया। संवत् 1899 (1842 ई.) में इन्हें गोण्डा और बहराइच के नाज़िम के पद पर नियुक्त किया गया। अपने इलाक़े का अच्छा प्रबन्ध करने के एवज में इन्हें भी 'राजा' की पदवी प्रदान की गयी। इनके द्वारा शिवदीन नामक डाकू का दमन करने के फलस्वरूप इन्हें 'बहादुर' की उपाधि भी मिली। बलरामपुर के राजा दिग्विजय सिंह सरकारी मालगुजारी नहीं देते थे, एक बार इसी कारण उनसे युद्ध भी हुआ और पीछा करते हुए नेपाल राज्य के भीतर ससैन्य चले गये। इस पर दोनों सरकारों में लिखा-पढ़ी हुई। इसी कारण इन्हें इनके पद से हटा दिया गया और 'महदौना' का प्रबन्ध भी इनसे छिन गया। नेपाल राज्य की जो हानि हुई थी, उसे दर्शन सिंह ने चुका दिया और वे अपने पद पर पुनः आसीन हो गये। अमज़द अली शाह के वज़ीर मुनव्वुरद्दौला के समय अवध राज्य का कुल प्रबन्ध वास्तव में इन्हीं के हाथ में था। इसी समय लखनऊ का 'लालबाग़' इन्हें मिला था। राजा दर्शन सिंह ने 'शाहगंज' में किला, बाज़ार और महल बनवाया। अयोध्या में दर्शनेश्वरनाथ का प्रस्तर निर्मित 'शिवालय' स्थापित कराया, सूर्यकुण्ड के चारों ओर पक्का घाट बनवाया तथा उसके पास ही दर्शननगर बसाया। राजा दर्शन सिंह दान, न्याय व साहसपूर्ण वीरता के लिए सुप्रसिद्ध हुए। राजद्रोहियों का दमन करने पर इन्हें के.सी. एस. आई. की

पदवी मिली जो आज भी इस वंश को प्राप्त हो। श्रवण शुक्ला सप्तमी संवत् 1901 (1844 ई.) को अयोध्या में इनका निधन हो गया।'[1]

'नाइट कमाण्डर ऑफ़ द स्टार ऑफ़ इण्डिया' (K.C.S.I) की उपाधि से अलंकृत राजा दर्शन सिंह बहादुर के गृह-मन्दिर में अगहन सुदी 5, सं. 1877 (10 दिसम्बर, 1820 ई.) को रीतिकाल के अन्तिम आचार्यकवि, 'श्रृंगारलतिका', 'श्रृंगार बत्तीसी,' 'अविमुक्त पंचदसी' प्रभृति ग्रन्थों के कीर्तिवान्, प्रणेता, ठाकुरप्रसाद, जगन्नाथ, बलदेव सिंह, रामनारायण आदि कवियों के उदार आश्रयदाता, 'महदौना' के प्रतापी शासक, महाराज मान सिंह बहादुर कायमजंग के. सी. एस. आई. का जन्म हुआ। संवत् 1901 (1844 ई.) में पिता राजा दर्शन सिंह बहादुर की मृत्यु हो जाने पर मान सिंह महदौना राज के अर्द्धभाग के और ज्येष्ठ पिता राजा बख़्तावर सिंह की संवत् 1912 (1855 ई.) में निःसन्तान मृत्यु हो जाने के कारण सम्पूर्ण महदौना राज के स्वामी हुए।

सन् 1844 ई. में राजा दर्शन सिंह बहादुर के मरणोपरान्त जब राज्य में अशान्ति फैल गयी तब मान सिंह ने बुद्धिमत्तापूर्ण पराक्रम से विद्रोहियों का दमन किया। इससे अंग्रेजी हुकूमत की दृष्टि में मान सिंह का महत्त्व और भी बढ़ गया। महाराज मान सिंह की बुद्धिमत्ता और समयोचित प्रत्युत्पन्नमतित्व की ओर संकेत करते हुए 'अवध के तालुक़दार' नामक पुस्तक में ऐतिह्यविद् श्री पवन बख़्शी लिखते हैं-' एक बार किसी कारण वश बादशाह की कोप-दृष्टि राजा बख़्तावर सिंह पर पड़ी और वे नज़रबन्द कर दिये गये। महाराज मान सिंह ने तीन लाख का जुर्माना भर कर उन्हें छुड़ाया और वे पुनः दरबार में पहुँचे। इसी बीच समाचार मिला कि सूरजपुर बाराबंकी के एक विद्रोही राजा ने चार सौ मनुष्यों को क़ैद कर रखा है और उन्हें ज़िन्दा ही जला देना चाहता है। बादशाह अमज़द अली शाह ने मान सिंह के सुप्रबन्धन की चर्चा सुन रखी थी, इसलिए बख़्तावर सिंह को आज्ञा देकर मान सिंह को वहाँ भिजवा दिया। महाराज मान सिंह ने अपने गुप्तचरों द्वारा सूरजपुर की गढ़ी और सैन्य बल का पता लगाया। उन क़ैदियों को जलाये जाने में केवल एक दिन का समय शेष था। महाराज मान सिंह ने तीन सौ बहादुरों के साथ मध्य रात्रि में सूरजपुर घेर लिया। उन्होंने तोपख़ाने और क़ैदियों को अपने अधिकार में ले लिया। दो घण्टे के भीषण युद्ध

1. श्री पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार, पृ. 262

के बाद राजा सूरजपुर को गिरफ्तार कर लिया गया। बादशाह ने इस विजय की प्रसन्नता में इन्हें 'राजा बहादुर' की पदवीं दी तथा दरियाबाद, रुदौली का नाज़िम नियुक्त किया। इसके दो वर्ष बाद सीहीपुर के राजा हरपाल सिंह का दमन करने के उपलक्ष्य में इन्हें 'कायमजंग' की उपाधि से विभूषित किया गया। इसके बाद राजा मान सिंह ने तीन कुख्यात डाकुओं- भूरे ख़ान, अजब सिंह तथा जगन्नाथ चपरासी को पकड़ा। इससे प्रसन्न होकर इन्हें ग्यारह तोपों की सलामी, ईरान के बादशाह की तलवार, झालरदार झमला, ताज़ के आकार की टोपी उपहार स्वरूप दिये गये। इसके अतिरिक्त भी इनके साहस की अनेक घटनाएँ हैं, जिनके लिए एक पृथक् पुस्तक की आवश्यकता होगी।[2]

सन् 1856 ई. में अवध की नवाबी सत्ता पतनोन्मुख हो चली थी और आंग्ल सत्ता का सूर्य अपने मध्याह्न पर था। महाराज मान सिंह हुए थे कि अवध प्रान्त में क्रान्ति की ज्वालाएँ प्रज्ज्वलित हो उठीं। 1857 ई. (सं. 1914 वि.) की क्रान्ति में महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' ने अंग्रेजों की अच्छी सहायता की थी, जिसके लिए उन्हें दो लाख रुपये की जागीर मिली थी, पर विरोधियों के भड़काने पर अंग्रेजी शासन की कोपदृष्टि इन पर पड़ी और इन्हें कारावास में डाल देने की योजना बनी। षडयन्त्र का पता द्विजदेवजी को चल गया और वे वृन्दावन चले गये।[3] महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' कृत 'श्रृंगार बत्तीसी' के 1885 ई. में प्रकाशित तृतीय संस्करण की द्विजदेव के भ्रातृज लाल त्रिलोकीनाथ सिंह 'भुवनेश' के द्वारा लिखी गयी भूमिका के आधार पर रीतिकालीन साहित्य के महान् अन्वेषक एवं आचार्य डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने 'सरोज-सर्वेक्षण' में लिखा है-' संवत् 1263 फलसी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भय से द्विजदेव ने सावन-भादौं का महीना वृन्दावन में बिताया था और यहीं भरी बरसात में 'श्रृंगार बत्तीसी' की रचना की थी। इसलिए यह ग्रन्थ इतना पावसमय और सरस है। शरदकाल में ये काशी आये। यहाँ मणिकर्णिका घाट पर गंगा-स्नान किया। फिर 'अविमुक्त-पंचदसी' बनाकर वाराणसी की स्तुति की और परमेश्वर की कृपा से उन्हें अपना राज्य पुनः वापस मिला।[4]'

---

2. श्री पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार, पृ. 263-264
3. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 539-540
4. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण (1967 ई.), पृ. 354

डॉ. किशोरीलाल गुप्त द्वारा उद्धृत 1263 फसली में परमेश्वर की कृपा से द्विजदेव जी को अपना राज्य पुनः वापस मिलने का प्रकरहण कुछ ठीक नहीं लगता। फसली संवत् ईस्वी सन् से 590 वर्ष पीछे चल रहा है। फसली संवत् 1263 में 590 जोड़ देने पर ईस्वी सन् 1853 होता है। सन् 1853 ई. में द्विजदेव के राज्य छिनने का कोई सन्दर्भ उपलब्ध नहीं है। पिता राजा दर्शन सिंह बहादुर के. सी. एस. आई. के मरणोपरान्त 1844 ई. में महाराज मान सिंह आधे महदौना राज के स्वामी हो ही गये थे, किन्तु सम्पूर्ण राज्य का दायित्व ज्येष्ठ पिता राजा बख़्तावर सिंह के मरणोपरान्त सन् 1855 ई. में प्राप्त हुआ। हो सकता है कि जिस तरह द्विजदेव के बाद महदौना की सत्ता के लिए द्विजदेव के भ्रातृज लाल त्रिलोकीनाथ सिंह 'भुवनेश' और दौहित्र महाराज प्रतापनारायण सिंह 'वीरेश' ददुआ साहब के मध्य सत्ता-संघर्ष हुआ और अदालत से 1880 ई. में महाराज प्रतापनारायण सिंह के पक्ष में फ़ैसला आया, इसी तरह द्विजदेव के समय में भी उत्तराधिकार सम्बन्धी कतिपय दाँव-पेंच रहे हों।

महाराज मान सिंह को सन् 1859 ई. में लखनऊ के बड़े दरबार में महाराजा की पदवी, सात हज़ार की खिलअत, गोण्डा के बिसेन राजा का बड़ा ताल्लुक़ा विशम्भरपुर तथा तुलसीपुर मिला। द्विजदेव जी अवध प्रान्त के न केवल अग्रणी तालुक़दार रहे, अपितु 'अंजुमन हिन्द अवध' की स्थापना में इनकी महती भूमिका भी रहीं है।' कविता-कौमुदी' के संग्रहकर्ता पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है- 'द्विजदेव अवध के ताल्लुक़ेदारों के एसोसिएशन के सभापति थे।[5] इन्हें अंग्रेजी सरकार द्वारा के. सी. एस. आई. की गौरवपूर्ण उपाधि से अलंकृत किया गया था।

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' का प्रथम विवाह महारानी रामकली देवी से हुआ, जिनसे ब्रजविलास कुँवरि उपानाम 'बच्ची साहिबा' का जन्म हुआ। प्रथम महारानी के मरणोपरान्त द्विजदेव जी का द्वितीय विवाह श्रीमती सुभाव कुँवरि के साथ सम्पन्न हुआ, जिनसे कोई सन्तति-लाभ नहीं हुआ। प्रथम महारानी रामकली देवी से उत्पन्न हुई राजकुमारी ब्रजविलास कुँवरि का पाणिग्रहण संस्कार आरा के रईस श्रीयुत् बाबू नरसिंहनारायण सिंह से सम्पन्न हुआ, जिनके पुत्र महाराज प्रतापनारायण सिंह 'वीरेश' उपाख्य 'ददुआ साहब' हुए। महाराज मान सिंह

'द्विजदेव' का देहावसान विक्रमाब्द 1927 में कार्तिक वदी द्वितीय (10 अक्टूबर, 1870 ई.) को हुआ।[6]

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' ने यद्यपि दो विवाह किये थे, तथापि दोनों महारानियों से उन्हें पुत्र-लाभ न हुआ और अपने जीवनकाल में वे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त न कर सके। इसलिए उनके मरने के बाद महदौना का राज प्रबन्ध 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' के आधीन हो गया। 'महारानी की वसीयत' के अनुसार महारानी सुभाव कुँवरि द्वारा लाल रघुवरदयाल सिंह के पुत्र लाल त्रिलोकीनाथ सिंह 'भुवनेश' को अपना उत्तराधिकारी चुना गया, किन्तु इस उत्तराधिकार के विरुद्ध बाबू प्रतापनारायण सिंह 'ददुआ साहब' ने न्यायालय में अभियोग दायर किया। सन् 1880 ई. में निर्णय ददुआ साहब के पक्ष में आया और वे महदौना राज के स्वामी हुए।

हिन्दी साहित्येतिहास ग्रन्थों में जहाँ भी महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' का उल्लेख है, वहाँ उन्हें अयोध्या-नरेश कहा गया है, जबकि यह पूर्णतः सत्य नहीं है। द्विजदेव को अपने पिता राजा दर्शन सिंह बहादुर के. सी. एस. आई. और ज्येष्ठ पिता राजा बख़्तावर सिंह से उत्तराधिकार में 'महदौना राज' प्राप्त हुआ था तथा वे अपने पूरे जीवनकाल तक महदौना के ही महाराज थे। 'महदौना राज' का नाम महाराज प्रतापनारायण सिंह 'वीरेश' के शासनकाल में सन् 1883 ई. में परिवर्तित होकर 'अयोध्या राज' हुआ और तत्कालीन भारत सरकार के द्वारा महाराज प्रतापनारायण सिंह को 'अयोध्या नरेश' की उपाधि से अलंकृत किया गया।[7] 'महदौना राज' और 'अयोध्या राज' की भौगोलिक सीमा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ एवं महाराज प्रतापनारायण सिंह, 'ददुआ साहब' ने 'वीरेश' उपनाम से सन् 1892 ई. में 'रसकुसुमाकर'[8] नामक ग्रन्थ का प्रणयन

---

5. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी, पहला भाग, पृ. 521
6. हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग 6, पृ. 539-540
7. श्री पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार, पृ. 265
8. 'रसकुसुमाकर' 515 छन्दों का एक उत्कृष्ट रीति ग्रन्थ माना जाता है। इसके रचयिता अयोध्या के महाराज 'ददुआ साहब' हैं। लक्षण ग्रन्थों की परम्परा में इसका महत्त्व इसलिए भी स्वीकार किया जाता है कि जहाँ →

किया, जिसमें द्विजदेव के अनेक छन्द उद्धृत होने के कारण सम्भवतः हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' को अयोध्या का राजा लिखा है।[9] इसी तरह 'शिवसिंह सरोज', हिन्दी साहित्य कोश' प्रभृति ग्रन्थों में

→ पूर्ववर्ती अन्य लक्षण ग्रन्थों में विषय का प्रतिपादन पद्य शैली मे हुआ है, इसमें गद्य के माध्यम से लक्षणों का रोचक एवं सरस निरूपण हुआ है। यह ग्रन्थ सं. 1949 में पूर्ण हुआ और सं. 1951 में प्रयाग के इण्डियन प्रेस से मुद्रित हुआ।

'रसकुसुमाकर' पन्द्रह कुसुमों में लिखा गया है। प्रथम में परिचय है, द्वितीय में स्थायी भावों का निरूपण है। इसी प्रकार तृतीय में संचारी भाव, चतुर्थ में अनुमान और पंचम में घरों का लालित्यपूर्ण वर्णन हुआ है। शेष अन्य कुसुमों में सखा, सखी, दूती, ऋतुवर्णन और परकीया आदि नायिकाओं का उल्लेख हुआ है। इसकी एक सबसे बढ़कर विशेषता यह है कि रीति-काल के उत्तम शृंगारिक कवियों से उदाहरण चुनने में ददुआ साहब ने बड़ी सहृदयता प्रदर्शित की है। इस ग्रन्थ में स्थल स्थल पर देव, बिहारी, पद्माकर, बेनी, द्विजदेव, लीलाधर, कमलापति, लछिराम और संकु आदि के टकसाली छन्द आसानी से मिल जायेंगे। यथा स्थल भावों के अनुरूप कुछ विशिष्ट चित्र भी दिये गये हैं। इन चित्रों से ग्रन्थ की महत्ता निश्चय ही बढ़ गयी है।

– डॉ. किशोरीलाल : हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, पृ. 475

9. (क) ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज (सम्मेलन सं.) 1970 ई., पृ. 716

(ख) पं. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, पहला भाग (प्रथम संस्करण), पृ. 521

(ग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास (13 वाँ संस्करण, ना. प्र. स.), पृ. 377

(घ) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, पृ. 270

(ङ) डॉ. जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य संग्रह (1983 ई.), पृ. 125

द्विजदेव की जन्म और मृत्यु की तिथियाँ भी ग़लत हैं।[10] जब हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने द्विजदेव जैसे सुविख्यात कवि–नरेश की जन्म और मृत्यु की तिथि ठीक नहीं लिखा है, तब प्राचीन कवियों के विषय में दिये गये इनके निर्णय कैसे विश्वसनीय हो सकते हैं!

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' के साहित्यिक सन्दर्भ को आरेखित करते हुए हिन्दी–साहित्य के महान् आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं– 'ये अयोध्या के महाराज के थे और बड़ी ही सरस कविता करते थे। ऋतुओं के वर्णन इनके बहुत ही मनोहर हैं। इनके भतीजे भुवनेश जी ने द्विजदेव की दो पुस्तकें बतायी हैं–'शृंगारबत्तीसी' और 'शृंगारलतिका'। 'शृंगारलतिका' का एक बहुत ही विशाल और सचित्र संस्करण महारानी अयोध्या की ओर से हाल में प्रकाशित हुआ है। इसके टीकाकार हैं भूतपूर्व अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह। 'शृंगार बत्तीसी' भी एक बार छपी थी। द्विजदेव के कवित्र काव्य–प्रेमियों में वैसे ही प्रसिद्ध हैं जैसे पद्माकर के। ब्रजभाषा के शृंगारी कवियों की परम्परा में इन्हें अन्तिम प्रसिद्ध कवि समझना चाहिए। इनकी–सी सरस और भावमयी फुटकल शृंगारी कविता फिर दुर्लभ हो गयी।'[11] कवि–चित्रकार और रीति–साहित्य के अधिकारी विद्वान् डॉ. जगदीश लिखते हैं– 'द्विजदेव की रचनाओं में एक सरल भावावेग सुकुमार कल्पना तथा सहज सूक्ष्म अनुभूति के दर्शन होते हैं। 'चाँदनी के भारन लगत उनयो सो चन्द, गन्ध ही के भारन बहत मन्द मन्द पौन' जैसी कोमल भावना से उद्भूत उक्ति रीतिकालीन निसर्ग–काव्य में अप्रतिम है और कवि के अकृत्रिम सौन्दर्यबोध को व्यक्त करती है। शब्द–चयन तथा पद–विन्यास में कलात्मकता होते हुए भी उससे हृदय का तारल्य आच्छादित नहीं हुआ है। वर्षा और वसन्त के अन्तर्गत इन्होंने शृंगारिक मनोभावनाओं का

---

10. (क) ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज (सम्मेलन सं.), 1970 ई., पृ. 717

    (ख) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग–2, पृ. 270

11. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. 13, ना. प्र. सभा काशी, संवत् 2018, पृ. 377

जो चित्रण किया है, वह अन्य अनेक ख्यातनामा पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा अधिक सजीव और आकर्षक है।'[12] एक अन्य स्थल पर रीतिकाव्य के कला-पक्ष एवं सौन्दर्य-बोध के वर्णन-सन्दर्भ में डॉ. जगदीश गुप्त ने द्विजदेव की शैन-प्रकृति की रमणीयता एवं सुकुमार वर्णन-कला को रेखांकित करते हुए लिखा है-

'चाँदनी के भारन लगत उनयो सो चन्द
गन्ध ही के भारन बहत मन्द मन्द पौन।

यहाँ चाँदनी और गन्ध जैसे अमूर्त पदार्थों में भार की कल्पना करते हुए कवि ने चन्द्रमा के निकल आने और पवन के मन्दगति से प्रवाहित होने का हेतु उत्प्रेक्षित किया है। ठीक इसी ढंग पर द्विजदेव से पूर्व ही बिहारी लिख चुखे थे-

भूषन-भारु सँभारिहैं क्यों इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाँय न परत मग सोभा ही के भार।।

यहाँ शोभा के भार की कल्पना सूक्ष्म चमत्कारिक एवं प्रभावोत्पादक है, परन्तु पैरों का सीधे न पड़ना स्वाभाविक स्थिति नहीं है अतएव जितना सौकर्य एवं सौन्दर्य द्विजदेव की कल्पना में प्रतीत होता है उतना बिहारी की कल्पना में नहीं मिलता है। द्विजदेव की पंक्तियाँ अधिक काव्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करती हैं।'[13]

डॉ. जगदीश गुप्त ने द्विजदेव के जिस घनाक्षरी छन्द की इतनी प्रशंसा की है, वह निम्नलिखित है-

सुर ही के भार सूधे सबद सुकीरन के,
मन्दिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
'द्विजदेव' त्यौं ही मधुभारन अपारन सौं,
नेकु झुकि झूमि रहे मोगरे मरुअ दौन।

---

12. डॉ. जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य संग्रह (1983 ई.), संकलन भाग, पृ. 125
13. डॉ. जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य संग्रह (1983 ई.), भूमिका, पृ. 69-70

खोलि इन नैननि निहारौं त निहारौं कहा,
सुखमा अभूत छाय रही प्रति भौन भौन।
चाँदनी के भारन लगत उनयो सौ चन्द
गन्ध ही के भारन बहत मन्द मन्द पौन।।[14]

वस्तुतः यह 'रूप घनाक्षरी' छन्द है। जितनी सुन्दर छन्द की योजना की गयी है, उतना ही सुन्दर निर्वाह भी किया गया है। पूरे के पूरे छन्द में सौन्दर्य का शाश्वत प्रवाह देखते ही बनता है। इसी तरह नायक से मिलने हेतु निकली सभीता उत्कण्डिता नायिका का सुन्दर वर्णन करते हुए द्विजदेव ने अपनी रसाभिलाषिणी दृष्टि का परिचय दिया है–

दाबि दाबि दन्तन अधर छतवन्त करै,
आपने ही पाँयन को आहट सुनत स्त्रौन।
'द्विजदेव' लेत भरि गातन प्रस्वेद अलि,
पात हूँ कि खरक जु होति कहूँ-काहू भौन।
कण्टकित होति अति उससि उसासनि ते,
सहज सुबासन शरीर में जु लागे पौन।
पन्थ ही में कन्त के जो होति यह हाल तोपै,
लाल की मिलनि ह्वै हैं बाल की दसा धौं कौन।।[15]

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपने विख्यात संग्रह–ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में 'शृंगार लतिका' से चार सवैये उद्धृत किये हैं। प्रथम सवैये में 'दीपशिखा'–सी नयी दुलही की सौन्दर्य–दीप्ति देखते ही बनती है–

प्रथमै बिकसे बन बैरी बसन्तके बातन ते मुरझाई हुती।
'द्विजदेव' जू ताहू पै देह सबै बिरहानल ज्वाल जराई हुती।
यह साँवरे रावरे नेह सों अंगन प्यारी न ओ सरसाई हुती।
तो पै दीपसिखा-सी नई दुलही अबलौं कब की न बुझाई हुती।।[16]

---

14. द्विजदेव : डॉ. जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य संग्रह, पृ. 129, छन्द सं. 12
15. द्विजदेव : तदेव, पृ. 126, छन्द सं. 3
16. द्विजदेव : ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, पृ. 220, छन्द सं. 644

निश्चय ही महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' यहाँ महाकवि कालिदास के समीप खड़े प्रतीत होते हैं–

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः।।[17]

कुछ ऐसी ही अंगदीप्ति 'शिवसिंह सरोज' में उद्धृत द्विजदेव के तीसरे 'किरीट सवैये' में दृग्गत होती है–

चालै सु आयी नयी दुलही लखिबे को जबै कोऊ चाव चढ़ावति।
सूही सजी सिर सारी जबै तब नाइन आपने हाथ ओढ़ावति।
भीतर भौन तें बाहर लौं 'द्विजदेव' जुन्हाई की धार-सी धावति।
साँझ समै ससि की-सी कला उदयाचल ते मनो घेरति आवति।।[18]

क्या अद्भुत कल्पना है! सौन्दर्य के ऐसे निष्कलंक चित्रण कम देखने को मिलते हैं। द्विरागमन (गौने) के बाद ससुराल में आयी नयी दुलही को देखने के लिए गाँव-घर की महिलाएँ एकत्र हुई हैं। यह जानकर नाइन ने दुलही के सिर पर लाल रंग की साड़ी (पिछौरी) ओढ़ा दिया। घर के भीतर बैठी लाल साड़ी से आवेष्टित उस नवोढ़ा के मुखचन्द्र से चन्द्रिका की धार बाहर आ रही है। मानो सान्ध्य बेला में चन्द्रमा की कला उदयाचल को घेरकर आ रही हो। ऐसा सरस चित्रण रीतिकाल के सिद्ध आचार्य द्विजदेव ही कर सकते हैं। इसी सन्दर्भ में द्विजदेव का एक और छन्द द्रष्टव्य है–

---

17. रात को जब हम दीपक लेकर चलते हैं तब जो जो राजमार्ग के भवन पीछे छूटते चलते हैं वे अँधेरे में पड़कर धुँधले पड़ते जाते हैं, वैसे ही जिन जिन राजाओं को छोड़कर इन्दुमती आगे बढ़ गयी उनका मुँह उदास पड़ गया।– महाकवि कालिदास : रघुवंशम्-6/67, कालिदास ग्रन्थावली : सं. पण्डित सीताराम चतुर्वेदी : अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, तृतीय सं. 2019 वि., पृ. 71
18. द्विजदेव : ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज पृ. 221. छन्द सं. 646

कातिक के द्यौस कहूँ आई न्हाइबे को वह,
गोपिन के संग जऊ नेसुक लुकी रही।
'द्विजदेव' हरिद्वार ही तैं घाट बाट लगी,
खासी चन्द्रिका-सी तऊ फैली विधुकी रही।
घेरी बार पार लौं तमासे हित ताहि समै
भारी भीर लोगन की ऐसिये झुकी रही।
आली उत आजु वृषभानुजा बिलोकिबे को
भानुतनयाहू घरी द्वैक लौं रुकी रही।।[19]

हरिद्वार में गोपियों के संग स्नान करने गयी वृषभानुजा राधिका को देखने के लिए भानुतनया[20] के दो घड़ी तक रुकने की अप्रतिम कल्पना निश्चय ही

19. द्विजदेव : बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' : काव्यप्रभाकर (ना. प्र. सं.-2028 वि.), पृ. 301

20. 'भानुतनया' का प्रचलित अर्थ 'यमुना' ही है, किन्तु हरिद्वार में यमुना नहीं हैं। हरिद्वार की पुण्यभूमि गंगा से अभिसिंचित है। इसलिए हरिद्वार को 'गंगाद्वार' भी कहा जाता है। भगवान् वेदव्यास ने महाभारत में हरिद्वार का स्मरण 'गंगाद्वार' के रूप में ही किया है -

स्वर्गद्वारेण यत् तुल्यं गङ्गाद्वारं न संशयः।
तत्राभिषेकं कुर्वीत कोटितीर्थे समाहिताः।।

पुण्डरीकमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्।
उष्यैकां रजनीं तत्र गोसहस्रफलं लभेत्।।

सप्ताङ्गे त्रिगङ्गे च शक्रावर्ते च तर्पयन्।
देवान् पितृंश्च विधिवत् पुण्ये लोके महीयते।।

ततः कनखले स्नात्वा त्रिरात्रोपोषितो नरः।
अश्वमेधमवाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति।।

– महाभारत, वनपर्व 84/27-30

हरिद्वार में यमुना नहीं हैं। इस तथ्य से द्विजदेव जी अवश्य परिचित रहे होंगे। ऐसी स्थिति में 'आली उत आजु वृषभानुजा बिलोकिबे को, भानुतनयाहू

—o

द्विजदेव को कालजयी रचनाकारों की वरेण्य पंक्ति में स्थापित करती है।

वसन्त के अवसर पर कान्त से दूर विरहिणी नायिका की विरह-दशा का चित्रण करते हुए द्विजदेव लिखते हैं-

चाहिहैं चित्त-चकोर दवा, श्रुति आपनो दोष परोसिनै लैहैं।
ये दृग अम्बुज से अकुलाइ कला विष-बन्धु की हाइ अचैहैं।
ऐसी कसामसी में 'द्विजदेव' अली अलि के गुन गाइ सुनैहैं।
ह्वैहै सुकौन दसा तन की, जु पै भौन वसन्त लौं कन्त न ऐहैं।।[21]

नूतन उद्भावनाओं और अप्रतिम कल्पनाओं के आलोक में रचे गये द्विजदेव के छन्दों का कोई जवाब नहीं। उलाहना के प्रसंग में चतुर्थी के चन्द्रमा का जितना सुन्दर प्रयोग द्विजदेव ने किया है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता-

लहि जीवन मूरिको लाहु अली वे भली जुग जारि लौं जीबो करैं।
'द्विजदेव' जू त्यों हरसाय हिये बर बैन-सुधा-मधु पीबो करैं।
कछु घूँघट खोलि चित्तै हरि ओरन चौथि-ससी-दुति लीबो करैं।
हम तौ ब्रज को बसिबोई तजो, अब चाउ चबाइनै कीबो करैं।।[22]

अवध क्षेत्र में 'चतुर्थी के चन्द्रमा' को न देखने की परम्परा है। चतुर्थी का चन्द्रमा त्याज्य माना जाता है। इसलिए अवधी में लोकोक्ति प्रचलित है-

जे देखे चउथि क चन्दा। पैड़ा चलत लगै फरफन्दा।।

—o

घरी द्वैक लौं रुकी रही' लिखना अवश्य विचारणीय है। यहाँ 'भानुतनया' का प्रयोग लोकप्रसिद्धि से पृथक् 'गंगा' अर्थ में ही हुआ है, क्योंकि गंगा का अवतरण सूर्यवंशी सम्राट् भगीरथ के कारण हुआ है। इस दृष्टि से गंगा भी सूर्यवंश की ही पुत्री हैं। अतः 'भानुतनया' का आशय 'भानुकुलतनया' (गंगा से है।

21. द्विजदेव : ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, पृ. 220-221, छन्द सं. 645

22. द्विजदेव : तदेव, पृ. 221, छन्द सं. 647

गोस्वामी तुलसीदास ने भी चतुर्थी के चन्द्रमा का सुन्दर प्रयोग 'रामचरितमानस' के 'सुन्दरकाण्ड' में 'रावण-मन्दोदरी-संवाद' के अन्तर्गत किया है-

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना।
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चन्द की नाईं।।[23]

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने सन् 1878 ई. में पहली बार प्रकाशित हुए अपने विख्यात संग्रह-ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' में द्विजदेव महाराज मान सिंह बहादुर शाकद्वीपी अवध-नरेश के चार सवैया छन्दों के अतिरिक्त दो घनाक्षरी छन्द उद्धृत किया है-

आवत चली री यह विषय बयारि देखु
दबे दबे पाँयन केंवारन लरजि दे।
क्वैलिया कसाइन को देरी समुझाइ मधु-
माती मधुपालिनि कुचालिनी तरजि दे।
आजु ब्रजरानी के वियोग के दिवस ताते
हरे हरे कीर बकवादिन बरजि दे।
पी पी के पुकारिबै की खोलैं ज्यों न जी हैं
ए पपीहन के जूहन त्यों बावरी बरजि दे।।

अब मति दे री कान कान्ह की बसीठिन पै
झूठी मूठ प्रेम पतियानहू को फेरि दे।
उरझि रही री जो अनेक पुरिखा ते तऊ
नाते की गिरह मूँदि नैननि निबेरि दे।
मरन चहत काहू छैल पै छबीली कऊ
हाथन उचाय ब्रज-बीथिन में टेरि दे।
नेह री कहाँ को, जरि खेह री भई, तौ मेरी
देह री उठाय वाकी देहरी पै गेरि दे।।[24]

---

23. गोस्वामी तुलसीदासः रामचरितमानस-5/37/3

24. द्विजदेव : ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज, पृ. 221-222, छन्द सं. 648-649

उपर्युक्त दोनों छन्दों के किंचित भिन्न पाठ डॉ. जगदीश गुप्त के 'रीति-काव्य-संग्रह'[25] में विद्यमान है। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी के 1919 ई. में प्रकाशित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कविता-कौमुदी' के पहले भाग में महामहोपाध्याय महाराज सर प्रतापनारायण सिंह के. सी. एस. आई. 'ददुआ साहब' द्वारा रचित 'रसकुसुमाकर' से चुनकर द्विजदेव के सात घनाक्षरी और दो सवैये दिये गये हैं। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी द्वारा उद्धृत तृतीय 'रूप घनाक्षरी' में 'प्रेमधन' लूटने वाले ब्रजराज के अनोखे नैन का अनोखा चित्रण द्विजदेव को सचमुच आचार्य कवि सिद्ध करता है-

बाँके संक हीने राते कंज छवि छीने माते
झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कहू गनै न।
'द्विजदेव' की सौं ऐसी बानक बनाइ बहु
भाँतिन बगारे चित चाह न चहूधा चैन।
पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे
बार बार तातैं तुम्हें बूझती कछूक बैन।
एहो ब्रजराज! मेरे प्रेमधन लूटिबो को
बीरा खाइ आये कितै आपके अनोखे नैन।।[26]

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' रीतिकाल के अन्तिम रससिद्ध आचार्य कवि हैं। इसलिए इनके छन्दों के पुष्कल उद्धरण पुराने संग्रह-ग्रन्थों एवं अलंकार-ग्रन्थों में मिलते हैं। महामहोपाध्याय रायबहादुर बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' ने 1905 ई. में प्रकाशित अपने सुप्रसिद्ध अलंकार-ग्रन्थ 'काव्यप्रभाकर' में द्विजदेव के पन्द्रह छन्दों को प्रसंगतः उद्धृत किया है।[27] भानुकवि ने

25. डॉ. जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य-संग्रह, संकलन भाग, पृ. 128-129, छन्द सं. 8 एवं 11

26. द्विजदेव : पं रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुर, पहला भाग, पृ. 522, छन्द सं. 3

27. बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' : काव्यप्रभाकर (ना. प्र. स. काशी), संवत् 2028 पृ. 168-1, 187-4, 193-3, 194-1, 195,6, 204-3, 301-2, 302-2, 321-15, 323-30, 338-26 (377-1), 371-1, 382-2 (407-6), 406-1, 443-43

'आनन्दसम्मोहिता' नायिका का वर्णन करते हुए लिखा है–

आनँदसम्मोहा सुरति आनँद में पगि जाय।
मगन होय तिय सुरति में बौरी-सी ह्वै जाय।।[28]

भानुकवि द्वारा प्रतिपादित 'आनन्दसम्मोहित नायिका' के उपर्युक्त लक्षण को महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' के निम्नांकित 'जलहरण छन्द' में घटित होता देखा जा सकता है–

सीसफूल सरकि सुहावने लिलार लाग्यो,
लाभी लटें लटकि परी हैं कटि छाम पर।
'द्विजदेव' त्यों ही कछू हुलसि हिये तें हेलि,
फैलि गयो राग मुख पंकज ललाम पर।
स्वेद सीकरन सराबोर ह्वै सुरंग चीर
लाल दुति दै रहो सुहीरन के दाम पर।
केलिरस साने दोऊ थकित बिकाने तऊ
हाँकी होति कुमक सुनाकी धूमधाम पर।।[29]

रीतिकाल का सांगोपांग वर्णन द्विजदेव-वाङ्मय में उलब्ध होता है। स्वप्नदर्शन का इतना सुन्दर उदाहरण द्विजदेव के साहित्य में उपलब्ध होता है कि पढ़कर तबीयत प्रसन्न हो जाती है–

सोवत आजु सखी अपने 'द्विजदेव' जू आय मिले बनमाली।
जौलों उठी मिलिबो कहँ धाय सोहाय भुजान भुजान पै घाली।
बोलि उठी पपीगन तौ लगि पीव कहाँ कहि कूर कुचाली।
सम्पति-सी सपने की भई मिलिबो ब्रजराज को आज को आली।।[30]

स्वप्नदर्शन का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है–

---

28. बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' : काव्यप्रभाकर, पृ. 168
29. द्विजदेव : बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि' : काव्यप्रभाकर, पृ. 168, छन्द सं.1
30. द्विजदेव : तदेव, पृ. 407, छन्द सं. 6

काहू काहू भाँति राति लागी ती पलक तहाँ
सपने में आनि केलि रीति उन ठानी री।
आपु दुरे जाये मेरे नैननि मुदाय कुछु
हौहूँ बजमारी ढूँढ़िबो को अकुलानी री।
एरी मेरी आली या निराली करता की गति
'द्विजदेव' नेकऊ न परत पिछानी री।
जौलों उठि आपनो पथिक पिय ढूँढ़ौं तौलों
हाय इन आँखिन ते नीदई हेरानी री।।[31]

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' की काव्य-कला मात्र शास्त्रीय अथवा टकसाली ही नहीं है, अपितु हृदयस्पर्शी भी है। कृष्ण के प्रति समर्पित भोर से ही द्वार पर दही दही पुकारनेवाली ग्वालिनी की मनोदशा का चित्रण जहाँ रीति और श्रृंगार के लौकिक पक्ष का उद्‌घाटन करता है, वहीं कृष्ण रूपी परमात्मा से मिलने के लिए उत्सुक ग्वालिनी रूपी आत्मा की व्यग्रता को भी प्रदर्शित करता है-

डारै कहूँ मथनि बिसारै कहूँ घी को भाँड़ो
बिकल बिगारै कहूँ माखन मठा मही।
भ्रमि भ्रमि आवत चहूँधा ते जु याही ओर
प्रेम पयपूर के प्रवाहन मनो बही।
झुरसि गयी धौं कहूँ काहू की वियोग झार
बार बार विकल विसूरति जही तही।
एहो ब्रजराज! एक ग्वालिनी कहूँ की आज
भोर ही ते द्वार पै पुकारति दही दही।।[32]

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' केवल श्रृंगारी कवि नहीं है। इन्होंने भक्ति के अत्यन्त सरस छन्दों का भी वर्णन किया है। मोहमयी तम को नष्ट करनेवाली

---

31. द्विजदेव : तदेव, पृ. 406, छन्द सं.1, पं. रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी, भाग 1, पृ. 523
32. द्विजदेव : डॉ. जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य-संग्रह, संकलन भाग, पृ. 126-127, छन्द सं. 4

वृषभानुलली के ध्यान–वैशिष्ट्य को वर्णित करते हुए 'द्विजदेव' ने लिखा है–

भूषण सारे सँवारे जराऊ तिन्हैं लखि तारे लगैं अति फीके।
त्यों 'द्विजदेव' जू आनन की छवि अंग सबै सरमाय ससी के।
ताहू पे भानु प्रभा निदरैं लसैं चंचल कुण्डल कानन नीके।
मोहमयी तम क्यों न मिटै इमि ध्यान धरै वृषभानुलली के।।[33]

इसी क्रम में एक छप्पय भी द्रष्टव्य है–

एकै हैं बिब रूप राधिका श्याम कहावैं।
ह्वै बश ब्रज युवतीन चतुर चातुर मन भावैं।
पंचबाण रति कोटि अंग अंगनि पर वारैं।
छलबल करि ब्रजसुयश परम पावन विस्तारैं।
'द्विजदेव' सातहूँ भुवन में अष्टसिद्धिदाता विदित।
मन सेवहु नवभक्तियुत नवरस ब्रजराज नित।।[34]

'द्विजदेव' के एक भक्ति विषयक ग्रन्थ 'अविमुक्त पंचदसी' का उल्लेख लाल त्रिलोकीनाथ सिंह 'भुवनेश' ने किया है। इसके सन्दर्भ में डॉ. किशोरीलाल गुप्त लिखते हैं– 'अविमुक्त पंचदसी' में 15 छन्द, सम्भवतः कवित्त–सवैये ही हैं, पर यह ग्रन्थ आज तक देखा नहीं गया।'[35]

महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' के समय में 'महदौना राज' अथवा परवर्ति कालिक 'अयोध्या राज' का साहित्यिक वातावरण अपनी चूडान्त प्रतिष्ठा को प्राप्त था। महारानी सुभाव कुँवरि द्वारा सन् 1875 ई. में गोद लिये गये द्विजदेव के भ्रातृज लाल त्रिलोकीनाथ सिंह 'भुवनेश' स्वयं श्रेष्ठ कवि थे। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से भुवनेश जी की दो पुस्तकें– 'भुवनेशभूषण' और 'भुवनेशविलास' प्रकाशित हुई हैं। भुवनेश जी के तीन छन्द भानुकवि के 'काव्यप्रभाकर' में प्रसंगतः उल्लिखित हैं। यहाँ भुवनेश जी का एक छन्द द्रष्टव्य है–

---

33. द्विजदेव : भानुकवि : काव्यप्रभाकर, पृ. 443, छन्द सं. 43
34. द्विजदेव : डॉ. जगदीश गुप्त : उपर्युक्त, पृ. 126, छन्द सं.1
35. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज–सर्वेक्षण (प्र. सं. 1967 ई.), पृ. 354

रूप रच्यो हरि राधिका को उनहू हरि रूप रच्यो छवि छावत।
गावत तान तरंग दुहूँ दुहूँ भाव बताय दुहूँन रिझावत।
त्यों 'भुवनेश' दुहूँन के नैन दुहूँन के आनन पै लटकावत।
छाय रही छवि वैसई री! सुनि जो हुती चन्दचकोर कहावत।।[36]

भुवनेश जी ने 1875 ई. से 1880 ई. तक महदौना राज पर शासन किया। सन् 1880 ई. में न्यायालय द्वारा भुवनेश जी को अपस्थ करके द्विजदेव जी के दौहित्र महाराज प्रतापनारायण सिंह 'वीरेश' उपाख्य 'ददुआ साहब' महदौना की गद्दी पर बैठे। यद्यपि 'महदौना राज' के राजा होते हुए भी द्विजदेव ने स्वयं को 'अवध-नरेश'[37] कहा है, तथापि तत्कालीन भारत सरकार द्वारा 'अयोध्या-नरेश' की गौरवपूर्ण उपाधि से विभूषित होने और सही अर्थों में आधुनिक अयोध्या राज के प्रथम शासक होने का गौरव ददुआ साहब को ही प्राप्त है। ददुआ साहब को सन् 1895 ई. में के. सी. एस. आई. की उपाधि एवं 1906 ई. में 'महामहोपाध्याय' की पदवी हुई थी। अपने यशस्वी मातामह की न केवल राजकीय अपितु साहित्यिक विरासत को भी सम्हालने का कार्य ददुआ साहब ने भली-भाँति सम्पादित किया। द्विजदेव के 'श्रृंगारलतिका' की ददुआ साहब द्वारा लिखी गयी 'सौरभ' नाम्ना टीका इस तथ्य को प्रमाणित करती है। महाराज प्रतापनारायण सिंह ददुआ साहब' द्वारा चरित 'रसकुसुमाकर' एक उत्कृष्ट रीति-ग्रन्थ है। द्विजदेव जी के पौत्र एवं भुवनेश जी के पुत्र लाल रुद्रनाथ सिंह 'पन्नगेश' भी व्रजभाषा के श्रेष्ठ कवीश्वर थे। 'ऊषा सुन्दरी', 'नारान्तक चरित्र',

---

36. लाल त्रिलोकीनाथ सिंह 'भुवनेश' : बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि : काव्यप्रभाकर, पृ. 366. छन्द सं.3

37. अवध ईस मण्डनभुवन दर्शन सिंह नरेश।
जिनके यश सो श्वेत भो दिशि दिशि देश विदेश।।
तिनको सुत अति अल्पमति मान सिंह द्विजदेव।
किय श्रृंगार बत्तीसिका हरि लाला परमेव।।
महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' : श्रृंगार बत्तीसिका : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ तृतीय आवृत्ति-1885 ई., छन्द सं. 1-2, उद्धृत 'सरोज-सर्वेक्षण', पृ. 353

'कैकेयी चरित्र', 'सौमित्र विजय', 'मधुर मिलन मंजरी' प्रभृति काव्य-कृतियाँ पन्नगेश जी की कवि-कीर्ति की स्थायी स्मारक हैं। कुरुक्षेत्र में हुए कृष्ण और राधिका के मिलन का वर्णन करते हुए पन्नगेश जी लिखते हैं-

तायो वियोगनि आँच करेज बनी तेई आँस ते कोयन छाई।
लील मनीन-सी मोती कपोल कलिन्दजा-सी द्युरि कै छहराई।
आनन ओप लै गंग बही अनुरागि सरस्वती लै लहराई।
नेह नदी की त्रिबेनी बनी जहाँ स्यामा के संग नहात कन्हाई।।

दूऊ ठगे-से उसासैं भरैं दोउ आसैं द्युरावैं बड़ी-बड़ी आँखैं।
दोउन को भरि आयो गरो दोउ नैनन नैनन सो कछु भाखैं।
दोउन की मुलकैं पलकैं पुलकैं तन दोऊ दोऊ मन माखैं।
दोऊ दोऊन की पैयाँ परैं दोउ लेत बलैयाँ अमीरस चाखैं।।[38]

वस्तुतः महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' ने महदौना राज में एक ऐसे साहित्यिक वातावरण का सृजन किया था कि उस परिधि में आने के बाद 'पारस परस कुधातु सुहाई' जैसा ही चमत्कार होता था। तत्कालीन अवध प्रान्त के राजनीतिक नभमण्डल में अपने पुरुषार्थ से महदौना राज का निर्माण करनेवाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण-परिवार के शिरोरत्न महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' अपनी योग्यता और प्रतिभा के बल पर लक्ष्मी और सरस्वती के स्नेहभाजन हुए। द्विजदेव के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का स्मरण करते ही अगोरी-बड़हर राज के प्रतापी शासक राजा शारदामहेशप्रसाद सिंह शाह को लक्ष्य करके लिखी गयी पण्डित प्रभाशंकर चतुर्वेदी की निम्नांकित पंक्तियाँ स्मृति-पटल पर कौंध उठती हैं-

त्वदीय संसर्ग गुणैः प्रभाविता
नवारिजामुञ्चति तं नरेश्वरम्।
सरस्वतीं वाच्छति सङ्गतिं सदा
तयोरिदं वै कलहस्य कारणम्।।[39]

---

38. लाल रुद्रनाथ सिंह 'पन्नगेश' : मधुर मिलन मंजरी (सं. 2029 वि.), पृ. 17, छन्द सं. 16-17

39. पं. प्रभाशंकर चतुर्वेदी : रजत-जयन्ती -भूषण (1942 ई.), पृ. 105

निश्चय ही महाराज मान सिंह 'द्विजदेव' का साहित्यिक प्रदेय एक विशाल परिधि का निर्माण करता है। ब्रजभाषा की ललित-काव्य-माधुरी का जैसा निर्वाह द्विजदेव ने किया है, वैसा अन्यत्र कम देखने को मिलता है। तत्त्वतः द्विजदेव जैसे कविर्नृपति के लिए ही आचार्य राजशेखर ने लिखा है-

ख्याता नराधिपतयः कवि संश्रयेण
राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिम्।
राजा समोऽस्ति न कवेः परमोपकारी
राज्ञो न चास्ति कविता सदृशः सहायः।।[40]

निश्चय ही महाराज मान सिंह द्विजदेव अपने समय के श्रेष्ठ शासक, गुणग्राही आश्रयदाता और सहृदय भावक के साथ-साथ रीतिकाल की कविता-वधूटी का शृंगार करनेवाले वरेण्य आचार्य कवि हैं। ठाकुर शिव सिंह सेंगर, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, महामहोपाध्याय रायबहादुर बाबू जगन्नाथप्रसाद 'भानुकवि', मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. नगेन्द्र से होते हुए डॉ. विद्यानिवास मिश्र तक द्विजदेव की कविता के प्रशंसकों की एक लम्बी पंक्ति है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र और द्विजदेव के वर्तमान उत्तराधिकारी यतीन्द्रमोहनप्रताप मिश्र के संयुक्त सम्पदान में महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के लिए प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली के द्वारा 'द्विजदेव ग्रन्थावली' का प्रकाशन यह सिद्ध करता है कि आधुनिककाल में भी द्विजदेव की प्रासंगिकता बनी हुई है। निश्चय ही अवध प्रान्त के तत्कालीन शासकों में अनेक दृष्टि से द्विजदेव का कोई विकल्प नहीं है।

❑❑

40. आचार्य राजशेखर : काव्यमीमांसा, पृ. 67

राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल'

अवध प्रान्त की देशी रियासतों में अमेठी का नाम लोकमंगल की दृष्टि से सर्वोपरि है। राजा हिम्मत सिंह 'महीपति' (1709–1741 ई.) एवं राजा गुरुदत्त सिंह 'भूपति' (1741–1774 ई.) ने अमेठी राज्य में साहित्य के जिस कल्पद्रुम को लगाया था, वह राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' (1842–1891 ई.) के समय में अपनी शीतलच्छाया से साहित्य–प्रेमियों को आनन्दित करने लगा था। अमेठी–नरेश राजा विश्वेश्वरबख़्श सिंह (1831–1842 ई.) की निःसन्तान मृत्यु के बाद राजा लालमाधव सिंह अमेठी के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। राजा विश्वेश्वरबख़्श सिंह ने अपने जीवन–काल में ही अपने काका लाल अर्जुन सिंह के होनहार पुत्र लालमाधव सिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। लाल अर्जुन सिंह का प्रथम विवाह पड़री (जौनपुर) के दुर्गवंशियों के यहाँ और द्वितीय विवाह विजयीमऊ (प्रतापगढ़) के बिसेनों के यहाँ हुआ था। लालमाधव सिंह अपने पिता के एक मात्र पुत्र थे। राजा विश्वेश्वरबख़्श सिंह के दिवंगत हो जाने के बाद उनकी पतिपरायणा महाराज्ञी ने पति के शव के साथ सती होकर पातिव्रत धर्म का आदर्श उपस्थित किया था। आज भी 'भूपति भवन' के मुख्य द्वार के सम्मुख सती माता का विशाल मन्दिर अवस्थित है।

राजा विश्वेश्वरबख़्श सिंह के पूर्व निर्णयानुसार गंगौली के ताल्लुक़ेदार लाल अर्जुन सिंह के पुत्र लालमाधव सिंह सन् 1842 ई. में अमेठी के शासक हुए। अमेठी राज्य के इतिहासकार ठाकुर उमानाथ सिंह लिखते हैं– 'पहले दो वर्षों तक राज्य का संचालन करने के बावजूद वे विधिवत राजा नहीं घोषित हुए। ई. सन् 1844 में वे विधिवत अमेठी के राजा हुए। इनका पहला विवाह सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व विजयपुर (मिर्ज़ापुर) के गहरवारों के यहाँ हुआ था। ये अवध के नवाब वाज़िद अली शाह के समकालीन थे। नवाब से इनकी बड़ी घनिष्ठता थी। ये बड़े योग्य एवं चतुर शासक थे। इन्होंने अमेठी राज्य के सभी बिखरे हुए भागों को

अधीन करके राज्य को एकसूत्र में बाँध दिया। ये बड़े वीर, भक्त, चतुर, दानी तथा विद्या–प्रेमी थे। कवियों तथा विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। 'छितिपाल' नाम से इन्होंने सब मिलाकर लगभग चौबीस रचनाएँ की हैं। ये बड़े कला–प्रेमी थे। काशी के मणिकर्णिका घाट पर इन्होंने अपनी इष्टदेवी का एक विशाल मन्दिर बनवाया है। कला की दृष्टि से यह मन्दिर बेजोड़ है।'[1]

राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' के कवि–कीर्ति का सर्वप्रथम उल्लेख ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' में हुआ है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने 'कवियों का जीवन चरित्र' प्रकरण के अन्तर्गत कवि–संख्या 242/199/2 पर लालमाधव सिंह का परिचय देते हुए लिखा है– 'छितिपाल, राजा माधव सिंह, बन्धलगोती, अमेठी ज़िले सुलतानपुर के रईस, विद्यमान हैं। इन महाराज के वंश में सदैव से काव्य की चर्चा रही है। राजा हिम्मत सिंह, राजा गुरुदत्त सिंह, राजा उमराव सिंह इत्यादि सब खुद भी कवि थे। इनके यहाँ कवि लोगों में जो शिरोमणि कवि थे उनका मान रहा और ऐसा दान मिला कि फिर दूसरी सरकार में जाने की चाह कम रही। राजा हिम्मत सिंह के यहाँ भाषाकाव्य के महान् पण्डित सुखदेव मिश्र और गुरुदत्त सिंह के पास उदयनाथ कवीन्द्र तथा उमराव सिंह के पास सुवंश शुक्ल जैसे नामी गिरामी कवि थे। उनके नाम के बड़े बड़े साहित्य के ग्रन्थ रचे हैं। राजा माधव सिंह इस अवध प्रदेश में कवि–कोविदों की कदरदानी में बहुत ही गनीमत हैं। इन महाराज के बनाये हुए 'मनोजलतिका', 'देवीचरित्रसरोज', 'त्रिदीप' अर्थात् भर्तृहरिशतक का भाषा उल्था, ये तीन ग्रन्थ हमारे पास मौजूद हैं। और ग्रन्थ हमने नहीं देखे।'[2] ठाकुर शिव सिंह सेंगर के द्वारा दिये गये छितिपाल–परिचय पर टिप्पणी करते हुए डॉ. किशोरीलाल गुप्त लिखते हैं– 'अमेठी के राजा माधव सिंह 'छितिपाल' नाम से कविता करते थे। यह भारतेन्दुयुगीन कवि

---

1. ठाकुर उमानाथ सिंह : अमेठी–राजवंश का संक्षिप्त इतिहास : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, अमेठी, सुलतानपुर : प्रथम संस्करण 1979 ई., पृ. 91
2. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह सरोज (सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त) : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग : प्रथम संस्करण 1970 ई., पृ. 696

हैं। द्विजदेव इनसे कुछ पूर्ववर्ती कवि हैं। सरोज में छितिपाल के मनोजलतिका ग्रन्थ से 'कूकि उठी कोकिलान....' कवित्त उद्धृत है। यह द्विजदेव के शृंगारलतिका के छन्द 14 की पूर्ण छाया है। मनोजलतिका में कुल 227 और शृंगारलतिका में 228 छन्द हैं। शृंगारलतिका के अन्तिम छन्द की पूर्ण छाया मनोजलतिका का 225वाँ छन्द है। शृंगारलतिका की रचना सं. 1907 और मनोजलतिका की रचना सं. 1913 में हुई।'[3]

राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' ने 'मनोजलतिका' के रचना-काल का उल्लेख करते हुए लिखा है-

गुन भू खण्ड सचन्द, वत्सर पावन जानिए।
गुरु वासर आनन्द, माघ शुक्ल तिथि पंचमी।।

'मनोजलतिका' में ही कवि-नरेश छितिपाल ने अपना परिचय भी दिया है-

सूरज कुल कछवाह ते, प्रगट्यो बन्धुल गोत।
अरि तम दारन हित कर्यो, दूजा भान उदोत।।

रतनाकर सो कुल विदित, विदित रतन से भूप।
प्रगट भयो छितिपाल तहँ, माधो सिंह अनूप।।

देश अमेठी पाइ, रामनगर वर वाटिका।
रही सघन झलराइ, यह मनोज लतिका ललित।।[4]

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने कविवर सुवंश शुक्ल के आश्रयदाता एवं बिसवाँ, ज़िला सीतापुर के कायस्थ ताल्लुक़ेदार उमराव सिंह को भ्रमवश अमेठी का राजा लिख दिया है। अमेठी में न तो उमराव सिंह नाम के किसी राजा का कभी शासन रहा और न तो कविवर सुवंश शुक्ल का ही अमेठी से कभी सम्बन्ध रहा। इसी तरह डॉ. ए.जी. ग्रियर्सन (332) ने छितिपाल को राजा गुरुदत्त सिंह

---

3. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण 1967 ई., पृ. 289-290
4. Annual Report on the search for Hindi Manuscripts for the year 1941: नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 198

का उपनाम समझ लिया है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत 'सुन्दरी तिलक' में भी राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' की रचनाएँ संकलित हैं।

प्रो. रामराज पाण्डेय 'अमेठी राज्य से सम्बन्धित साहित्यकार' नामक निबन्ध में लिखते हैं– 'छितिपाल' हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक अमूल्य निधि हैं। यह वह समय रहा जबकि देश में अंग्रेजों का बोलबाला था, अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर होने के बावजूद दयालुता की साक्षात् मूर्ति महाराज ने कुछ संकटग्रस्त अंग्रेज नारियों को बाइज़्ज़त शरण दी थी। स्वाधीनता–संग्राम की आग जब कभी प्रज्ज्वलित हुई, आपने आगे बढ़कर नेतृत्व सँभाल लिया। जहाँ इतिहास के पन्ने इन शौर्य–गाथाओं की प्रशंसा करते हैं, वहीं राजभवन में लगे तोप के गोले व्यवहारिकता का आज भी प्रमाण देते हैं। महाराज की धर्मपरायणता, न्यायप्रियता और प्रजा–प्रेम की कहानी आज भी अमेठी राज्य की जनता के मानस–पटल पर अंकित है।'[5] राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' बड़े स्वाभिमानी तथा देश–प्रेमी थे। इन्होंने 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया था और अपने अदम्य उत्साह एवं पराक्रम से अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे। डॉ. एस. बी. चौधरी ने अपनी पुस्तक 'सिविल रिविलियन इन इण्डियन म्यूटिनीज़' में लिखा है कि 'शंकरपुर के राजा बेनीमाधव सिंह, अमेठी के राजा लालमाधव सिंह, हनुमन्त सिंह, नाना साहब, बालाराव, ज्वालाप्रसाद, मेंहदी हसन और मुहम्मद हसन इन क्रान्तिकारियों के प्रमुख नेताओं में से थे।'[6] श्री

---

5. प्रो. रामराज पाण्डेय : अमेठी–राज्य से सम्बन्धित साहित्यकार : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 133

6. The more prominent of tlie leaders, Rana Beni Madho of Sankarpur, Lal Madho Singh of Amethi, Hanumant Singh, Nana Sahib, Bala Rao, Jawalaprasad, Mchndi Hasan, Mohammed Hasan were still in force and the crowd of jungle forts in the northern line remained to be assaulted. Dr. S. B. Chaudhuri : Civil rebellion in the Indian mutinies, 1857-1859 : Page 141: https://archive.org/stream/in.ernet.dli.2015.130410/2015.130410.Civil-Rebellion-In-The-Indian-Mutinies-1857-1859_djvu.txt

चौधरी ने इसी पुस्तक में आगे वर्णन करते हुए लिखा है कि 'रामपुर कसिया का किला कनपुरियों का एक शक्तिशाली गढ़ था। 3 नवम्बर सन् 1858 को एक भयंकर आक्रमण करके इसे जीत लिया गया। इसके बाद अमेठी का किला जो कि शक्तिशाली सामन्त लालमाधव सिंह का था और प्रारम्भ में जो खुलेआम विद्रोहियों के साथ था, विजित करने के लिए एक सुनियोजित योजना बनायी गयी।'[7] इसी पुस्तक में डॉ. एस. बी. चौधरी ने लिखा है कि 'अमेठी के राजा लालमाधव सिंह और हसनपुर के राजा हुसेन अली ज़िले के अन्य बाग़ी नेताओं में से थे, जिन्होंने सक्रिय रूप से विद्रोहियों का साथ दिया था। इसमें से पहले राजा लालमाधव सिंह 10 नवम्बर सन् 1858 तक विद्रोहियों के साथ थे।'[8]

सन् 1857 ई. की क्रान्ति के समय भारत आये अंग्रेजी पर्यवेक्षक विलियम हावर्ड रसेल (Sir William Howard Russell) ने कैसेल एण्ड कम्पनी लिमिटेड, लन्दन से प्रकाशित 'My Indian Mutiny Dairy' नामक अपनी दैनन्दिनी में स्वतन्त्रता संग्राम में राजा लालमाधव सिंह के 10 नवम्बर, 1858 ई. तक के अविस्मरणीय योगदान को रेखांकित किया है। सुलतानपुर गजेटियर में भी राजा लालमाधव सिंह के उपर्युक्त योगदान का स्मरण किया गया है। गजेटियर के

7. The fort of Rampurkassia, the strong-hold of the Khanpunas was stormed on 3 November, 1858 and a comprehensive plan was made to assault the fort of Amethi belonging to the powerful chief Lal Madho Singh who was conspicuously friendly at the outset of the revolt. Dr. S. B. Chaudhuri : Civil rebellion in the Indian mutinies, 1857-1859 : Page 142 : https://archive.org/stream/in.ernet.dli.2015.130410/2015.130410.Civil-Rebellion-In-The-Indian-Mutinies-1857-1859_djvu.txt

8. Other leaders of the distrwt who had actively joined the rebellion were Lal Madho Singh of Amethi and raja Hussen Ali of Hasanpur The former held out till 10 November, 1858. Dr. S. B. Chaudhuri : Civil rebellion in the Indian mutinies, 1857-1859 : Page 124 : https://archive.org/stream/in.ernet.dli.2015.130410/2015.130410.Civil-Rebellion-In-The-Indian-Mutinies-1857-1859_djvu.txt

अनुसार राजा लालमाधव सिंह ने यद्यपि 1857 ई. में विद्रोहियों का खुला समर्थन किया था, किन्तु इस पर भी उनकी ज़मींदारी लौटा दी गयी और सनद देकर इसकी सम्पुष्टि भी कर दी गयी। 'तवारीख़-ए-अमेठी' में भी राजा लालमाधव सिंह के द्वारा स्वातन्त्र्य समर में किये गये योगदान का वर्णन किया गया है।

ठाकुर उमानाथ सिंह लिखते हैं कि राजा लालमाधव सिंह शासक होते हुए भी लोकतन्त्र में विश्वास रखते थे और प्रजा की इच्छा तथा परामर्श से शासन करते थे। राजा साहिब ने सन् 1276 फसली (ई. सन् 1869) में सरायखेमा ग्राम में एक आम दरबार किया। दरबार में उन्होंने खुलेआम कहा था कि राजा को प्रजा की राय से शासन करना चाहिए और राजकर्मचारियों की नियुक्ति प्रजा की सलाह से करनी चाहिए। उन्होंने और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा था कि राजा और प्रजा को एक दिल होकर कार्य करना चाहिए।'[9]

राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' का जहाँ एक तरफ सक्रिय योगदान प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में रहा है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने बड़े मनोयोग से कविता के उद्यान को भी सजाया है। राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' के 'मनोजलतिका' नामक ग्रन्थ से एक घनाक्षरी छन्द प्रस्तुत है-

कूकि उठीं कोकिलान, गूँजि उठी भौंर भीर,
डोलि उठे सौरभ समीर सरसावने।
फूलि उठी लतिका लवंगन की लोनी लोनी,
फूलि उठीं डालियाँ कदम्ब सुख पावने।
चहकि चकोर उठे, कीर करि सोर उठे,
टेरि उठीं सारिका, विनोद उपजावने।
चटकि गुलाब उठे, सटकि सरोज पुंज,
खटकि मराल ऋतुराज सुनि आवने।।[10]

---

9. ठाकुर उमानाथ सिंह : अमेठी-राजवंश का संक्षिप्त इतिहास : राजा रणञ्जय सिंह अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 92
10. राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 483, पृ. 173

राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' पराम्बा भगवती के अनन्य भक्त थे। 'देवीचरित्रसरोज' नामक ग्रन्थ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्लेष के ब्याज से कवि-नरेश छितिपाल ने वाणी की वन्दना करते हुए लिखा है-

दनुज दराज बल सुनि सुनि हालै, छल-
बल की नकल होत, नकल नकल भौ न।
सोई सुनि सुरन सुरन कैसी जाति लागै,
कसर न एक अंग आवत अनोखी तौन।
याते 'छितिपाल' कविताई की न चाल चलैं,
भूलि जात बुद्धि बल कैसो सब जाल जौन।
अकथ कहानी जानी, जानी जु गयोन यातें-
मति बिलख़ानी, बानी बानी की बख़ानै कौन।।[11]

यह वाणी वन्दना है। दनुज = असुर। दराज बल = अत्यधिक शक्तिशाली। दनुज. = अत्यन्त शक्तिशाली असुर (बेढंगा स्वर जो काव्य के लिए अनुपयुक्त है, सुर का विरोधी है) वाणी का नाम सुनकर काँप उठता है। वह 'असुर' रूपी असुर बल छल करके किसी प्रकार 'सुर' की नकल करता है, पर सच्ची और सुन्दर नकल नहीं हो पाती। उस असुर रूपी अ-सुर काव्य के 'सुर' साक्षात् सुर (देवता) के समान लगते हैं। अभिप्राय यह है कि असुर काव्य का विरोधी है, जहाँ सुर नहीं है, वहाँ काव्य सम्भव नहीं। सुरन = काव्य के स्वरों। सुरन = देवताओं। सोई सुनि. = वाणी के स्वरों को सुनकर उस असुर को अपने प्रतिद्वन्द्वी सुरों का भान होता है। बानी = उक्ति। बानी = सरस्वती। वस्तुतः राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' शब्द-साधना में अहर्निश संलग्न रहे हैं। राजर्षि भर्तृहरि कृत शतकत्रय के 'त्रिदीप' नामक काव्यानुवाद में 'छितिपाल' की शब्द-साधना के सुन्दर उदाहरण विद्यमान हैं। छितिपाल का स्पष्ट मत रहा है कि जिस राजा के राज्य में कवि-कोविद दुःख सहें, उसे प्रवीण मत समझो, उसकी मति मारी गयी है। इसी भावभूमि को कवि-नृपति छितिपाल ने 'त्रिदीप' में विस्तार प्रदान किया है-

---

11. राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 484, पृ. 173

ग्रन्थ ज्ञान ध्यान बानी मधुर उचार दान,
विद्या के विधान मान चाहत घनो घरी।
सुजस बढ़ावै भूरि भाव ते महीपन में,
तप की तलास बेलि सुकृत महा फरी।
ऐसे 'छितिपाल' कवि-कोविद विपति सहैं
राजा न प्रवीन जानो, काहू मति कै छरी।
रतन लरी को मोल घटि करि भाखै ताको,
छोह री बिचारि कहै जौहरी न सौ हरी।।[12]

यहाँ राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' के चार बरवै और दो सवैये उद्धृत हैं–

(1)

कटि कृस उच कुच मृग दृग करि तिय गान।
धन्य पुरुष जा उर अस लगत न बान।।

(2)

कमल-विवेक विकासत तब लौं मन्द।
जब लौं नयन न देखत तिय मुख-चन्द।।

(3)

पके केस मुख रद बिनु सिकुरे अंग।
गये अनंग न तिसना तजी तरंग।।

(4)

भूमि सयन फल भोजन बलकल चीर।
को धनपति के आगे रहै अधीर।।

(5)

छिति पालत को नित कै? जिनको कुच-कुम्भन घोर घटा न करै।
विधि वेद वख़ानत कौन? जिन्हें सुनि तानन, भाम रटा न करै।

---

12. राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 486, पृ. 174

सुर सेवक को फुर है? जिनके उर काम कृसान भटा न करै।
अस को जुत अच्छ रहै? जिनको तिय मारे कटाछ कटा न करै।।

(6)

जाहि कहैं सब वेद पुकारि, ऋषीसुर होंहि धरे मद-ऊरन।
जा करनी मन माँहिं बिचारि, सदासिव आपु चबात धतूरन।
बन्दत है 'छितिपाल' तिन्हैं, सब काल, सबै दिसि ते दुरि दूरन।
पावक में जल में महि में ससि में रवि में सबमें परिपूरन।।[13]

उपर्युक्त छन्दों का अनुशीलन करने पर राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' के अद्वितीय कवि-व्यक्तित्व का बोध होता है। 'छितिपाल' को कोई सन्तान न थी, इसलिए उन्होंने अपने ही वंश के अमये ग्राम के बाबू शिवदर्शन सिंह के यशस्वी एवं प्रतिभावान पुत्र श्री भगवानबख़्श सिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। 24 अगस्त, 1891 ई. को कवि-नरेश छितिपाल का शरीरान्त हो गया। निश्चय ही राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' भारतीय नरेशों की विद्या-व्यसनी परम्परा के अभिनव सोपान पर प्रतिष्ठित लक्ष्मी और सरस्वती के वरद पुत्र रहे हैं। ऐसे ही कवि-नरेशों ने कविता के कीर्ति-मन्दिर को स्वर्ण-कलश से अलंकृत किया है।

❑❑

13. राजा लालमाधव सिंह 'छितिपाल' : शिवसिंह सरोज, छन्द सं. 487, 488, 491, 492, 489 एवं 490, पृ. 174-175

रायबहादुर राजा रणधीर सिंह

भारत के विद्याव्यसनी कवि–नरेशों की उज्ज्वल परम्परा में अनेक ऐसे नाम हैं, जिनके विषय में सामान्य जन ही नहीं, बल्कि साहित्य के अध्येता तक भलीभाँति परिचित नहीं हैं। रायबहादुर राजा रणधीर सिंह एक ऐसे ही कवि–नरेश हैं, जिनके साहित्यिक प्रदेय के विषय में वर्तमान पीढ़ी को बहुत अधिक जानकारी नहीं है। जौनपुर ज़िले में अवस्थित सिंगरामऊ रियासत के राजा रणधीर सिंह के कवि–व्यक्तित्व की राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम सूचना सन् 1878 ई. में प्रकाशित ठाकुर शिव सिंह सेंगर के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवसिंह–सरोज' से ही प्राप्त होती है। 'कवियों का जीवन चरित्र' नामक खण्ड में कवि–संख्या 776/661/61 पर रायबहादुर राजा रणधीर सिंह के विषय में ठाकुर शिव सिंह सेंगर लिखते हैं– 'राजा रनधीर सिंह सिरमौर सिंगरामऊवाले, विद्यमान हैं। ये राजा कवि कोविदों का बड़ा सम्मान करते हैं और काव्य में महा निपुण हैं। इनके बनाये हुए भूषणकौमुदी, काव्यरत्नाकर, ये दोनों ग्रन्थ देखने योग्य हैं।'[1]

'शिवसिंह–सरोज' के पश्चात् रायबहादुर राजा रणधीर सिंह की कीर्ति–कौमुदी को अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर ले जाने का कार्य तत्कालीन सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर रोपर लेथब्रिज़ (Sir Roper Lethbridge-1810-1919 A. D.) ने किया। सन् 1893 ई. में मैकमिलन एण्ड कम्पनी लन्दन और न्यूयार्क से प्रकाशित अपनी पुस्तक 'The Golden Book of India' में सर रोपर लेथब्रिज़ ने रायबहादुर राजा रणधीर सिंह के सम्बन्ध में लिखा है- 'RANDHIR SINGH, Rai Bahadur. Born 1821. The title was conferred, as a

---

1. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह–सरोज : सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण–1970 ई., पृ. 789

रायबहादुर राजा रणधीर सिंह

personal distinction, on 24th May 1883, for services rendered during the Mutiny of 1857. Belong to a Kashtriya family, claiming descent from Thakur Singh Rai, who migrated from Baiswara in Oudh to the Jaunpur district, and founded the village of Singramau, the present state of the family. Residence. Singramau, Jaunpur, North-Western Provinces.'[2]

सर रोपर लेथब्रिज़ के द्वारा दी गयी सूचना केवल परिचयात्मक है। इसमें राजा रणधीर सिंह के साहित्यिक प्रदेय का उल्लेख नहीं है। ठाकुर शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह-सरोज' के बाद मिश्रबन्धुओं (पण्डित गणेशबिहारी मिश्र, रायबहादुर रावराजा डॉ. पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एवं रायबहादुर पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र) के द्वारा रचित एवं सन् 1914 ई. में तीन खण्डों में प्रकाशित 'मिश्रबन्धु विनोद' के तीसरे खण्ड में कवि-संख्या 2688 पर राजा रणधीर सिंह का साहित्यिक परिचय इस प्रकार उपलब्ध होता है-

'(2688) राजा रणधीर सिंह

ग्रन्थ : 1. काव्यरत्नाकर, 2. भूषणकौमुदी, 3. पिंगल वा नामार्णव, 4. रसरत्नाकर।

जन्मकाल : 1877

विवरण : तालुक़दार सिंगरामऊ, जौनपुर। खोज में संवत् 1894 निकलता है।'[3]

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास' के छठवें खण्ड में भी राजा रणधीर सिंह की संक्षिप्त चर्चा हुई है- 'ये सिंगरामऊ, जौनपुर के ज़मींदार थे। इनके लिखे पाँच ग्रन्थ माने जाते हैं-

---

2. Sir Roper Lethbridge : The Golden Book of India : Macmillan And Co. London and New York, 1893 A. D., Page 459

3. पण्डित गणेशबिहारी मिश्र, रायबहादुर रावराजा डॉ. पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एवं रायबहादुर पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र : मिश्रबन्धु विनोद : प्रकाशक-हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली, खण्डवा व प्रयाग, प्रथम संस्करण-1914 ई., भाग 3, पृ. 1438

1. काव्यरत्नाकर, 2. भूषणकौमुदी, 3. पिंगल, 4. नामार्णव और 5. रसरत्नाकर। नामों से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'भूषणकौमुदी' में अलंकार, 'पिंगल' में छन्दशास्त्र, 'नामार्णव' में कोश और 'रसरत्नाकर' में नायिकाभेद विषय रहा होगा। रणधीर सिंह का विशेष विवरण रस-प्रकरण में दिया गया है। अलंकार विषय पर इन्होंने 'भूषणकौमुदी' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें स्वच्छन्द विवेचन है।'[4]

'मिश्रबन्धु विनोद' एवं 'हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास' में उपलब्ध सूचना का उपयोग करते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी साहित्य कोश' में कुछ और भी ज़रूरी सूचनाएँ प्रदान करते हैं- 'रणधीर सिंह : 'मिश्रबन्धु विनोद' के अनुसार ये सिंगरामऊ (ज़िला जौनपुर) के ज़मींदार थे। जन्म 1820 ई.। खोज विवरण (प्रथम त्रैवार्षिक) के अनुसार इनका जन्मकाल 1840 ई. है, जो भ्रामक है क्योंकि इनके ग्रन्थ 'काव्यरत्नाकर' का रचनाकाल ही 1840 ई. दिया हुआ है। इस ग्रन्थ की प्रति सवाई महेन्द्र पुस्तकालय, टीकमगढ़ में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इनके चार ग्रन्थ और माने जाते हैं- 'भूषणकौमुदी', 'पिंगल', 'नामार्णव' और 'रसरत्नाकर'। 'भूषणकौमुदी' में अलंकार, 'पिंगल' में छन्दशास्त्र, 'नामार्णव' में कोश और 'रसरत्नाकर' में रस के विषय में विवेचन है। 'काव्यरत्नाकर' में काव्यशास्त्र के विविध अंगों को एक साथ लिया गया है।'[5]

उपर्युक्त सन्दर्भ-ग्रन्थों में राजा रणधीर सिंह के विषय में जितना विवरण उपलब्ध है, उससे अधिक और प्रामाणिक विवरण केवल पण्डित रामनरेश त्रिपाठी के सन् 1919 ई. में प्रकाशित संग्रह-ग्रन्थ 'कविता-कौमुदी' में ही है। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं- 'जौनपुर नगर से 24 मील पश्चिम सिंगरामऊ एक गाँव है। वह एक रियासत का मुख्य स्थान है। रियासत न तो बहुत बड़ी ही है और न बहुत साधारण ही। आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहिले वहाँ ठाकुर

---

4. सम्पादक डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास : नागरी प्रचारिणी सभा काशी : प्रथम संस्करण-2015 वि. सं. (1958 ई.), भाग 6, पृ. 475
5. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : प्रकाशक- ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी : प्रथम संस्करण-1963 ई., भाग 2, पृ. 471

संग्राम सिंह राज करते थे। उनके पिता का नाम ठाकुर शिवबख़्शराय सिंह था, जो ठाकुर संग्राम सिंह की बाल्यालस्था में ही स्वर्गवासी हो गये थे। ठाकुर संग्राम सिंह का जन्म सं. 1835 वि. में सिंगरामऊ में हुआ। सं. 1890 में उन्होंने काशी में शरीर त्याग किया। वे बड़े वीर थे। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के बहुत बड़े बाग़ी को स्वयं अपने बाहुबल से पकड़कर सरकार के हवाले किया था। उसके उपलक्ष्य में सरकार उन्हें बारह सौ रुपया वार्षिक दिया करती थी। ठाकुर संग्राम सिंह बड़े विद्याव्यसनी थे। वे एक अच्छे कवि थे और गुणियों का यथोचित आदर करते थे। वेदान्तशास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे। छन्द-लक्षण, नायिकाभेद, अलंकार तथा विविध विषयों की उत्तम रचनाओं से विभूषित उनका 'काव्यार्णव' नामक काव्य-ग्रन्थ बहुत उत्तम बना है। वह सं. 1921 में लेथो में छपा हुआ है।'[6]

रायबहादुर राजा रणधीर सिंह उपर्युक्त कवि-नरेश ठाकुर संग्राम सिंह के सुकृती पौत्र एवं ठाकुर गजराज सिंह के पुत्र थे। ठाकुर गजराज सिंह भी कवि-कोविदों का बहुत अधिक सत्कार करते थे। राजा रणधीर सिंह का जन्म विक्रमाब्द 1878 (1820 ई.) में हुआ था। पिता के स्वर्गवासी होने पर विक्रमाब्द 1914 (1857 ई.) में उन्हें सिंगरामऊ का राज्याधिकार प्राप्त हुआ। उसी वर्ष पूरे भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुआ, जो 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से जाना जाता है। राजा रणधीर सिंह ने उस विद्रोह में ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की थी, उसके बदले में उन्हें रायबहादुर की उपाधि प्राप्त हुई थी। ब्रिटिश सरकार की सहायता करने और बदले में रायबहादुर की उपाधि से विभूषित होने का उल्लेख सर रोपर लेथब्रिज़ एवं पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने समान रूप से किया है।

रायबहादुर राजा रणधीर सिंह के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का वर्णन करते हुए पण्डित रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं- राय रणधीर सिंह साहसी, उदार और बड़े प्रजाहितैषी थे। प्रजा को उन्होंने कभी नहीं सताया। उनकी सभा पण्डितों और दूर दूर के कवियों से भरी रहती थी। कविता का उनको व्यसन था। उन्होंने पाँच ग्रन्थों की रचना की है- 1. नामार्णव, 2. काव्यरत्नाकर, 3. सालिहोत्र, 4. भूषणकौमुदी, 5. रागमाला। उनके रचे हुए गीत उनकी रियासत में अब तक बड़े प्रेम से गाये

---

6. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी : प्रकाशक-हिन्दी-मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण-1919 ई., भाग 1, पृ. 503

जाते हैं। सं. 1952 वि. में अयोध्याजी में उन्होंने शरीर त्याग किया।'[7] अयोध्या में शरीरान्त का उल्लेख डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने भी किया है।[8]

'कविता-कौमुदी' की रचना करते समय पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को रायबहादुर राजा रणधीर सिंह के हस्तलिखित एवं लेथो में छपे ग्रन्थ उनके पारिवारिक सदस्य ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह के द्वारा देखने को मिले थे। डॉ. नगेन्द्र और डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भ्रम वश 'नामार्णव' और 'पिंगल' नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है, किन्तु यह एक ही ग्रन्थ है। इसका पूरा नाम 'नामार्णव पिंगल' है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज में 'नामार्णव पिंगल' की दो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख खोज रिपोर्ट (1906/316 ए, 1923/352 सी) में हुआ है। राजा रणधीर सिंह ने मात्र 17 वर्ष की अवस्था में 'नामार्णव पिंगल' का प्रणयन विक्रमाब्द 1894 (1837 ई.) में किया था। यह एक ही साथ छन्दःशास्त्र और पर्याय कोश दोनों ही है। यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें अग्नि का पर्याय कुण्डलिया छन्द के लक्षणोदाहरण के साथ दिया गया है-

सिंहविलोकित रीति दै, दोहा पर रोलाहि।
आदि अन्त जुरि जमकयुत, कुण्डलिया कहि ताहि।।
अनल वह्नि पावक दहन, ज्वलन शिखी बृषभानु।
शुक्र धनञ्जय बातसख, ऊषर अग्नि कृशानु।।
ऊषर अग्नि कृशानु, आनु बुध चित्रभानु इमि।
धूमध्वज जलयोनि, विभावसु बीतिगोत्र तिमि।।
जातवेद जुत आनि, निसाचर तूल तुल्य दल।
काली जू भ्रुव भंग, आजु जारत क्रोधानल।।[9]

---

7. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी : प्रकाशक-हिन्दी-मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण-1919 ई., भाग 1, पृ. 504
8. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण : हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण-1967 ई., पृ. 655
9. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : नामार्णव पिंगल : उद्धृत पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी : प्रकाशक-हिन्दी-मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण-1919 ई., भाग 1, पृ. 505

रायबहादुर राजा रणधीर सिंह का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यरत्नाकर' है। इसकी भी दो हस्तलिखित प्रतियाँ (1906/316 वी, 1923/352 बी) नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इसकी रचना गुरुवार, ज्येष्ठ शुक्ल 12, विक्रमाब्द 1897 (1840 ई.) को पूर्ण हुई। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने रचनाकाल-सूचक दोहा 'शिवसिंह-सरोज' में उद्धृत किया है-

संवत मुनि निधि वसु ससी, अंक रीति गनि चारु।
जेठ सुक्ल सुभ द्वादसी, जनित ग्रन्थ गुरुवारु।।[10]

'काव्यरत्नाकर' सर्वांग पूर्ण काव्यशास्त्र है। इसलिए इसका शुभारम्भ शास्त्रीय परम्परा के अनुसार मंगलाचरण के साथ हुआ है। छप्पय छन्द में प्रथम पूज्य भगवान् गणेश की वन्दना करते हुए रायबहादुर राजा रणधीर सिंह लिखते हैं-

एक-रदन गुन-सदन मदन-अरि-पंच-वदन-सुत।
विधन-कदन गज-वदन दानि मंगल सिँदूर जुत।
भाल-चन्द्र जग-वन्द मन्द-मति-तम विनासकर।
बुद्धिकरन अस्मरन जासु बर बरन भासकर।
मद झरत गण्ड मण्डरित अलि झुण्ड झुण्ड गुंजरित जेहि।
करि ध्यान हृदय अरविन्द पद सीस धारि रनधीर तेहि।।[11]

वस्तुतः 'काव्यरत्नाकर' नायिकाभेद और अलंकार विषयक ग्रन्थ है। जौनपुर या पूर्वांचल के ग्रामीण परिवेश में रहनेवाली ग्राम्यवधूटी के हाव भाव एवं अकुण्ठ सौन्दर्य का एक सुन्दर चित्र 'काव्यरत्नाकर' से उद्धृत है-

गेह काज करति छिनकि ठौरि हेरै द्वार,
छिनक उठाय घट जाती जल लैन को।

---

10. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : काव्यरत्नाकर : उद्धृत ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह-सरोज : सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण-1970 ई., पृ. 516, छन्द संख्या 1474
11. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : तदेव, पृ. 516, छन्द संख्या 1473

चकबक ताकती इतै उतै विलोकि काहू,
मुरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को।
मैन मदमाती अठिलाती छाती ऊँची करि,
खोलती छिपाती चली जाती देती सैन को।
लेजुरी गिराती फेरि फेरि फिरि आती लेन,
पथ मैं फिराती ज्यों बढ़ाती जाती चैन को।।[12]

रायबहादुर राजा रणधीर सिंह के तृतीय ग्रन्थ 'सालिहोत्र' की भी एक हस्तलिखित प्रति (1920/161) नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संग्रहालय में सुरक्षित है। 'सालिहोत्र' की रचना विक्रमाब्द 1912 (1855 ई.) में हुई। इसमें घोड़ों की पहचान, उनके गुण-दोष, रोग और औषधियों का वर्णन है। जिस तरह वर्तमान समय के धनकुबेर तरह तरह के अत्याधुनिक वाहनों के न केवल शौकीन होते हैं, अपितु उनके गुण-दोष से भी परिचित होते हैं; उसी तरह राजतन्त्र में काव्य-रचना करनेवाले अधिकांशतः कवि-नरेश भी शालिहोत्र-प्रकरण पर पुस्तक अवश्य लिखते रहे हैं। रायबहादुर राजा रणधीर सिंह उत्तम अश्व का लक्षण बताते हुए लिखते हैं-

तालू रसना अधर अरुन विराजत हैं,
उज्जल अरुन स्याम इक रंग अंग है।
लोचन विसाल लम्बी ग्रीव मुख मंजुल है,
कच घुघुरारे बड़े स्रुति सुठि तंग है।
सूच्छम तुचा है, चौड़े उर, पातरे चरन,
पूँछ लघु, गति लोल, लागी वासु संग है।
विरले न दन्त, सिर ऊँचे, बंक देखियत,
लच्छन ये जामे सोई उत्तम तुरंग है।।[13]

---

12. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : काव्यरत्नाकर : उद्धृत पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी : प्रकाशक-हिन्दी-मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण-1919 ई., भाग 1, पृ. 505
13. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : सालिहोत्र : उद्धृत पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी : प्रकाशक-हिन्दी-मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण-1919 ई., भाग 1, पृ. 506

राजा रणधीर सिंह ने रुग्ण अश्व की पहचान और उसके निदान का वर्णन करते हुए आगे लिखा है–

जौ घोड़े को देखिये, फूल्यो उदर सिवाय।
पटकि पटकि लोटै धरनि, ताको जतन बताय।।
बैठे बैठे घोड़ तनि आवै। हर्रै राई लोन खिलावै।।
यहि तें जौ कुरकुरी न छूटै। तौ दूसर औषधि लै कूटै।।
हैंसि मूल को तुचा मँगावै। पातर करि कै ताहि पिलावै।।[14]

राजा रणधीर सिंह की चतुर्थ पुस्तक 'रागमाला' का प्रकाशन विक्रमाब्द 1946 (1889 ई.) में हुआ था। इसमें राजा रणधीर सिंह के रचे हुए विविध राग–रागिनियों में निबद्ध भजन और गीत संगृहीत हैं। यहाँ उदाहरणार्थ एक भजन प्रस्तुत है–

आली री अनंग रंग जनु धारे
बनमाली ठाढ़ो हैं निकुंज मध्य प्यारी री।
गल सोहै मोती माल, केसर को तिलक भाल
मोर पंख सीस मानो चन्द्र की पत्यारी री।
पीत बसन लसित अंग सरसित सुखमा सुढंग
जलधर ज्यों लीन्यों विद्युत अलोल संग
बंसी रवित मंजु अधर सुरस धारि 'रनधीर'
लेतो है अनन्त तान प्यारी री।।[15]

---

14. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : सालिहोत्र : उद्धृत पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता–कौमुदी : प्रकाशक–हिन्दी–मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण–1919 ई., भाग 1, पृ. 506
15. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : रागमाला : उद्धृत पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता–कौमुदी : प्रकाशक–हिन्दी–मन्दिर प्रयाग : प्रथम संस्करण–1919 ई., भाग 1, पृ. 506

राजा रणधीर सिंह का अन्तिम ग्रन्थ 'भूषणकौमुदी' है, जिसका उल्लेख ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने भी किया है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति (1923/352 ए) नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में सुरक्षित है। वस्तुतः यह जोधपुर के आचार्यकवि महाराज जसवन्त सिंह के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाषाभूषण' की टीका है। इसकी रचना शुक्रवार, माघ शुक्ल त्रयोदशी, विक्रमाब्द 1917 (1860 ई.) को पूर्ण हुई थी। ग्रन्थारम्भ में ही इस तथ्य का उल्लेख हुआ है–

'भाषाभूषन' ग्रन्थ को, किय जसवन्त नरेस।
टीका 'भूषनकौमुदी', रचि रनधीर सुवेस।।
संवत मुनि ससि निधि धरनि, माघ त्रिदस सित चार।
सुभ मुहूर्त कविवार लहि, भयो ग्रन्थ अवतार।।
जन प्रन प्रतिपाली विसद, भव घाली अवगाह।
ऐसी काली को सुजस, आली बरनै काह।।[16]

इसी क्रम में 'भूषणकौमुदी' से एक घनाक्षरी छन्द उद्धृत है–

मंजुल सुरंगवर सोभित अचिन्त रेख,
फल मकरन्द जान मोदित करन हैं।
प्रमित विराग ज्ञान केसर अव्यक्त देस,
विरद असेस जस पांसु पसरन हैं।
सेवित नृदेव मुनि मधुप समाधि ही के,
'रनधीर' ख्यात द्रुत इच्छित भरन हैं।
ईस हृदि मानस प्रकासित सदाई लसैं,
अमल सरोज वर स्यामा के चरन हैं।।[17]

---

16. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : भूषणकौमुदी : उद्धृत ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह-सरोज : सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण-1970 ई., पृ. 515, छन्द संख्या 1469-1471

17. रायबहादुर राजा रणधीर सिंह : भूषणकौमुदी : उद्धृत ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिवसिंह-सरोज : सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण-1970 ई., पृ.515-516, छन्द संख्या 1472

यद्यपि राजा रणधीर सिंह का सम्पूर्ण वाङ्मय उपलब्ध नहीं है, तथापि जितना कुछ भी उपलब्ध है, उससे उनकी सारस्वत मनीषा का परिज्ञान भलीभाँति हो जाता है। राजा रणधीर सिंह के वंशज राजा हरपाल सिंह और राजर्षि श्रीपाल सिंह ने यावज्जीवन सिंगरामऊ की साहित्यिक परम्परा को बनाये रखा। सिंगरामऊ का सांस्कृतिक सन्दर्भ राजा संग्राम सिंह, राजा रणधीर सिंह, राजा हरपाल सिंह एवं राजर्षि श्रीपाल सिंह के वृहत्तर कृतित्व का संस्पर्श करके ही पूरा होता है। बहुत अच्छा होता यदि राजा रणधीर सिंह के वर्तमान उत्तराधिकारी उनका वाङ्मय-मधुपर्क साहित्य-जगत् को पुनः भेंट करते।

❑❑

महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में, जब कवियों की दृष्टि श्रृंगार-सागर का गोता लगाते हुए नखसिख और नायिकाभेद के चमत्कारपूर्ण वर्णन में उलझी हुई थी, उस समय भक्ति-सागर से उद्‌भूत रत्न-कणों को लेकर साहित्य-जगत् में प्रविष्ट होनेवाले कविशिरोमणि महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव का स्थान सर्वोपरि है। रुक्मिणी-परिणय, रामस्वयंवर, आनन्दाम्बुनिधि, रामरसिकावली जैसे ख्यातनाम ग्रन्थों के स्रष्टा महाराजाधिराज रघुराज सिंह, जहाँ एक महान् प्रजावत्सल शासक थे, वहीं एक भक्तकवि, महान् दानवीर, उदारचेता आश्रयदाता भी थे।

बान्धवेश रघुराज सिंह के आविर्भावकाल के सम्बन्ध में प्रायः सभी इतिहासकारों में मतैक्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – 'इनका जन्म सम्वत् 1880 में और मृत्यु सम्वत् 1936 में हुई।'[1] पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने भी लिखा है – 'इनका जन्म सम्वत् 1880 में हुआ।'[2] डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह 'रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय' में लिखते हैं – 'इनका जन्म, कार्तिक कृष्ण, 4 गुरुवार सं. 1880 (1823 ई.) में रीवा राजभवन में हुआ।'[3] इसके विपरीत डॉ. भगीरथ मिश्र जी लिखते हैं – 'इनका जन्म सन् 1827 ई. में हुआ था।'[4]

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. 578
2. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, पहला भाग, पृ. 514
3. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 469-70
4. डॉ. भगीरथ मिश्र : हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृ. 60

रीवा राज्य के समस्त इतिहासकारों ने बान्धवेश रघुराज सिंह जू देव का जन्म कार्तिक कृष्ण, 4 गुरुवार सं. 1880 (1823 ई.) ही लिखा है। इससे स्पष्ट है कि डॉ. भगीरथ मिश्र के द्वारा निर्दिष्ट तिथि अशुद्ध है। उस समय तक युवराज रघुराज सिंह 4 वर्ष के हो चुके थे।

बान्धवेश रघुराज सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत के योग्य विद्वानों द्वारा हुई। तदुपरान्त इन्होंने फारसी भाषा का गहन अध्ययन किया। 'इसके साथ ही इन्हें अंग्रेजी पढ़ाने के लिए महाराज विश्वनाथ सिंह के अनुरोध पर लार्ड विलियम वेंटिंग ने कलकत्ता से नवकृष्ण भट्टाचार्य नामक एक बंगाली सज्जन को रीवा भेजा।'[5] इस सन्दर्भ में खान बहादुर मौलमी रहमान अली लिखते हैं– *'लार्ड विलियम बेंटिंग साहब बहादुर गवर्नर जनरल ने हस्ब दरख्वास्त महाराजा साहब वासते तालीम बाबू रघुराज सिंह के पण्डित नौकृष्ण भट्टाचार्य को भेजा।'*[6] इनके शिक्षा–गुरु रामानुजदास और दीक्षागुरु मुकुन्दाचार्य थे। इन्होंने 10 वर्ष की अवस्था में कार्तिक शुक्ल, 11, सं. 1890 को दीक्षा ली थी।[7] इसका उल्लेख महाराज रघुराज सिंह ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामस्वयंवर' में भी किया है। 'रघुराज सिंह ने हिन्दी भाषा का गहराई से अध्ययन किया। उनकी संगीत, तर्कशास्त्र, वेदान्त और राजनीति की शिक्षा भी उच्चकोटि की हुई।'[8]

भक्तप्रवर महाराज रघुराज सिंह के विवाह के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। रीवा राज्य के मान्य इतिहासकारों का कहना है कि इनके आठ विवाह हुए और साहित्येतिहासकारों का कहना है कि इन्होंने बारह विवाह किये।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है – 'इनके 12 विवाह हुए थे।'[9] त्रिपाठी जी के ही कथन को दोहराते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र ने लिखा है – 'इनके

---

5. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 470
6. मौलवी रहमान अली : तवारीख–ए–बघेलखण्ड
7. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 470
8. प्रो० राधेशरण : विन्ध्य क्षेत्र का इतिहास (वृहत्तर बघेलखण्ड), पृ. 388
9. पण्डित रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी, पहला भाग, पृ. 514

महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव

12 विवाह हुए थे।'[10] डॉ. रामफेर त्रिपाठी भी उक्त सूचना को सही मानते हैं – 'रघुराज सिंह ने बारह विवाह किये।'[11]

साहित्येतिहासकारों ने मात्र 12 विवाह की सूचना दी है। उन द्वादश महारानियों के सम्बन्ध में उनके पास कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। खान बहादुर मौलवी रहमान अली महाराजाधिराज रघुराज सिंह के समकालीन थे। उन्होंने लिखा है कि महाराज रघुराज सिंह ने आठ विवाह किये थे। इस सन्दर्भ में दीवान जीतन सिंह लिखते हैं – 'एक विजयपुर के गहरवार राजा की पुत्री से, दूसरा तिलाई के गहरवार बाबू साहब की पुत्री से, तीसरा बिसेन वंशी राजा साहब भदरी की कन्या से, चौथा बिसेन वंशी राजा साहब घारुपुर की कन्या से, पाँचवाँ उदयपुर के महाराणा साहब की कन्या सौभाग्य कुँवरि से, छठवाँ सिलपरा के चन्देल ठाकुर विजयबहादुर सिंह साहब की कन्या शिवदान कुँवरि से, सातवाँ पच्छाह देश की चावड़ी रानी से तथा आठवाँ नागौद राज्यान्तर्गत पतोरो के परिहार ठाकुर गिरिधरबख्श सिंह की कन्या से।'[12]

महाराजाधिराज रघुराज सिंह की प्रथम पुत्री राजकुमारी विष्णुप्रसाद कुँवरि (बाघेली कुँवरि) जोधपुर के महाराज यशवन्त सिंह के अनुज राजकुमार किशोर सिंह जी की अर्द्धांगिनी थीं और अपने प्रपितामह, पितामह एवं पिता की भाँति काव्य–कला निष्णात थीं। इनके द्वारा प्रणीत तीन ग्रन्थ 1. अवध विलास, 2. कृष्ण विलास, 3. राधारास विलास उपलब्ध हैं। दूसरी पुत्री का विवाह बूँदी नरेश के साथ हुआ, जो विवाह के एक वर्ष बाद ही दिवंगता हो गयीं। बान्धवेश रघुराज सिंह की पाँचवीं महारानी शिवदान कुँवरि के गर्भ से श्रावण शुक्ल 3, सम्वत् 1932 (1876 ई.) को सतना जिले के कृपालपुर गाँव में युवराज वेंकटरमण सिंह जू देव का जन्म हुआ था। महारानी शिवदान कुँवरि एक श्रेष्ठ कवयित्री थीं, उन्होंने 'सियास्वयंवर' नामक प्रबन्ध काव्य तथा 'नर्मदा महात्म्य' नामक नदी विषयक काव्य की रचना की थी।

---

10. डॉ. भगीरथ मिश्र : हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृ. 60
11. डॉ. रामफेर त्रिपाठी : हिन्दी साहित्य कोश (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा), भाग–2, पृ. 469
12. दीवान जीतन सिंह : रीवा–राज्य–दर्पण, से सन्दर्भित

साहित्येतिहासकारों और रीवाराज्येतिहासकारों के द्वारा दी गयी सूचनाओं में रीवाराज्येतिहासकारों की सूचनाओं को प्राथमिकता देते हुए निर्णय लेना पड़ता है कि बान्धवेश रघुराजसिंह ने आठ विवाह किया था, जिसका उल्लेख रीवा राज्य दर्पणकार दीवान जीतन सिंह ने किया है।

महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव के संस्कृत काव्य

बान्धवेश महाराज रघुराज सिंह द्वारा संस्कृत में रचित मात्र 6 ग्रन्थ उपलब्ध हैं। वे हैं 1. सुधर्माविलास, 2. जगदीशशतकम्, 3. रघुराज-मङ्गल चन्द्रावली 4. शम्भुशतक, 5. नर्मदाष्टक, 6. लोकनाथाष्टक।

रघुराज सिंह ने रस-सिद्धान्तों पर संस्कृत में राजरञ्जन नामक ग्रन्थ लिखा अवश्य है[13] किन्तु यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। यदि यह ग्रन्थ उपलब्ध होता तो निश्चय ही महाराज रघुराज सिंह के काव्यशास्त्र के क्षेत्र में योगदान का मूल्यांकन किया जा सकता।

उपलब्ध स्तुतिपरक संस्कृत काव्यों का परिचय निम्नलिखित है –

(1) सुधर्माविलास

इस ग्रन्थ की प्रकाशित प्रतियाँ सरस्वती कोष-भाण्डार रीवा में उपलब्ध हैं। एक प्रति रामभवन (सतना) में भी है।[14] ये सभी लिथो-मुद्रण की प्रतियाँ हैं। अन्त में **'माघ सुदि 8 का संवत् 1924 के सहर राज रीवा'** मुद्रित है। इससे प्रतीत होता है कि इसका प्रकाशन रीवा से 1867 ई. में किया गया होगा। यह भी सम्भव है कि इसी वर्ष पाण्डुलिपि तैयार की गयी हो, जो बाद में प्रकाश में आयी हो। ग्रन्थ की रचना स्पष्टतः बान्धवगढ़ में महाराजश्री रघुराज सिंह ने अगहन शुक्ल 4, संवत् 1913 (1856 ई.) में की थी –

---

13. 'रच्यो राजरंजन बहुरि, सब रस मतन प्रकास' – रामस्वयंवर, बम्बई 1980 वि०) पृ. 4 तथा 'रुचिर राजरंजन सुरवानी' – वही, पृ. 972
14. बड़ौदा में भी सुधर्माविलास की प्रति है। द्रष्टव्य – राघवन नौचियार : ऐन अल्फाबेटिकल लिस्ट ऑफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द ओरियेण्टल इंस्टीट्यूट ऑफ बड़ौदा : भाग-2 (1950 ई.) पृ. 1052 ; ग्रन्थांक – 853,130-40

'गुण-ब्रह्म-खण्डेन्दु-वर्षस्य राधेऽवलक्षान्यपक्षे चतुर्थ्यां कृतोऽयम्।
सुधर्माविलासः स्थितौ बान्धवाद्रौ महाभूभुजा विश्वनाथात्मजेन।।'

अट्ठासी पृष्ठों में मुद्रित सुधर्माविलास में 17 उल्लास और 850 श्लोक हैं। प्रथम उल्लास में 97 श्लोकों में भगवान् श्रीकृष्ण की वैकुण्ठ के अन्तर्गत अवस्थित द्वारकानगरी और सुधर्मा नामक सभा का विवरण है। **'द्वारका सा सुधर्मा च वैकुण्ठे तिष्ठति सदा।'** तथा –

'सुधर्मायां विराजन्तं यदुभिः परिवारितम्।
हेम सिंहासनासीनं बलभद्र-समन्वितम्।।'

द्वारका में समस्त यदुवंशी, अप्सराएँ, गन्धर्व, सूत, वन्दीजन प्रभृति भी निवास करते हैं।

द्वितीय उल्लास में 91 श्लोकों में भूमि से वैकुण्ठ पहुँचने का मार्ग निर्देशित है –

'परिच्छेद् गमनं तस्यां यदीच्छेद हरिदर्शनम्।
तदैतादृश-मार्गेण कर्तव्या भावना सदा।।'

एकाग्र-चिन्तन आदि साधनाओं द्वारा शक्ति प्राप्त कर साधक उत्क्रमण कर सकता है। मार्ग में मेघमण्डल, रविमण्डल, अल्पभूमण्डल, विपुलभानुमण्डल, चन्द्रमण्डल, भुवर्लोक, स्वर्ग, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक, ध्रुवलोक, लोकालोक, महान्धकार, पञ्चभूत-मण्डल, सौवर्णी धरणी, समुद्र, सुधा-सरोवर तक पहुँचने पर दिव्य रूप की प्राप्ति होगी। फिर वैकुण्ठ के अन्तर्गत भूमा नारायण का वैकुण्ठ, रमा-वैकुण्ठ, श्रीमन्नारायण का वैकुण्ठ और विरजा नदी से होकर कृष्ण के वैकुण्ठ तक पहुँचा जा सकता है। मार्ग में पड़नेवाले उपर्युक्त स्थानों के लक्षण-रूप भी बतलाये गये हैं।[15]

तृतीयोल्लास में 85 श्लोक हैं, जिसमें वैकुण्ठ के प्रथमावरण और भक्तों का वर्णन है। ये भक्त सालोक्य-मुक्त, साष्ट्र्य-मुक्त, शरणागत, कैंकर्यकारी आदि कोटियों में परिगणित हैं।

चतुर्थ उल्लास में 101 श्लोक हैं, जिसमें साकेत और गोलोक का वर्णन

---

15. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य, पृ. 237

किया गया है। पञ्चम उल्लास में 27 श्लोकों में वैकुण्ठ का चक्रव्यूह और षष्ठ उल्लास में 46 श्लोकों में विशेष सभा वर्णित है। यहाँ तक लगभग आधा ग्रन्थ विवरणात्मक स्वरूप में हैं और वह सम्प्रदाय विशेष की धारणाओं का पद्यबद्ध निदर्शन-मात्र है।

सातवें उल्लास में भक्त द्वारा भगवान् की प्रणति 49 श्लोकों में वर्णित है। आठवें में दशावतार-स्तुति के रूप में 12 पद हैं। इनपर गीतगोविन्द का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। यहाँ से कवि की भावधारा में नूतन मोड़ आता है। और आगे भी कवि गीतगोविन्द की ही अनुकृति में स्तुति-गीत प्रस्तुत करता है। नौवें उल्लास में रामावतार परक 11 पद हैं। दशम उल्लास में श्रीमद्भागवत के दशम-स्कन्ध पर आधृत 108 पदों में कृष्ण-स्तुति है। ग्यारहवें उल्लास में कृष्ण और राम दोनों पर 28 श्लोक हैं। भगवान् के दयालुत्व आदि गुणों का गान बारहवें उल्लास में 85 श्लोकों में किया गया है। 13वें उल्लास में बलभद्र-स्तुति 85 श्लोकों में वर्णित है। चौदहवें उल्लास में 23 श्लोकों में प्रद्युम्न और पन्द्रहवें उल्लास में 17 श्लोकों में अनिरुद्ध की स्तुतियाँ हैं। गुरु मुकुन्दाचार्य की वन्दना सोलहवें उल्लास में 9 श्लोकों में है। अन्तिम सत्रहवें उल्लास में साधक के वैकुण्ठ से निवर्तन का वर्णन है।

डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री का मन्तव्य सुधर्माविलास के सन्दर्भ में अवलोकनीय है। यथा – सम्पूर्ण ग्रन्थ सम्प्रदाय के पोषण और प्रचार को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। यह मूलतः दर्शनग्रन्थ है। गीतगोविन्द की अनुकृति में जो स्तुतियाँ और पद लिखे गये हैं उनमें मौलिकता का अभाव है। अनुकृति के कारण स्वाभाविक भावोद्रेक नहीं लक्षित होता। तथापि इन स्तुतियों और पदों को काव्यात्मक स्वरूप देने का प्रयत्न है, जिसके कारण ग्रन्थ काव्य की परिधि में प्रविष्ट हो जाता है।[16]

(2) जगदीशशतकम्

लिथो-मुद्रण के रूप में ही उपलब्ध द्वितीय ग्रन्थ 'जगदीशशतकम्' है, जिसके अन्त में निम्नांकित पंक्तियाँ मुद्रित हैं –

---

16. तदेव, पृ. 237-38

'रामेन्दुखण्ड-विधुभिर्म्मितेऽब्दे तैष उत्तमे।
शनावमायां शतकं जगदीशस्य निर्मितम्।।110।।

इति सिद्धिश्री - बान्धवेश-महाराजाधिराज श्री महाराजा- श्री राजाबहादुर श्रीकृष्णचन्द्र- कृपात्राधिकारि - रघुराज सिंह जू देव - विरचितं जगदीशशतकं समाप्तम्।।'

अर्थात् यह ग्रन्थ पौष अमावस्या, शनिवार, संवत् 1914 (1857 ई.) को पूर्ण हुआ। रघुराज सिंह के ग्रन्थों में मात्र यही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसकी टीका हुई है। इसके टीकाकार रंगाचार्य वाधूल हैं। इस ग्रन्थ का प्रथम लिथो मुद्रण संवत् 1922 (1865 ई.) में (मूलमात्र, पृ. 18: सं. को०भा० बस्ता 141: बनारस लाइट छापाखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित किया) और द्वितीय मुद्रण सं. 1931 (1874 ई.) में रीवा में ही हुआ। टीका सम्पृक्त ग्रन्थ 49 पृष्ठों का है। टीका के अन्त में टीकाकार रंगाचार्य का श्लोक है –

'श्रीबान्धवेशरघुराजविनिर्मितस्य,
नीलाद्रिनाथ शतकस्य महार्थपूर्त्तेः।
वाधूलसत्कुलभवो विरचय्य रङ्गाचार्य्यो,
जगत्पतिपदेऽर्पयति स्म टीकाम्।।'

टीका के आरम्भ में मंगलाचरण के चार श्लोक रंगाचार्य का सुन्दर कवि स्वरूप प्रकट करते हैं। उदाहरणार्थ –

'नवजलधरगात्रं नीरजस्पर्धिनेत्रं,
स्मितविकसितवक्त्रं सिन्धुकन्याकलत्रम्।
शमितनमदमित्रं शेषशय्यातपत्रं,
परमतमपवित्रं पातु मां पार्थमित्रम्।।
यस्याः श्रीरघुराज सिंहनृपतिः प्रज्ञावदग्रेसरो
भाषा संस्कृतभव्यकाव्यरचनाचातुर्यधुर्य्यः कविः।
श्रीमन्नीलगिरिप्रभुर्हि विषयो निस्सीमभूमाशयो,
गम्भीरो विवरीतुमीदृशकृतिं को वा कृतीशक्नुयात्।।'

रंगाचार्य जी के सन्दर्भ में सबसे प्रामाणिक सूचना स्वयं महाराज श्री रघुराज सिंह के द्वारा प्राप्त होती है। वे लिखते हैं कि रंगाचार्य दक्षिण के यादवगिरि के

वासी अनन्ताचार्य के पौत्र और नृ सिंहाचार्य के पुत्र थे। ये न्याय, वेदान्त, व्याकरण प्रभृति शास्त्रों के मर्मज्ञ और घंटावतार परकाल यति के शिष्य थे। ये रीवा आकर 'आनन्दाम्बुनिधि' की रचना (सं. 190711 सन् 185054) में सहायक हुए थे। इस प्रकार कम-से-कम 1850 ई. से 1860 ई. तक ये रीवा में अवश्य रहे। टीका की तिथि का निर्देश नहीं किया गया है। 'विश्वनाथचरित्र' के प्रणेता युगलदास के अनुसार इन्हीं रंगाचार्य ने सं. 1911 (1854 ई.) में रघुराज सिंह का तिलक किया।

टीका के अन्त में बघेली हिन्दी में निम्नांकित गद्य अंकित है –

'इति स्वस्ति श्री सामराज (साम्राज्य) श्री महाराजा श्री कृष्णचन्द्र कृपापात्राधिकार (रि) श्रीमन्नृपति-श्रीरघुराज सिंहजूदेव बहादुर जी.सी.एस. आ ई. कृत जगदीस (श) स (श) तक - सतिलक। विद्यालय छापाखाना में छपा। मुकाम रीमा। लिखा कृपानाथ प्रधान। सोधा वंश गोपाल कवि। छापा बदलू कारीगर। दुती असाढ़ सुदि 12 सनौ का संवत् 1931। समाप्तम् ।। शुभमस्तु।।'

अनुश्रुति यह है कि रघुराज सिंह संवत् 1913 (1856 ई.) में रीवा से जगन्नाथ स्वामी के दर्शनार्थ पुरी-उड़ीसा गये थे, किन्तु वहाँ पट बन्द हो गये। तब इन्होंने जगदीश की स्तुति में एक शतक हिन्दी और दूसरा संस्कृत में रचा। तत्पश्चात् पट खुल गये।

पट बन्द होनेवाली अनुश्रुति में सच्चाई क्या है, इसे तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु रंगाचार्य के टीकानुसार रघुराज सिंह जगदीश-दर्शन के लिए जाते समय ही भाव-विभोर थे और मार्ग में ही उन्होंने दिदृक्षा-प्रेरित होकर ये श्लोक लिखे। यथा –

'अथ खलु श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीरघुराज सिंह नामा ..... श्रीमन्नीलाचलाधिराज सन्दिदृक्षया प्रस्थितो मध्येपथं तद्दर्शनविलम्बमसहमानः कदा कदा द्रक्ष्यामीति तद्दर्शनौत्सुक्यातिरेकाविष्टमनास्तमेवानवरतमनु-सन्दधानो ..... वाचापि तमेव तोष्टूयमानस्तदनुसन्धानजनित-प्रेम-परीवाहरूपां ..... श्रीमज्जगन्नाथशतकाख्यां स्तुतिमरीरचत्।'

हिन्दी के शतक की भी रचना-तिथि यही है। हिन्दी ग्रन्थ का नाम जगन्नाथशतक है। यह आषाढ़ शुक्ल 2 संवत् 1914 (1857 ई.) को खेमराज

श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया। 71 पृष्ठों की प्रकाशित प्रति रामवन में सुरक्षित है। इसका दूसरा संस्करण भी रामवन में है, जो भारतभ्राता प्रेस, रीवा से पौष, 1958 वि० (1902 ई.) में दिनेश कवि द्वारा संशोधित रूप में छपा। इसकी भूमिका रीवा राज्य के तत्कालीन सेनापति लाल बलदेव सिंह ने लिखी है – 'संवत् 1914 में जगदीश के दर्शनार्थ महाराज रघुराज सिंह अपनी कई हजार प्रजा के सहित पुरी के लिए पधारे। यात्रा प्रारम्भ करने के दिन से ही श्रीमान् विश्वपालक के दर्शन-अभिलाषा में निमग्न हो संस्कृतललित छन्दों में जगन्नाथ जी की स्तुति आरम्भ किये और वहाँ पहुँचते पहुँचते जगदीशशतक नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ। पुरी पहुँच जाने पर श्रीमान् ने भाषा-प्रेमियों के चित्त-विनोदार्थ पुनः श्री जगन्नाथ जी की वन्दना ललित भाषा छन्दों में किया और इसका नाम 'जगन्नाथ-शतक' रखा।

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत ग्रन्थ की रचना पहले हुई। यहाँ यात्रा का संवत् 1914 बतलाया गया है, किन्तु जगदीश-शतकम् में रचना का संवत् पौष 1913 वि० है। अतः महाराज की यात्रा पौष 1913 वि० के पूर्व आरम्भ हुई और कई मास तक वे पुरी में रहे। हिन्दी का ग्रन्थ इसी वर्ष (1914 वि०) बम्बई से प्रकाशित हो गया।

जगदीशशतकम् के सन्दर्भ में लाल बलदेव सिंह का ललित छन्दों में लिखा गया कहना पूर्णतः सत्य है। इसके सन्दर्भ में डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री की टिप्पणी नितान्त सत्य प्रतीत होती है – 'धार्मिक गीतियों के क्षेत्र में जगदीशशतक का स्थान ऊँचा रहेगा। इसमें देवतापरक-भक्ति का उद्रेक तीव्र है। इसमें भक्त के अन्तकरणः की ऐसी तड़प है, जो भक्तिरस को एक स्वतन्त्र रस बना देती है, जो पाठक को भावविह्वल बनाए बिना नहीं छोड़ती। तुलना के लिए कह सकते हैं कि मीरा के 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' में जो पीड़ा है, उसी पीड़ा की झलक रघुराज सिंह के इन श्लोकों में प्राप्त है। इनमें से अनेक प्रारम्भिक श्लोक दर्शन-सिद्धान्तों से पूरित भी हैं, जिनकी यथार्थ एवं विवेचनात्मक टीका विद्वान् रंगाचार्य ने की है। भावपूर्ण शब्द-योजना पर जैसा अधिकार रघुराज सिंह ने प्रदर्शित किया है, रंगाचार्य की भाष्यात्मक शक्ति उससे अंशमात्र घटकर नहीं है। यह सहज ही कहा जा सकता है कि लेखनी में उनकी बहुश्रुत अभिव्यञ्जनाशक्ति संवेग प्रवाहित हुई है। जगदीशशतक बघेलखण्ड के उत्कृष्टतम संस्कृत काव्यों में से एक तथा रघुराज सिंह की सर्वोत्तम कृति है। यह एक ही

कृति इस कवि को संस्कृत के क्षेत्र में अधिकार प्रदान कर देती है।[17]

(3) रघुराजमङ्गलचन्द्रावली

रीवा के सरस्वती-कोष-भाण्डार में 175 पत्रा की यह पाण्डुलिपि सुरक्षित और सम्पूर्ण है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है –

'इति श्रीमासार्द्धवासरविरचितायांविलसत्कृष्णरक्षावल्यां श्रीरघुराज मङ्गलचन्द्रावल्यां परो वाणीविलासस्समाप्तः।।'[18]

इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री जी लिखते हैं – 'इसका लक्ष्य है स्तुति द्वारा कृष्ण से रक्षा और मङ्गल की याचना। यह ग्रन्थ मासार्द्ध अर्थात् 15 दिनों के प्रयत्न में पूर्ण हुआ। इस बात से रघुराज सिंह की काव्यनिष्ठा और श्लोक-रचना की शक्ति प्रकट होती है। ग्रन्थ के दो भाग किये गये हैं, जिनमें से 48 अध्याय तक 'पूर्व्ववाणीविलास' और शेष 'परवाणीविलास' है। कुल 86 अध्याय है। यह कृति 155 वें पत्रा तक श्लोकबद्ध रूप में समाप्त होती है। 15657 पत्रा फलस्तुति के हैं तथा 158 से 175 वें पत्रा तक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। प्रारम्भ के 24 पत्रा तक श्लोक-संख्या 73 है। तत्पश्चात् श्लोक-गणना नहीं की गयी है। रचनाकाल का निर्देश कहीं नहीं है और न पाण्डुलिपि का लिपिकाल ही है।

ग्रन्थ के अध्याय-विभाजन का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय हैं। तदनुसार श्लोक कृष्णचरित्र पर आधारित हैं। इन श्लोकों में कृष्ण-कथा का संकेत मात्र होता है, कथावर्णन लक्ष्य नहीं है। प्रत्येक अध्याय में भागवत के उसी अध्याय में वर्णित कृष्णचरित्र पर आधारित कृष्ण के स्वरूप का ध्यान किया गया है और उस भगवत्स्वरूप से कवि ने अपने लिए रक्षा या आशीष चाही है। अतः अध्यायों की समाप्ति पर कथा के अनुसार पुष्पिकाएँ रखी गयी हैं और इनका नाम आशीष ही है। अन्तिम उदाहरण इस प्रकार है – **'इति श्रीभागवतोत्तरार्द्धे-दशमस्कन्धे द्विजकुमाराहरणाभिधानक - नवाशीतितमाध्याय-प्रतिपाद्यमानाष्टभुज-श्रीमन्नारायण-प्रतिपन्नाशिषः।'**

---

17. तदेव, पृ. 240-41
18. क्रमांक 144, 146

ये अध्याय अत्यन्त संक्षिप्त हैं। प्रत्येक श्लोक में 'रघुराज' (अथवा राजा रघुराज) की रक्षा करें' इस आशय की शब्दावली है। उदाहरण के लिए आरम्भ के श्लोक इस प्रकार हैं –

'रक्षतु सा राधा जगदनुराधा राधारमणसुराधा।
दूरीकृतबाधा दुरितदुराधा नृपरघुराजमगाधा।।5।।

वृन्दावनचारी रासविहारी रक्षतु जगदवतारी।
राधापतिभाजं नृपरघुराजं व्रजकौतूहल-कारी।।6।।

देव्यागमितरौहिणीतनयो बलदेवो बलशाली।
पातु राजरघुराजमुदारं शरणागतजनपाली।।7।।'

ग्रन्थ के अन्त में गद्य में व्रजराज-यदुराज शब्द की व्याख्या की गयी है। अतः समग्र रूप से यह ग्रन्थ भी साम्प्रदायिक लक्ष्य रखकर लिखा गया है।[19]

(4) शम्भुशतकम्

सरस्वती-कोष-भाण्डार रीवा तथा रघुराज-स्मारक रामवन (सतना) में शम्भुशतक की लिथो-मुद्रित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। यह मुद्रण 'बनारस लाइट छापेखाने' में 1923 ई. में हुआ। ग्रन्थ की रचना मंगलवार, आश्विन कृष्ण द्वादशी संवत् 1918 (1869 ई.) को गोविन्दगढ़ में पूर्ण हुई –

'सिद्धि-ब्रह्म-निधीन्द्वब्द इषे कृष्णे कुजे तिथौ।
द्वादश्यां शम्भुशतकं गोविन्दनगरे कृतम्।।'

महाराज रघुराज सिंह इस वर्ष चरण-रोग से अत्यन्त पीड़ित थे। इसी विकलता के मध्य रोग-निवारणार्थ इन्होंने मृत्युञ्जय शंकर की संस्तुति में यह शतक रचा। यथा –

'दुःखार्णवे शोक-तरङ्ग-सङ्कुले पीडा-ग्रहेऽहं पतितः स्वकर्मणा।
नाऽन्यो गतिर्मेऽद्य ऋते भवन्तं कृपा-कटाक्षेण नयस्व पारम्।।

---

19. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य, पृ. 241-42

वक्रेण नक्रेण यथा हरिर्गजं ग्रस्तं हि चक्रेण तमुज्जहार।
तथैव मां पादरुजा ग्रहीतं त्वमुद्धरस्वाशु शशाङ्क-शेखर।।'[20]

(5) नर्मदाष्टकम्

इस ग्रन्थ की भी मुद्रित प्रतियाँ रीवा और रामवन दोनों स्थानों में सुरक्षित हैं। यह ग्रन्थ सोमवार, पौष शुक्ल द्वितीया, संवत् 1913 (1857 ई.) को निर्मित हुआ –

'रेवाष्टकमिदं दिव्यं रघुराज-विनिर्म्मितम्।
अस्य प्रपठनान्माता नर्मदा मे प्रसीदतु।।
मिते संवत्सरे पौषे गुण-ब्रह्म-निधीन्दुभिः।
सिते सौमे द्वितीयायां निर्म्मितं नर्मदाष्टकम्।।'[21]

ग्रन्थ में कुल 11 श्लोक है, जिनमें से प्रारम्भ के 9 श्लोक वन्दना के हैं। नर्मदा मेकल कन्या हैं, उनके तटों पर स्थित वृक्षों, वन्य जातियों और प्रपातों के उल्लेख किये गये हैं।

(6) लोकनाथाष्टकम्

रामवन में 'रघुराज सिंह कृत लोकनाथाष्टकम्' नाम से एक पाण्डुलिपि प्राप्त है। लिपिकाल का निर्देश नहीं है। यह रचना रघुराज सिंह द्वारा शुक्रवार, ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी, संवत् 1913 (1856 ई.) को पूर्ण की गयी –

'लोकनाथाष्टकमिदं रघुराज-विनिर्म्मितम्।
पठतां शृंण्वतां शश्वल्लोकनाथः प्रसीदतु।।
अग्नि-ब्रह्माङ्क शुभ्रांशु-मितेऽब्दे तपसीष्टदम्।
लोकनाथाष्टकं बाण-तिथौ कृष्णे कृतं कवौ।।'[22]

---

20. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : शम्भुशतकम्, श्लोक संख्या 3638
21. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : नर्मदाष्टकम् : श्लोक संख्या 1011
22. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : लोकनाथाष्टकम् (पाण्डुलिपि) श्लोक संख्या 910

इति सिद्धिश्री-बान्धवेश-महाराजाधिराज-श्रीमहाराजाबहादुर-श्रीकृष्णचन्द्र कृपापात्राधिकारि-श्रीरघुराज सिंहजूदेव - विरचितं लोकनाथाष्टकं समाप्तम्।। शुभमस्तु।।

रघुराज सिंह के उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में यह प्रथम रचना है। इसमें प्रारम्भ के आठ श्लोकों में भगवान् शिव की वन्दना है।

उपर्युक्त छहों ग्रन्थों की रचनातिथियों के सन्दर्भ में डॉ. अग्निहोत्री जी ने लिखा है –

'ग्रन्थों की रचना-तिथियों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि संवत् 1913 का वर्ष रघुराज सिंह को संस्कृत सर्जना की ओर प्रवृत्त करनेवाला विशेष वर्ष था। इस वर्ष उन्होंने ज्येष्ठ में लोकनाथाष्टक मार्गशीर्ष में सुधर्माविलास, पौषकृष्ण में जगदीशशतक और पौष शुक्ल में नर्मदाष्टक की रचना की। नर्मदाष्टक का पौष शुक्ल द्वितीया का रचनाकाल यह द्योतित करता है कि इस तिथि को महाराज ने अमरकण्टक में नर्मदास्नान किया, जैसा युगलेश ने भी लिखा है। जगदीशशतक की समाप्ति इससे ठीक दो दिन पूर्व बतलायी गयी है। अतः प्रतीत होता है कि पौष मास के प्रारम्भिक दिनों में रीवा में जब जगन्नाथ-यात्रा की तैयारी हो रही थी, तभी भाव-मग्न होकर रघुराज सिंह ने जगदीशशतक की रचना प्रारम्भ की। अतः इस शतक का कुछ अंश रीवा में ही लिखा गया और अमरकण्टक पहुँचते पहुँचते ग्रन्थ पूर्ण हो गया। अमरकण्टक से आगे की यात्रा में संस्कृत जगदीशशतक नहीं लिखा गया।[23]

महाराज रघुराज सिंह के संस्कृत काव्यों के अध्ययन अनुशीलन से उनके संस्कृत-ज्ञान और छन्द-रचना की सहज गुणवत्ता का पता चलता है। इनकी रचना-शैली प्रसाद-गुण-पूर्ण है। उसमें क्लिष्ट, दीर्घ एवं कठिन समास-युक्त अथवा अनेकार्थक पदावलियों का बहुत कम प्रयोग हुआ है। भक्तिरस के अनुकूल सात्विकी वृत्ति और वैदर्भी रीति प्रयोग में लायी गयी है। त्वरित रस-परिपाक रघुराज सिंह की विशेषता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की उलझन प्रायः नगण्य है, यद्यपि उनकी बहुश्रुतता के सर्वत्र दर्शन होते हैं।

---

23. डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य, पृ. 243-44

महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव के हिन्दी-काव्य

बान्धवेश रघुराज सिंह का कवित्व मुख्यतः हिन्दी के क्षेत्र में प्रस्फुटित हुआ है। उनके हिन्दी-काव्य-ग्रन्थों का विवरण निम्नांकित है –

(क) प्रबन्ध-काव्य

1. रुक्मिणीपरिणय – यह 21 सर्गों का महाकाव्य है। इसका रचनाकाल सन् 1850 ई. है। इसका प्रथम प्रकाशन प्रधान सेनापति लाल बलदेव सिंह ने भारतभ्राता प्रेस रीवा से सन् 1879 ई. में किया। द्वितीय संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से सन् 1886 ई. में और वही से सन् 1924 ई. में तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ।

'रुक्मिणीपरिणय' में युद्ध-वर्णन तथा तलवार चलाने की विधियों का वर्णन अपना विशिष्ट स्थान रखता है। रुक्मिणीपरिणय की कथा को लेकर हिन्दी के अनेक कवियों ने अपनी वाणी को पवित्र किया है। कृष्ण-भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण की कथा से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों पर तथा समग्र प्रसंगों पर काव्य एवं महाकाव्य लिखने का प्रयास किया है, किन्तु कवि-नरेश रघुराज सिंह के समान रुक्मिणी का सजीव चित्र उपस्थित नहीं कर सके हैं। निश्चय ही रुक्मिणीपरिणय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।[24]

रुक्मिणीपरिणय में किया गया हेमन्तर्तु वर्णन द्रष्टव्य है –

हिमकन सरिस मुक्तगण हारै।
जात न रोइ हिये सुकुमारै।।

सुक्ष्मम बसन बिभूषन संगै।
शीत भीति धरि जात न अंगै।।

होत यदपि तन भारहिं भारी।
तदपि पीन पट भो सुखकारी।।

मृगमद मलि अँगराग लगावै।
अगर धूम तिय भवनन छावै।।

* * * * * *

24. पण्डित रामसागर शास्त्री : विन्ध्य-दर्शन,भाग-1, पृ. 312

पको पीत कानन लसै, कनक कान्ति कमनीय।
जिमि बाला विवरण भई, विरह विदेशी पीय।।

मानवती अरु खण्डिता, प्रिय अपराध विसारि।
अंक कियो निज कन्त को, ऋतु हेमन्त निहारि।।
मृदु दिनकर हिम के सहित, प्रबल सीत दरसाय।
सजल अनिल हिम मान गिरि, तजि पशु गये पराय।।[25]

महाराजाधिराज रघुराज सिंह का सर्वाधिक प्रिय अलंकार यमकानुप्रास है, जिसका एक उदाहरण रुक्मिणी-परिणय से द्रष्टव्य है –

सरसी सरसी सरसी सरसी हरिसी हरिसी हरिसी हरिसी।
सतगोकुलसी सतगोकुलसी सतगोकुलसी सतगोकुलसी।
घनसारदसी घनसारदसी घनसारदसी घनसारदसी।
रघुराजकहैं रघुराजकहैं अलिमोदरसी अलिमोदरसी।।[26]

2. आनन्दाम्बुनिधि – यह श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद है। इसकी रचना में चार वर्ष लगे। ग्रन्थारम्भ 1850 ई. में हुआ और ग्रन्थान्त 1854 ई. में। प्रथम संस्करण प्रधान सेनापति लाल बलदेव सिंह द्वारा भारत-भ्राता प्रेस, रीवा से सन् 1901 ई. में हुआ। ग्रन्थ की रचनावधि के सन्दर्भ में स्वयं रघुराज सिंह ने लिखा है –

संवत् ओनइस सै जु पछावन।
साल सात को परम सुहावन।।
कातिक मास अरम्भहिं कीनो।
आनँद अम्बुधि ग्रन्थ नवीनो।।
रचत बीति गे बरसहिं चारी।
कियो कृपा करि पार मुरारी।।
ओनइस सै ग्यारह को साला।
पूस मास गुरुवार विसाला।।

---

25. तदेव, पृ. 320 पर उद्धृत

26. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : रुक्मिणीपरिणय, अष्टादश सर्ग से।

कृष्णपक्ष दसमी सुखदाई।
धन की जब संक्रांतिहिं आई।।
आनँद अम्बुनिधिहिं सुभ ग्रन्था।
ज्यों सन्तन सन्तत सत पन्था।।
तब यह ग्रन्थ समापन भयऊ।
मम वांछित पूरन ह्वै गयऊ।।[27]

आनन्दाम्बुनिधि एक विशद ग्रन्थ है। इसकी काव्य रचना सराहनीय है और इसमें अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा –

पद-पंकज पंजर में ललना यह तीतुरी नूपुर सोर करै।
मम कानन धार सुधा-सी ढरै नहिं नैनन में कछु मोद ढरै।
बन में बसिकै तरु को त्वच त्यागि कदम्ब प्रभा पट काहे धरै।
येहि हेतु कसी कल किंकिनी तू कटि मेरी कहूँ नहिं टूटि परै।।[28]

यहाँ उल्लेखनीय है कि महाराजाधिराज रघुराज सिंह ने अपने युवराजत्वकाल में श्रीमद्भागवत की हिन्दी (व्रजभाषा) टीका भी विक्रमाब्द 1907 (ई. सन् 1850) में लिखी थी। रीवा में एकादश और द्वादश स्कन्धों की टीकाएँ सुरक्षित हैं। प्रारम्भिक दस स्कन्धों की टीकाएँ नहीं मिलीं। इस टीका का नाम 'व्यंग्यार्थ-चन्द्रिका' है और इसका संशोधन बान्धवेश विश्वनाथ सिंह जू देव द्वारा किया गया है। एकादश स्कन्ध की अन्तिम पुष्पिका द्रष्टव्य है –

'इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सिद्धिश्रीमहाराजाधिराज-जय सिंह देवात्मज-सिद्धिश्रीमहाराजाधिराजविश्वनाथ सिंहजूदेवात्मज-युवराज-रघुराज सिंह जूदेव-कृत-व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिकायां समाख्यायां टीकायां तात-संशोधितायां एकत्रिंशोध्यायः ।।31।। सं.1911के मिती चैत्र सुदी 4 शनौ का।। इदं पुस्तकं यकादशेन लिख्यतं दामोदरेण ।। श्री सीताराम ।। श्री राधाकृष्ण।।'[29]

---

27. डॉ. किशोरीलाल गुप्त : सरोज-सर्वेक्षण में सन्दर्भित
28. संक्षिप्त रामस्वयंवर की भूमिका में उद्धृत, पृ. 10
29. सरस्वती कोष भाण्डार, रीवा (बस्ता - 80।12) : पत्रा-335। डॉ. राजीवलोचन अग्निहोत्री : बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य, पृ. 84, पाद टिप्पणी -1

इससे स्पष्ट है कि 1850 ई. में व्रजभाषानुवाद करने के पश्चात् उसी त्वरा में 1850 ई. से 1854 ई. के मध्य श्रीमद्भागवत का काव्यानुवाद रघुराज सिंह द्वारा किया गया। आनन्दाम्बुनिधि का सन्त समाज में बहुत महत्त्व है।

3. रामरसिकावली (भक्तमालचरित) – इसका प्रणयन 1864 ई. में हुआ। प्रथम संस्करण बम्बई में 1865 ई. में प्रकाशित हुआ। बाद में वहीं से 3 आवृत्तियाँ और हुई। एक अन्य संस्करण 1870 ई. में काशी से मुद्रित हुआ। इसके उत्तर चरित में अग्रदास,[30] नाभादास,[31] रामप्रसाद[32], रामसखे,[33] रघुनाथदास,[34] प्रेमसखी,[35] सूरकिशोर,[36] युगलानन्यशरण,[37] शीलमणि[38] तथा रूपसखी[39] आदि प्रमुख रामभक्तों के चरित वर्णित हैं। कृपानिवास जी का उल्लेख, जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक कल्पित व्यक्ति माना है, इसमें हुआ है।[40] कवि की दृष्टि सन्तों के प्रभाव एवं चमत्कार वर्णन की ओर अधिक रही है। उनकी रचनाओं और साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के विषय में वे प्रायः मौन रहे हैं। महाराज रघुराज सिंह स्वयं एक उच्चकोटि के रामभक्त थे। वे यदि चाहते तो इस धारा का पूरा इतिहास प्रस्तुत कर सकते थे, किन्तु उनका ध्यान इधर नहीं गया। अतः अन्य भक्तों की तरह अपने समकालीन रामभक्तों का भी चलता हुआ वर्णन करके संतुष्ट हो गये। इतना होते हुए भी इस ग्रन्थ में जो

---

30. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : रामरसिकावली (भक्तमाल), पृ.575
31. तदेव, पृ. 564
32. तदेव, पृ. 962
33. तदेव, पृ. 962
34. तदेव, पृ. 965
35. तदेव, पृ. 965
36. तदेव, पृ. 949
37. तदेव, पृ. 950
38. तदेव, पृ. 968
39. तदेव, पृ. 968
40. तदेव, पृ. 968

सूचनाएँ प्राप्त हैं, वे निस्सन्देह प्रमाण कोटि की हैं। इसका कारण यह है कि उन्नीसवीं शती के जिन सन्तों का परिचय रामरसिकावली में दिया गया है, वे अधिकतर रघुराज सिंह के परिचित थे। और जिन पूर्वाचार्यों के चरित इसमें वर्णित हैं, उनके विषय में इन्हीं सन्तों से उन्होंने जानकारी प्राप्त की थी। 'रसिक-प्रकाश -भक्तमाल' से 'रामरसिकावली' के अधिकांश विवरणों का समर्थित होना हमारी उक्त धारणा की पुष्टि करता है। इस ग्रन्थ से यह भी पता चलता है, कि इनके पिता महाराज विश्वनाथ सिंह अष्टयाम-उपासना करते थे और अपने समय के प्रसिद्ध रसिक रामभक्त गिने जाते थे। अस्तु, रसिक साधना के परिशीलन में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।'[41]

'रामरसिकावली' का एक उदाहरण पर्याप्त होगा –

'रूपसखी भे भक्त महाना। दिल्ली तासु रह्यो सुस्थाना।।
दिल्ली केर दीवान के बेटा। काहूँ सों न करैं कहुँ भेंटा।।
दशषट् वर्ष वचन नहिं बोले। बादशाह कह वचन अमोले।।

वचन उचारहु भाँति जेहि, सो तुम कहहु सुजान।
जो न कहहु तौ देहु लिखि, सो हम करब निदान।।

मम बोलन उपाय तुम पूँछे। लिखे देत सुनि परेहु न छूँछे।।
दशकरोरि मुद्रा तुम लावहु। नारायण उत्सव करवावहु।।
बाँचि शाह दश कोटि मँगाई। रूपसखी ढिग दियो धराई।।
तब प्रभु होरी समय विचारी। मौनरीति करि दीन्हीं न्यारीय।।
नृत्यवाद्य अरु गानहु माहीं। जे जे गुणी सुने भुवि माहीं।।
तिन सबको तुरन्त बोलवायो। दशहजार बालकन सिखायो।
वर्ष रोज भर लीला भयऊ। पूरण भये त्यागि तन दयऊ।। [42]

4. मृगयाशतक – इसका अन्य नाम **रघुपति शिकार शतक** है। यह अष्टयाम पद्धति पर प्रणीत किया गया है। इसकी रचना 1868 ई. में हुई और इसका मुद्रण 1889 ई. में बनारस से हुआ।

---

41. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 4
42. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : रामरसिकावली (भक्तमाल), पृ. 968-69

5. रामस्वयंवर – यह 23 प्रबन्धों का महाकाव्य है। इसका प्रणयन दो वर्षों (सन् 1875 से 77 ई.) में हुआ। प्रथम बार प्रकाशन सन् 1900 ई. में भारत-भ्राता प्रेस, रीवा से प्रधान सेनापति लाल बलदेव सिंह के सौजन्य से हुआ। द्वितीय और तृतीय संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से क्रमशः 1903 और 1933 ई. में प्राकाशित हुआ। यह एक वृहद् काव्यग्रन्थ है। इसमें अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु अधिकांश चौबोला छन्द है। ग्रन्थान्त में महाराज रघुराज सिंह ने रामस्वयंवर के प्रणयन का कारण लिखा है, कि एक बार वे रामनगर की रामलीला देखने गये और काशिराज के अतिथि थे। रामलीला देखने के बाद काशिराज ईश्वरीप्रसाद सिंह ने निवेदन किया कि वे एक ऐसे ग्रन्थ का प्रणयन करें जिसमें लीला विस्तार हो –

'तहाँ रामलीला को दरसन। लाग्यो करन रामरस सरसन।।
काशिराज तब मोंहि बोलाई। भाष्यो सकल हेतु समुझाई।।
तुलसी कृत मँह अति संक्षेपा। कँह लगि करी अधिक परलेपा।।
ताते रचहु ग्रन्थ एक ऐसो। तुलसी कृत रामायण जैसो।।'[43]

रामस्वयंवर के 22 सर्गों में केवल बालकाण्ड की कथा वर्णित है। तेइसवें सर्ग में राजतिलक की तैयारी का बड़े उत्साह से वर्णन किया गया है। इसका कारण स्वयं कवि ने उल्लिखित किया है –

'जो माधुर्य भाव तह राखहु, तौ दुःख चरित न गावो।
ऐश्वर्यहिं माधुर्य भेद, यह दोउ एक संग न भावो।।
मैं असमर्थ नाथ दुःख गाथा, गावन में सब भाँती।
विरह बिपत्ति व्यथा वर्णन में, रसना रहि रहि जाती।।
ताते रामस्वयंवर गाथा, रचत आस उर आई।
रघुपति बालचरित विवाह, उछाह देहुँ मैं गाई।।
बालकाण्ड को विषद चरित, संक्षेप कथा षट काण्डा।'[44]

रामस्वयंवर में महाराज जनक द्वारा महाराजाधिराज दशरथ को लिखा

---

43. पण्डित रामसागर शास्त्री : विन्ध्य-दर्शन, भाग-1, पृ. 317 पर उद्धृत
44. तदेव, पृ. 317 पर उद्धृत

गया पत्र संस्कृत के लम्बे समासों का स्मरण दिलानेवाला ललित पदावली से युक्त गद्य का श्रेष्ठ उदाहरण है –

'श्री श्री श्री श्री श्री सकलभूमण्डलाखण्डल, विधिकमण्डलनिस्सरितसरितवत्, दिग्गजगण्डमण्डलकुण्डलाकार सुयसधारक, धर्मधुरन्धर, धराधर्मप्रचारक, रणवीरवीरशिरोमणिहंसावतंश, रघुकुलकमलदिवामणिप्रतापतापतापित, दिगन्तदुरितदुअन ... महाराजाधिराज राजराजित अवधअवधेन्द्रदशरथजू चरणसमीपमहीमण्डल-मौलिमणिमण्डितचरण, ज्ञानविज्ञानविज्ञानानन्दसन्दोह भरन वेदवेदान्तोच्चरन निमिकुलकुमुदकलानिधि महाराजाधिराज नरेन्द्रशिरोमणि सीरध्वजकुलकमल कलित सानन्दन अभिनन्दन विलसै।'[45]

'रामस्वयंवर के रचयिता रघुराज सिंह (रीवा नरेश) और 'सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड' के निर्माता रुद्रप्रताप सिंह (माण्डा नरेश) प्रसंग योजना तथा सम्बन्ध निर्वाह में बहुत अंश तक असफल रहे हैं। इसका मुख्य कारण रामभक्ति की श्रृंगारी प्रवृत्तियों को लेकर इस काल के कवियों का प्रबन्ध रचना के क्षेत्र में उतर पड़ना था। इसलिए वर्णनात्मकता,विस्तारप्रियता, वस्तुगणना की प्रवृत्ति और श्रृंगारी प्रसंगों का प्राचुर्य अधिकांश रसिक प्रबन्धों के सामान्य दोष हैं।'[46]

6. सुन्दरशतक – इसका अन्य नाम **'हनुमतशतक'** है। यह एक खण्डकाव्य है। इसका प्रणयन विक्रमाब्द1904 (सन् 1947ई.) में हुआ –

संवत उनइस सै चतुर, आस्विन सुदि सनिवार।
सरद पूर्निमा को बन्यो, सुन्दरशतक उदार।।[47]

सुन्दरशतक की पाण्डुलिपि रामवन, सतना में सुरक्षित है। इसके 42कवित्व रामस्वयंवर में समाहित हैं। सुन्दरशतक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

कोटि कोटि खलन के मुण्डन को फोरि फोरि,
दौरि दौरि खोरि खोरि खलन मचायो है।

---

45. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : रामस्वयंवर, पृ. 442
46. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ. 359
47. ठाकुर शिव सिंह सेंगर : शिव सिंह सरोज पृ. 493

करि - करि कोप कूदि कूदि केशरी किशोर,
कंचन कंगूरन में काल ही सो भायो है।
घरन घरन घुसि घुसि घूमि घूमि घोर,
शोर करि चहु ओर पावक लगायो है।
कोई नहीं थल बच्यो लंक हलकम्प मच्यो,
कहा या विरंचि रच्यो यही रब छायो है।।[48]

जगज्जननी सीताजी के अन्वेषण प्रसंग में लंका जाते समय हनुमान् जी द्वारा समुद्र - लंघन का दृश्य कितना सजीव और सात्विक है –

'भुजनि बढ़ाइ, लामी लूम को उठाइ करि,
कानन चपाई ग्रीव नेसुक नवाइ कै।
पायन को रोप महि कोप ज्यों ही रावण पै,
कूदिवै को वारिनिधि चोप चित्त चाइ कै।
कटि को सकेलि मुख मेलि मुद्रिका को कीश,
झेलि उर आगू कहि राम चित्त लाइ कै।
कीन्हों अट्टहास रघुराजै मोद रासि दीन्हों,
सेवै कीन्हों टापि, बजरंग रंग छाइ कै।।'[49]

(ख) मुक्तक - काव्य

7. रघुराजविलास – यह पदावली शैली में रचा गया मुक्तक काव्य है। प्रथम संस्करण वेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस बम्बई से 1857 ई. में प्रकाशित हुआ। रघुराजविलास की काव्य-कला का निदर्शन करने के लिए दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

(1)

मच्योरि रंगमहल में रंग।
केसरि कीच बीच नर- नारी विछिलित उमँगि उमंग।।
एक ओर रघवंशी राजे साजे अभरण अंग।
एक ओर युवतिन को मण्डल लीन्हें वीण मृदंग।।

48. पण्डित रामसागर शास्त्री : विन्ध्य-दर्शन, भाग-1, पृ. 319 पर उद्धृत।
49. तदेव, पृ. 321 पर उद्धृत

गाइ रहै कोउ नाचि रहै कोउ करै खेलि खुल जंग
सरयू भई भारती धारा पाइ गुलाल प्रसंग।।
रह्यो न सुरति सम्हारि सबन को ह्वैगै आँनद दंग।
श्री 'रघुराज' मनोरथ पूरण भये सकल दुख भंग।।[50]

(2)

विलसत रघुवर आलि वसंते।
शीतलमन्दसुगन्धिसमीरित - सरयूतटे दिनंते।।
अमलकपोले कुंजललोले विलसत आभापूरे।
मनसिजकेतुबिम्ब इव मनसिजमुकुरतले न विदूरे।।
पवनवशादतिसूक्ष्मसलिलकणपूरिततनुरतिकामम्।
ज्ञानवसंतागमसरयूरिव जलैः प्रसिंचति रामम्।।
परमविशालरसालकुसुमकृतकुंजे मधुकरगुंजे।
सुखमति 'रघुराजे' श्री रघुराजं सखिसमूहसुखपुंजे।।[51]

8. जगन्नाथशतक – इसकी रचना 1856 ई. में हुई। प्रथम संस्करण 1857 ई. में बम्बई से प्रकाशित हुआ। जगन्नाथशतक की प्रासंगिक चर्चा जगदीशशतकम् के सन्दर्भ में पीछे की जा चुकी है। आगे जगन्नाथशतक के सन्दर्भ में विशेष विवरण दिया जायेगा।

9. विनयपत्रिका – इसकी रचना 1850 ई. में हुई। सरस्वती कोष भाण्डार, रीवा में इसकी दो प्रतियाँ सुरक्षित हैं। ग्रन्थ क्रमांक- 5।67।1 खण्डित है और ग्रन्थ क्रमांक 85।636 सम्पूर्ण है। विनयपत्रिका सूर-तुलसी की पद शैली में रचित है। उदाहरण के रूप दो पद द्रष्टव्य हैं –

(1)

मोसो अब न कछु कहि जात।
रावरे की सरन तजि नहिं दूसरी दरसात।।

---

50. महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव : रघुराजविलास (1857 ई.), पृ. 58
51. तदेव, पृ. 61

रावरे को दास दीन विलोकि जगत हँसात।
नाथ अब 'रघुराज' को बिन बने नहिं बनात।।

(2)

ए हरि पतित पावन नाम।
गीध गनिका तार कै लीन्ह्यो सुजस बहुठाम।।
अब तार्‌यौ पतित को नहिं पाप को श्रीराम।
तारिवेे 'रघुराज' लीजै पाय पावन नाम।।

10. विनय प्रकाश – सरस्वती कोष भाण्डार रीवा में 5पत्रे की एक खण्डित प्रति उपलब्ध है।

11. चित्रकूट - अष्टक

12. चित्रकूट - महिमा

13. गंगाशतक चारों ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

14. यदुराजविलास (संदिग्ध)

(ग) अन्य ग्रन्थ

15. परमप्रबोध – यह एक नाट्यकृति है। इसकी एक खण्डित प्रति सरस्वती कोष भाण्डार, रीवा में उपलब्ध है, जिसका क्रमांक 5।68 है।

16. विष्णुसहस्त्रनाम – इस पद्यबद्ध रचना का प्रकाशन सन् 1868 ई. में बनारस से हुआ था।

17. भक्तिविलास – यह एक भक्तिविषयक लक्षण ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन सन् 1871 ई. में रीवा से हुआ था।

18. गद्यशतक – यह अनुपलब्ध है। वर्ण्य विषय भी ज्ञात नहीं है तथा संदिग्ध भी है।

19. तात्पर्य-दीपिका-वाल्मीकि-रामायण की हिन्दी टीका – इसकी पाण्डुलिपि नागरी प्रचारणी सभा के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह टीका ग्रन्थ संम्भवतः महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव के तात्पर्य – तरणि का हिन्दी अनुवाद है।

20. श्रीमद्भागवत माहात्म्य – इसकी पाण्डुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के संग्रहालय में ग्रन्थ क्रमांक 1903।18 के रूप में सुरक्षित है। यह पद्मपुराणान्तर्गत वर्णित भागवत माहात्म्य का भाषानुवाद है, जो विक्रमाब्द 1911, फाल्गुन कृष्ण 30, वृहस्पतिवार को पूर्ण हुआ था –

रुद्र खण्ड ससि संवतै, अमासुर गुरुवार।
मास फाल्गुन भागवत, भो महात्म्य अवतार।।

निश्चय ही महाराज रघुराज सिंह की साहित्य सम्पदा अमूल्य है। एक विशाल साम्राज्य की शासन व्यवस्था को संचालित करते हुए उन्होंने इतना कुछ लिखा –यह सोचकर आश्चर्य प्रतीत होता है।

विन्ध्य प्रान्त की वसुन्धरा अपनी उर्वर रचनाशीलता के लिए सदैव प्रसिद्ध रही है। इसी मेदिनी के अंक में प्रवाहिता तमसा के तट पर रामकथा ने अपने प्रथम लोचन खोले थे, जिसकी प्रवहणशीलता से भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व स्निग्ध है। इसी रामकथा के समानान्तर स्थापित रामभक्ति की रसिक परम्परा का भक्ति साधना के क्षेत्र में अपना अद्वितीय स्थान है। महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव कृष्णोपासक होते हुए भी रसिक परम्परा के रामभक्त थे। उनको रामभक्ति की रसिक परम्परा अपने पिता महाराजाधिराज विश्वनाथ सिंह जू देव से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। भक्तकवि रघुराज सिंह रीतिकाल की श्रृंगारी प्रवृत्ति और राजकीय ऐश्वर्य के बीच भक्ति की सरिता बहानेवाले राजराजर्षि थे। उनका योगदान राम–काव्य–परम्परा और कृष्ण–काव्य–परम्परा तथा प्रबन्ध–काव्य एवं मुक्तक–काव्य में समान रूप से है। हिन्दी की ही तरह संस्कृत भाषा भी उनकी प्रभागर्भा प्रतिभा से उपकृत हुई है। निश्चय ही जब तक इन दोनों भाषाओं का अस्तित्व संसार में रहेगा, तब तक महाराजाधिराज रघुराज सिंह जू देव की यशः चन्द्रिका साहित्येतिहास के निरभ्र नभमण्डल में अमृतवर्षा करती रहेगी। यह मात्र मेरा नहीं अनेक विद्वन्मनीषियों के मुक्तकण्ठ का उद्घोष है।

❑❑

महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह

भारतीय राजवंश का विद्यानुराग जगत्प्रसिद्ध है। भारत के विद्या-व्यसनी नरेशों ने साहित्य-संगीत और कला को केवल संरक्षित ही नहीं किया, अपितु पूरी निष्ठा के साथ स्वयं भी सृजनधर्म का पालन किया। रायबरेली ज़िले के शाहमऊ-टेकारी के प्रतिष्ठित ताल्लुक़ेदार बाबू गंगाबख़्श सिंह के अनुज महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह ऐसे ही सृजनधर्मी चेतना के आलोकपुंज थे। महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह शाहमऊ-टेकारी के गौरव थे। शाहमऊ-टेकारी का इतिहास तिलोई रियासत से सम्पृक्त है। तिलोई-नरेश वीरशिरोमणि राजा बलभद्र सिंह के निःसन्तान शहीद हो जाने के पश्चात् उनकी प्रथम रानी केश कुँवरि ने शाहमऊ के छत्रधारी सिंह को मुकुट पहनाकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। राजा छत्रधारी सिंह के तृतीय पुत्र बाबू जंगबहादुर सिंह को भगीरथपुर का ताल्लुक़ा मिला। सन् 1762 ई. में जन्में बाबू जंगबहादुर सिंह कट्टर हिन्दू ही नहीं, हिन्दी-संस्कृत के पक्षधर भी थे। अपने राज्यकार्य में अरबी और फ़ारसी भाषा का बिलकुल प्रयोग नहीं करते थे। अरबी-फ़ारसी के शब्दों का अपने मुख से उच्चारण भी नहीं करते थे। कालान्तर में हिन्दुत्व का ध्वज फहरानेवाले बाबू जंगबहादुर सिंह को सरकारी मालगुजारी जमा न करने का आरोप लगाकर फ़ैज़ाबाद की तत्कालीन बेगम के द्वारा क़ैद करा लिया गया। बेगम ने बाबू जंगबहादुर सिंह को केवल क़ैद ही नहीं करवाया, अपितु उनके ज्येष्ठ पुत्र बाबू विन्ध्यासेवक सिंह का सिर कटवा लिया। इतिहासकार श्री पवन बख़्शी लिखते हैं- 'जब वह सिर बेगम के सामने पेश किया गया तो बेगम ने आज्ञा देते हुए कहा कि इस सिर को ले जाओ और जंगबहादुर सिंह से पूछो कि यह किसका सिर है। हार्दिक दुःख पहुँचाने की पराकाष्ठा थी। जंगबहादुर सिंह को उनके पुत्र का कटा हुआ सिर दिखाकर उनसे पूछा गया कि यह किसका सिर है? जंगबहादुर सिंह ने सिर को पहचान कर स्वाभिमान के साथ कहा- 'किसी वीर पुरुष का सिर

होगा।' उन्होंने यह भी कहा कि 'हमारे वंश के एक वीर पुरुष राजा बलभद्र सिंह थे, जिन्होंने अपना सिर दे दिया था और यह दूसरा वीर पुरुष है, जिसने अपना सिर दे दिया। इसकी वीरता के लक्षण मुझे अब भी इसके मुस्कराते चेहरे पर दिख रहे हैं। धन्य है क्षत्रिय की वीरता! धन्य है उसकी सहनशक्ति! धन्य है उसका उत्साह!' यह उत्तर सुनते ही सब लोग दंग रह गये। जंगबहादुर सिंह की निर्भीकता देखकर बेगम ने यही निश्चय किया कि इन्हें कारागार में ही डाल देना चाहिए।'[1]

बाबू जंगबहादुर सिंह दस वर्ष तक कारागार में रहे। कालान्तर में उनके द्वितीय पुत्र बाबू रघुनाथ सिंह के चतुर्दश वर्षीय पुत्र बाबू सर्वजीत सिंह ने अपने पितामह को क़ैद से मुक्त कराने की पहल की। बेगम ने बाबू सर्वजीत सिंह को क़ैद कर लिया और बाबू जंगबहादुर सिंह को मुक्त कर दिया। बाबू जंगबहादुर सिंह ने शीघ्र ही रुपयों का प्रबन्ध करके मालगुजारी अदा की और अपने चतुर्दश वर्षीय पौत्र बाबू सर्वजीत सिंह को छुड़ाया। मालगुजारी न जमा करने के कारण जो रियासत छिन गयी थी, वह भी वापस हो गयी। ताल्लुक़े की सनद बाबू सर्वजीत सिंह को मिली और ये अवैतनिक मजिस्ट्रेट भी बनाये गये। बाबू सर्वजीत सिंह ने सन् 1857 ई. में आंग्ल-शासकों की बड़ी मदद की थी। इसलिए भगीरथपुर ताल्लुक़े की खूब वृद्धि हुई। अनेक ज़ब्त हुए ताल्लुक़े इसमें मिला दिये गये। शीघ्र ही यह ताल्लुक़ा शाहमऊ-टेकारी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

बाबू सर्वजीत सिंह के ज्येष्ठ पुत्र बाबू गंगाबख़्श सिंह का जन्म सन् 1853 ई. में एवं कनिष्ठ पुत्र बाबू रणबहादुर सिंह का जन्म सन् 1858 ई. में हुआ। बाबू गंगाबख़्श सिंह सन् 1888 ई. में शाहमऊ-टेकारी की गद्दी पर आरूढ़ हुए। बाबू रणबहादुर सिंह को 'बेरारा' नामक गाँव गुजारे में दिया गया। बाबू रणबहादुर सिंह को कोई सन्तान न थी। साहित्य-सृजन ही उनका मुख्य ध्येय था। 'कनपुरिया क्षत्रिय वंश' (इतिहास) और 'श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण' की टीका बाबू रणबहादुर सिंह की सारस्वत-साधना के स्थायी स्मारक हैं। महाराजकुमार

---

1. पवन बख़्शी : अवध के तालुक़दार : रूपा पब्लिकेशन्स् इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, 7/16, अंसारी रोड, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2012 ई., पृ. 428

बाबू रणबहादुर सिंह ने गोस्वामी तुलसीदास जी की 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' उक्ति का परीक्षण करने के लिए बड़े कठिन अध्यवसाय से इस टीका का प्रणयन किया है। महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह कृत 'श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण की नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका' के प्रत्येक काण्ड पृथक् पृथक् प्रकाशित हुए हैं। सर्वप्रथम 'सुन्दरकाण्ड' का प्रकाशन विजय दशमी विक्रमाब्द 1979 (1922 ई.) को हुआ। इसी क्रम में विक्रमाब्द 1979 (1922 ई.) में ही 'अरण्यकाण्ड' और 'किष्किन्धाकाण्ड' का प्रकाशन हुआ। तीन वर्ष के बाद चैत्र शुक्ल दुर्गाष्टमी विक्रमाब्द 1982 (1925 ई.) को 'अवधकाण्ड' प्रकाशित हुआ। 'अवधकाण्ड' प्रकाशित होने के पाँच वर्ष बाद मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी विक्रमाब्द 1987 (1930 ई.) को 'बालकाण्ड' और 'लंकाकाण्ड' प्रकाशित हुए। अन्त में चैत्र शुक्ल रामनवमी विक्रमाब्द 1988 (1931 ई.) को 'उत्तरकाण्ड' का प्रकाशन हुआ। महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह ने शाहमऊ-टेकारी रियासत से गुजारे में प्राप्त सीमित संसाधन से इस कार्य को अत्यन्त निष्ठापूर्वक पूर्ण किया है। डबल डिमाई साइज़ में बालकाण्ड 432 पृष्ठ में, अवधकाण्ड 348 पृष्ठ में, अरण्यकाण्ड 96 पृष्ठ में, किष्किन्धाकाण्ड 62 पृष्ठ में, लंकाकाण्ड 192 पृष्ठ में और उत्तरकाण्ड 182 पृष्ठ में मुद्रित है। इस टीका की रचना के उद्देश्य का उद्घाटन करते हुए महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह लिखते हैं- 'मैंने अनेक पुराणादि धर्मग्रन्थों में यही शिक्षा-रत्न पाया कि 'मनुष्य को सच्चरित्र होना चाहिए' इस अपने कथन में प्रमाण देना मानों पाठकों को अनभिज्ञ समझना है। क्योंकि आबालबृद्ध सभी सुचरित्र की सराहना करते हैं। जब यह निश्चित हुआ कि 'मनुष्य को सुचरित्र होना चाहिए' तो यह प्रश्न उठा कि सुचरित्र पुरुष संसार में कौन हुआ है जिसका अनुगमन अथवा अनुकरण करके हम सच्चरित्र बनें? प्रश्न के उठते ही उत्तर मिला कि 'रामचरित्र ही आदर्श रूप है' अतएव रामचरित्र देखने और समझने की इच्छा हुई। संस्कृत में अधिक अभ्यास न होने के कारण लोक में अधिक प्रचार को प्राप्त पूज्यपाद श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण देखने लगा। कहने में कुछ खेद होता है कि उस अवस्था में मुझे अनेक पण्डित मिले, जिन्होंने 'तुलसीदास की रामायण' में यह कहकर कि भाषा है, इसका क्या प्रमाण है अपनी अश्रद्धा प्रकट की। कुछ मेरा चित्त भी दोलायमान हुआ, परन्तु भगवत्कृपा से मेरे मन में यह बात उदय हुई कि तुलसीदासजी ने स्वयं कहा है कि नानापुराणनिगमागमसम्मतं यदित्यादि अर्थात् यह तो अनेक पुराण और

निगमागमसम्मत रामचरित्र है, इसके उदय होते ही अनेक प्रकार के परिश्रम और धनव्यय से मैंने तुलसीदासजी की उक्ति को नानापुराणनिगमागमसम्मत ही पाया।'[2]

महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह ने कठोर परिश्रम करके श्रीरामचरितमानस के मूलस्रोतों का उद्‌घाटन किया है। महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह कृत वैदुष्यपूर्ण टीका से सिद्ध होता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने निगमागमसम्मत और क्वचिदन्यतोऽपि रामचरितमानस की रचना करने के लिए 'बालकाण्ड' में 97 'अवधकाण्ड' में 161, 'अरण्यकाण्ड' 44, 'किष्किन्धाकाण्ड' में 71, 'सुन्दरकाण्ड' में 53, 'लंकाकाण्ड' में 32 एवं 'उत्तरकाण्ड' में 49 ग्रन्थों का मन्थन किया है।

आज़ादी के पूर्व शारदा-सदन रायबरेली से प्राप्त होनेवाली महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह कृत 'श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण' की इस टीका का साहित्य-जगत् में उतना प्रचार-प्रसार नहीं हो पाया, जितना होना चाहिए था। महात्मा अंजनीनन्दनशरण के 'मानसपीयूष' और स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती के 'मानस गूढ़ार्थ चन्द्रिका' की तरह ही उत्कृष्ट टीका होने के बाद भी बाबू रणबहादुर सिंह की इस टीका को न जाने क्यों हिन्दी-साहित्य के आलोचकों की उपेक्षा का दंश झेलना पड़ा। इतना ही नहीं इसके प्रकाशन के चालीस वर्ष बाद सन् 1971 ई. में अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी से आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचरितमानस' की मारुति टीका का प्रकाशन हुआ, जिसके मूल में यही टीका है। आज साहित्य-जगत् में आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी कृत श्रीरामचरितमानस की मारुति टीका तो प्रसिद्ध है, किन्तु बाबू रणबहादुर सिंह की टीका से बहुत कम लोगों का परिचय है।

आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने मारुति टीका की भूमिका में लिखा है- 'सम्पादकों, विद्वानों तथा मानस-मर्मज्ञों की इस सभा ने यह भी निश्चय किया कि गोस्वामीजी ने जिन जिन ग्रन्थों से सामग्री सँजोई है, उन ग्रन्थों के मूल स्रोत भी पाद-टिप्पणी में दिये जाँय जिससे रामायण के अध्येताओं को भी सुविधा हो और पाठ का शुद्ध अर्थ लगाने में भी सहायता मिले। यद्यपि सम्पादक-

---

2. बाबू रणबहादुर सिंह : श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण की नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका, सुन्दरकाण्ड की भूमिका, 1922 ई.

मण्डल ने यह भार स्वीकार तो कर लिया, तथापि पीछे चलकर यह ज्ञात होने लगा कि यह कार्य असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है। इसी बीच काशी के सार्वभौम संस्कृत-प्रचार कार्यालय के मन्त्री पण्डित वासुदेव द्विवेदी ने व्याकरणाचार्य श्रीबाबूलाल त्रिपाठी के पास से शाहमऊ-टिकारी के ताल्लुक़ेदार बाबू गंगावक्ष सिंह जी के अनुज बाबू रणबहादुर सिंह द्वारा 'अनेक कवि-कोविद' महात्माओं की सम्मति से तथा पण्डित मातृदत्तजी सोहगौर त्रिपाठी, पण्डित ललिताप्रसादजी ओझा, पण्डित दामोदरजी शर्मा, पण्डित रामपदार्थ सुकुलजी की सहायता से 27 वर्षों के सतत प्रयत्नों के उपरान्त वेदादि शास्त्रों के श्लोकों, प्रमाणों से प्रमाणीभूत श्लोकों के अर्थों और टिप्पणियों से 'अलंकृत' प्रकाशित संस्करण लाकर प्रस्तुत कर दिया जिससे यह कार्य सरल हो गया। उपर्युक्त ग्रन्थ में दिये हुए प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से स्रोतों से भी इस संस्करण में सम-भाव-बोधक श्लोक प्रस्तुत कर दिये गये हैं।'[3]

आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने बाबू रणबहादुर सिंह कृत इस टीका का उल्लेख करते हुए बाबू रणबहादुर सिंह की सारस्वत-साधना की अपेक्षा उनके सहयोगियों का उल्लेख करना ज़्यादा आवश्यक समझा। सहयोगियों की चर्चा में ज़्यादा रुचि होने के कारण आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने हड़बड़ी में बाबू रणबहादुर सिंह के ज्येष्ठ भ्राता का नाम बाबू गंगाबख़्श सिंह न लिखकर बाबू गंगावक्ष सिंह लिख दिया है। इतना ही नहीं उनके सहयोगियों में पण्डित मातृदत्तजी सोहगौर त्रिपाठी एवं पण्डित ललिताप्रसादजी ओझा के अतिरिक्त अपनी तरफ से पण्डित दामोदरजी शर्मा और पण्डित रामपदार्थ सुकुलजी का नाम भी जोड़ दिया है, जबकि महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह कृत टीका में पण्डित मातृदत्तजी और पण्डित ललिताप्रसादजी के अतिरिक्त अन्य किसी का नामोल्लेख नहीं है। यद्यपि आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने 'उपर्युक्त ग्रन्थ में दिये हुए प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से स्रोतों से भी इस संस्करण में सम-भाव-बोधक श्लोक प्रस्तुत कर दिये गये हैं' लिखकर अपनी टीका की श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, तथापि बाबू रणबहादुर सिंह के द्वारा दिये गये स्रोतों के अतिरिक्त अन्य स्रोत यहाँ दृग्गत नहीं होते।

---

3. आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी : श्रीरामचरितमानस : अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्रथम संस्करण 1971 ई., पृ. 12

महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह कृत टीका के उद्धरणों के विषय में आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी लिखते हैं- 'यह स्पष्ट कर देना नितान्त आवश्यक है कि उपर्युक्त शाहमऊ-टिकारीवाले संस्करण में जिन अनेक ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है और जिनके प्रमाण दिये गये हैं, उनमें से बहुत-से ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनका हमें दर्शन नहीं हो पाया और जो खोजने पर भी कहीं नहीं मिल पाये। इसलिए उनकी प्रामाणिकता का दायित्व पूर्णतः उपर्युक्त संस्करण पर ही है, किन्तु जहाँ तक प्रसिद्ध और सुलभ ग्रन्थों से प्राप्य उद्धरणों की बात है, वे पूर्णतः असन्दिग्ध हैं और उन्हें देखकर यह समझने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि गोस्वामी तुलसीदासजी कितने असाधारण दिग्गज विद्वान् थे, जिन्होंने सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय (साहित्य और दर्शन) को हृदयंगम कर डाला था और अत्यन्त कौशल के साथ उस सम्पूर्ण ज्ञान-राशि को रामचरितमानस में इस प्रकार लाकर जड़ दिया जैसे कोई कुशल जौहरी आभूषणों में अनेक नगीने जड़कर दोनों को एक-दूसरे का कीर्तिमान् पूरक बना देता है। कहीं भी यह आभास तक नहीं मिलता कि गोस्वामीजी ने इसमें अनेक स्थानों से सामग्री ला जुटाई है। यही उनकी वास्तविक कुशलता एवं महत्ता है और यह सम्पादन ही उनकी मौलिकता है।'[4]

वस्तुतः आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी के उपर्युक्त दोनों उद्धरण एक-दूसरे के विरोधी हैं। उन्होंने जहाँ पहले उद्धरण 'इसमें उपर्युक्त ग्रन्थ में दिये हुए प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से स्रोतों से भी इस संस्करण में सम-भाव-बोधक श्लोक प्रस्तुत कर दिये गये हैं', लिखकर अपने श्रम और स्वाध्याय का प्रतिपादन किया है, वहीं दूसरे उद्धरण में 'शाहमऊ-टिकारीवाले संस्करण में जिन अनेक ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है और जिनके प्रमाण दिये गये हैं, उनमें से बहुत-से ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनका हमें दर्शन नहीं हो पाया और जो खोजने पर भी कहीं नहीं मिल पाये। इसलिए उनकी प्रामाणिकता का दायित्व पूर्णतः उपर्युक्त संस्करण पर ही है' लिखकर अपने आपको उत्तरापेक्षी होने से मुक्त भी कर लिया है। महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह कृत श्रमसाध्य एवं व्ययसाध्य टीका का उचित मूल्यांकन न करना, उनकी सारस्वत-साधना को अपना बनाकर

---

4. आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी : तदेव, पृ. 12

प्रस्तुत कर देना आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी जैसे मूर्धन्य मनीषी की कीर्ति-कौमुदी को कलंकित करता है। 'मारुति टीका' की व्याख्या और वैदुष्यपूर्ण टिप्पणियाँ जहाँ आचार्य चतुर्वेदी के पाण्डित्य को प्रदर्शित करती हैं, वहीं बाबू रणबहादुर सिंह की सारस्वत-साधना को नींव में रखकर दिये सम-भाव-बोधक श्लोकों की अविच्छिन्न शृंखलाएँ पण्डित सीताराम जी की साहित्यिक शुचिता पर प्रश्नचिह्न भी लगाती हैं।

विश्व-वन्द्य गोस्वामीजी की वाग्विभूति और महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह की नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका एक-दूसरे की पूरक हैं। यहाँ गोस्वामीजी की कल्याणी वाणी और बाबू रणबहादुर सिंह की तत्त्वान्वेषिणी दृष्टि को कतिपय उद्धरणों से देखा जा सकता है-

(1)

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर वदन।
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।।

मुहूर्तवृन्दावने

जायन्ते सिद्धयो यस्य स्मरणात्स गजाननः।
कुर्यादनुग्रहं बुद्धिनाथः शुभगुणाकरः।।[5]

(2)

मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयालु, द्रवउ सकल कलिमल दहन।।

महाभारते

मूकं करोति वाचालं पठुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।।[6]

---

5. बाबू रणबहादुर सिंह : श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण की नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका, बालकाण्ड, 1930 ई., पृ. 8
6. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 9

(3)

नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।
करो सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन।।

नारदपञ्चरात्रे

नीलाम्बुतनुं दिव्यमरुणाम्बुजलोचनम्।
स्मरामि हृदि तं देवं क्षीरसागरशायिनम्।।[7]

(4)

कुन्द इन्दु सम देह, उमारमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करौ कृपा मर्दन मयन।।

उमासंहितायाम्

कुन्देन्दुकर्पूरतनुर्ह्युमेशः करुणार्णवः।
दीनस्नेहकरः कुर्यात्कृपां मदनमर्दनः।।[8]

(5)

बन्दौ गुरुपदकंज, कृपसिन्धु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रविकर निकर।।

जाबालिसंहितायाम्

वन्दे गुरुपदाब्जं यो नररूपः स्वयं हरिः।
यद्वाक्यसूर्योदयतस्तमो नश्यति साम्प्रम्।।[9]

(6)

बन्दौं गुरुपदपदुमपरागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।।
अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू।।
सुकृत शम्भुतन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।।
जन मन मंजु मुकुर मलहरनी। किये तिलक गुनगन वसकरनी।।

---

7. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 9
8. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 10
9. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 10

पुलस्त्यसंहितायाम्

गुरुपादरजो वन्दे चारुचूर्णं मलापहम्।
पुण्येशभूतिर्मङ्गल्यं मनोमुकुरमार्जकम्।।[10]

(7)

श्रीगुरुपदनख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्यदृष्टि हिय होती।।
दलन मोहतम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।

वसिष्ठपुराणे

गुरुपादनखज्योत्स्ना तमोहन्त्री प्रकाशिका।
ज्ञानरत्नसमूहस्या विद्यारात्रिविनाशिनी।।[11]

(8)

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भवरजनी के।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

पद्मपुराणे

गुरुपादनखज्योत्स्नास्मराद्धृदयलोचनम्।
गुप्तं च मणिमाणिक्यरूपं पश्यति केशवम्।।[12]

इसी तरह सम्पूर्ण मानस के सम-भाव-बोधक श्लोकों को ढूँढ़कर बाबू रणबहादुर सिंह ने अपनी नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका को अलंकृत किया है। इन्हीं श्लोकों को आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी ने अपनी 'मारुति टीका' में यथावत उद्धृत कर दिया है।[13]

वस्तुतः महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह ने श्रीरामचरितमानस की 'नानापुराणनिगमागमसम्मता टीका' तैयार करने के लिए 'कवि-कोविदों' की एक परिषद् बनाया था और उस परिषद् के सदस्यों के सम्पूर्ण पारिवारिक दायित्व का

---

10. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 11
11. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 11
12. बाबू रणबहादुर सिंह : तदेव, पृ. 12
13. आचार्य पण्डित सीताराम चतुर्वेदी : मारुति टीका, पृ. 3-4

निर्वहन स्वयं किया था। इस दायित्व-निर्वहन में शाहमऊ-टिकारी से गुजारे में प्राप्त 'बेरारा' गाँव भी बिक गया था। जिस कार्य को बाबू रणबहादुर सिंह ने अपने सीमित संसाधन के बल पर पूर्ण किया था, उसे आज की साहित्य अकादमियाँ वृहद् परियोजनाएँ बनाकर भी पूर्ण नहीं कर सकती हैं। भले ही आज महाराजकुमार बाबू रणबहादुर सिंह की सारस्वत-साधना उचित मूल्यांकन के अभाव में अन्धकाराच्छन्न हो गयी है, किन्तु विद्या कभी वन्ध्या नहीं होती। कभी-न-कभी किसी मल्लिनाथ की सहृदय दृष्टि उस पर अवश्य पड़ेगी और पुनः बाबू रणबहादुर सिंह की सारस्वत-साधना साहित्याम्बर के क्षितिज पर उदित होगी। निश्चय ही आज ऐसे आलोचकों की महती आवश्यकता है, जो नेपथ्य में पड़े साहित्य-देवताओं को प्रकाशित कर सके।

❑❑

राजा चक्रधर सिंह

भारत के विद्या–व्यसनी नरेशों की वृहत्तर परम्परा में राजा चक्रधर सिंह का नाम हेमाक्षरों में अंकित है। राजा चक्रधर सिंह का जन्म रायगढ़ के राजगोंड़ राजवंश में हुआ था। राजा चक्रधर सिंह के कारण रायगढ़ कला, संगीत, नृत्य और साहित्य के लिए पूरे भारत में विख्यात है। साहित्य और संगीत–जगत् के जाज्ज्वल्यमान नक्षत्र की तरह अपनी आभा से भारतीय मानचित्र पर रायगढ़ को स्थापित करनेवाले रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह ने जयपुर, बनारस और लखनऊ के कत्थक घरानों के समकक्ष 'रायगढ़ कत्थक घराने' का न केवल सृजन किया, अपितु कत्थक नृत्य की एक नूतन शैली विकसित कर 'संगीत सम्राट्' की उपाधि से विभूषित होकर छत्तीसगढ़ के दण्डाकरण्य को गौरवान्वित भी किया। राजा चक्रधर सिंह संगीतानुरागी और कला–पारखी तो थे ही, साथ ही एक अच्छे तबला–वादक और सितार–वादक भी थे। उन्होंने संगीत और साहित्य की दुर्लभ पुस्तकों का प्रणयन किया है। राजा चक्रधर सिंह ने पैतृक परम्परा से मनाये जा रहे 'गणेश मेला उत्सव' को साहित्य–संगीत और कला के अनुष्ठान का त्योहार बना दिया। उनके समय में इस उत्सव में साहित्य–संगीत और कला का अद्‌भुत समागम होता था। सुप्रसिद्ध साहित्यकार पण्डित शुकलाल पाण्डेय ने 'छत्तीसगढ़ गौरव' में रायगढ़ और राजा चक्रधर सिंह को परस्पर एक–दूसरे के पर्याय के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है–

महाराज हैं देव चक्रधर सिंह बड़भागी।
नृत्य वाद्य संगीत ग्रन्थ रचना अनुरागी।
केलो सरिता पुरीरायगढ़ की बन पायल।
बजती है अति मधुर मन्द स्वर से पल प्रतिपल।
जल कल है, सुन्दर महल है निशि में विपुल द्युति धवल।
है ग्राम रायगढ़ राज्य के, सुखी सम्पदा युत सकल ।।

राजा चक्रधर सिंह की स्मृति में छत्तीसगढ़ शासन द्वारा प्रतिवर्ष गणेश चतुर्थी से 'चक्रधर समारोह' का आयोजन किया जाता है। 1 जनवरी, 1948 ई. को ईस्टर्न स्टेट्स एजेन्सी की रायगढ़, धर्मजयगढ़, जशपुर, सारंगढ़ और सक्ती रियासत को मिलाकर रायगढ़ ज़िला बनाया गया था। इसके पूर्व रायगढ़ बिलासपुर ज़िले में था। कुँवर अभिनय सिंह राठौर के अनुसार सम्बलपुर के राजा ठाकुर दरियाव सिंह ने सन् 1625 ई. में राजगोंड़ वंश की आधारशिला रखी थी।[1] प्रो. अश्विनी केशरवानी ने रायगढ़ के राजवंश का परिचय देते हुए लिखा है- 'रायगढ़ रियासत के संस्थापक राजा मदनसिंह थे। बैरागढ़-चाँदा से बढ़ते हुए उन्होंने फूलझर राज्य पर कब्जा किया। आगे चलकर उनके वंशज फूलझर से बुनगा आये और राजा जुझार सिंह ने अपने राज्य का सदर मुकाम रायगढ़ को बनाया। रायगढ़ को सदर मुकाम बनाने के पीछे एक किंवदन्ती प्रचलित है। उसके अनुसार राजा जुझार सिंह एक बार शिकार करते हुए जब रायगढ़ के केलो नदी के किनारे पहुँचे। तब उनके साथ एक विचित्र घटना घटित हुई। अपने मन्त्री माँझी के साथ उचित जगह की तलाश करते जब वे घनघोर जंगल के बीच केलो नदी के तट पर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि केलो नदी के उस पार एक खरगोश शिकारी कुत्ते की ओर झपटा और शिकारी कुत्ता भागने लगा जैसे खरगोश न होकर भोर हो? इसी प्रकार नदी के इस पार शिकारी कुत्ता खरगोश की ओर झपटता लगता था। राजा बहुत देर तक शिकारी कुत्ते और खरगोश के खेल को देखता रहा फिर उन्होंने अपने मन्त्री माँझी से इसके बारे में पूछा। उन्होंने बताया कि यह वीरों की भूमि है। यहाँ हर कोई भोर की भाँति बलवान हो जाता है। गढ़-निर्माण के लिए इससे उपयुक्त स्थान दूसरा कहीं नहीं है। राजा ने मन्त्री की बात को मानकर यहाँ गढ़-निर्माण की स्वीकृति दे दी। भूमि-पूजन की विधि पूछने पर मन्त्री माँझी ने घुटने टेककर विधि बताने के लिए जैसे ही अपना सिर झुकाया, राजा ने दूरदर्शिता को ध्यान में रखकर अपने प्रिय मन्त्री माझी की बलि चढ़ा दी और भूमि-पूजन कर गढ़-निर्माण की आधार शिला रखी। आज भी इस स्थान पर मन्त्री माँझी की मूर्ति स्थापित कर उसका पूजन किया जाता है। इस क्षेत्र को

---

1. कुँवर अभिनय सिंह राठौर : http://www.indianrajputs.com/view/raigarh

'नवागढ़ी' कहा जाता है। आज इसके चारों ओर बस्ती बस गयी है। यह गढ़ पूरी तरह से सुरक्षित था। आगे चलकर यहाँ 'मोतीमहल' और 'बादलमहल' का निर्माण कराया गया।'[2]

राजा जुझार सिंह (1808-1832 ई.) ने रायगढ़ में गढ़ी का निर्माण-कार्य भले ही प्रारम्भ करा दिया, किन्तु वे यावज्जीवन बैरागढ़ के ही ज़मींदार रहे। राजा जुझार सिंह के पश्चात् राजा देवनाथ सिंह (1833-1862 ई.), राजा घनश्याम सिंह (1863-1890 ई.) एवं राजा भूपदेव सिंह बैरागढ़ की गद्दी पर आसीन हुए। 7 जून, 1890 ई. को राजा भूपदेव सिंह का राजतिलक हुआ और वे 1911 ई. तक बैरागढ़ के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। 1911 ई. में राजा भूपदेव सिंह रायगढ़ के प्रथम शासक हुए और 1917 ई. तक शासन किये। राजा भूपदेव सिंह के ज्येष्ठ पुत्र युवराज नटवर सिंह का जन्म 13 मार्च, 1891 ई. को एवं कनिष्ठ पुत्र राजकुमार चक्रधर सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1905 ई. को हुआ। पिता की मृत्यु के पश्चात् युवराज नटवर सिंह 22 मार्च, 1917 ई. को रायगढ़ के राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

राजा घनश्याम सिंह संगीत-प्रेमी ही नहीं, बल्कि संगीतकारों के पोषक और संरक्षक भी थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन साहित्यकार पण्डित मेदिनीप्रसाद पाण्डेय को उनकी साहित्यिक प्रतिभा से प्रसन्न होकर राजा भूपदेव सिंह ने दो गाँव क्रमशः टाँडापुर और परसापाली की मालगुजारी प्रदान किया था। इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है-

मध्यप्रदेश सुमधि यह देश ललाम।
रायगढ़ सुराजधानी विदित सुनाम।।
इहाँ अधिप श्री नृपसुर सिंह सुजान।
दान मान विधि जानत अति गुणमान।।
नारायण लिखि सिंह मिलावहु आनि।
तो नृप भ्राता नाम सुलीजै जानि।।

---

2. प्रो. अश्विनी केशरवानी : रायगढ़ और राजा चक्रधर सिंह : http://www.rachanakar.org/2007/07/blog-post_09.html?m=1

इनके गुण गण हौं कस करौं बख़ान।
विद्यामान सुपूरो तेज निधान।।
श्री नृपवर सिंह मुहिं दीन्हें यह दुदू ग्राम।
टाँडापुर इक परसापाली नाम।।

रायगढ़ में 'गणेश मेला उत्सव' का शुभारम्भ कब हुआ, इसका कोई लिखित साक्ष्य नहीं मिलता, परन्तु इस परम्परा को लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने का कार्य राजा भूपदेव सिंह के शासनकाल के में हुआ। पण्डित मेदिनीप्रसाद पाण्डेय ने 'गणपति उत्सव दर्पण' लिखा है। 20 पृष्ठ की इस प्रकाशित पुस्तिका में पाण्डेय जी ने गणेश उत्सव के अवसर पर होनेवाले कार्यक्रमों का छन्दोबद्ध विवरण प्रस्तुत किया है। गणेश चतुर्थी की तिथि तब स्थायी हो गयी जब कुँवर चक्रधर सिंह का जन्म गणेश चतुर्थी को हुआ। बालक चक्रधर सिंह के जन्म को चिरस्थायी बनाने के लिए 'चक्रधर पुस्तक माला' के प्रकाशन की शुरुआत हुई। इस पुस्तक माला के अन्तर्गत पण्डित पुरुषोत्तम प्रसाद पाण्डेय के कुशल सम्पादन में पण्डित अनन्तराम पाण्डेय की रचनाओं का संग्रह 'अनन्त लेखावली' के रूप में नटवर प्रेस रायगढ़ से प्रकाशित किया गया था। कहते हैं रायगढ़ रियासत के राजा जुझार सिंह ने अपने शौर्य और पराक्रम से राज्य को सुदृढ़ किया, राजा भूपदेव सिंह ने उसे श्रीसम्पन्न किया और राजा चक्रधर सिंह ने उसे साहित्य-संगीत और नृत्यकला की त्रिवेणी में आस्नात् कराकर अमरत्व प्रदान किया।

रायगढ़ राजदरबार को संगीत, नृत्य और कला के क्षेत्र में ख्याति यहाँ बरसों से आयोजित होनेवाले गणेश मेला उत्सव में मिली। बाद में यह जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाने लगा। क्योंकि इसी दिन रायगढ़-नरेश राजा भूपदेव सिंह के द्वितीय पुत्र रत्न के रूप में चक्रधर सिंह का जन्म हुआ। वे तीन भाई क्रमशः श्री नटवर सिंह, श्री चक्रधर सिंह और श्री बलभद्र सिंह थे। चक्रधर सिंह को सभी नान्हे महाराज कहते थे। उनका लालन-पालन रायगढ़ रियासत के संगीतमय और साहित्यिक वातावरण में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा रायगढ़ के मोती महल में हुई। आठ वर्ष की आयु में सन् 1914 ई. में उन्हें रायपुर के राजकुमार कॉलेज में दाखिल कराया गया। नौ वर्ष तक वहाँ के कड़े अनुशासन में विद्याध्ययन करने के बाद सन् 1923 ई. में प्रशासनिक दक्षता का प्रशिक्षण लेने के लिए छिंदवाड़ा चले गये। कुशलतापूर्वक प्रशासनिक दक्षता का प्रशिक्षण पूरा करके

रायगढ़ लौटने पर चक्रधर सिंह का विवाह बिन्द्रानवागढ़ के ज़मींदार की बहन दिश्वरीमती देवी से हुआ, जिनसे श्री ललितकुमार सिंह, श्री भानुप्रताप सिंह, मोहिनी देवी और गन्धर्वकुमारी देवी का जन्म हुआ। 15 फ़रवरी 1924 ई. को राजा नटवर सिंह की निःसन्तान मृत्यु हो गयी। इसलिए रानी साहिबा ने चक्रधर सिंह को गोद ले लिया। इस प्रकार कुँवर चक्रधर सिंह रायगढ़ रियासत की गद्दी पर आसीन हुए। 4 मार्च, सन् 1929 ई. में सारंगढ़ के राजा जवाहिर सिंह की पुत्री कुमारी वसन्तमाला से राजा चक्रधर सिंह का दूसरा विवाह हुआ, जिनसे 14 सितम्बर, 1932 ई. को कुँवर सुरेन्द्रकुमार सिंह का जन्म हुआ। रानी वसन्तमाला का देहान्त हो जाने पर राजा चक्रधर सिंह ने कवर्धा के राजा धर्मराज सिंह की बहन से तीसरा विवाह किया जिनसे कोई सन्तान नहीं हुई।

राजा बनने के बाद चक्रधर सिंह राजकीय कार्यों के अतिरिक्त अपना अधिकांश समय साहित्य-संगीत और नृत्यकला की साधना में व्यतीत करने लगे। वे एक उत्कृष्ट तबला-वादक, कला-पारखी और संगीत-प्रेमी ही नहीं एक अच्छे साहित्यकार भी थे। उन्होंने जहाँ संगीत के अद्वितीय ग्रन्थ रचे, वहीं दर्जन भर हिन्दी-उर्दू काव्य तथा उपन्यास आदि का प्रणयन किये। उनके दरबार में केवल कलारत्न ही नहीं बल्कि साहित्यरत्न भी थे। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री भगवतीचरण वर्मा, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' और पण्डित जानकीवल्लभ शास्त्री को यहाँ अपनी साहित्यिक प्रतिभा दिख़ाने और पुरस्कृत होने का सौभाग्य मिला है। पण्डित अनन्तराम पाण्डेय, पण्डित मेदिनीप्रसाद पाण्डेय, पण्डित पुरुषोत्तमप्रसाद पाण्डेय, पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय, डॉ. बल्देवप्रसाद मिश्र और पद्मश्री पण्डित मुकुटधर पाण्डेय आदि की प्रतिभा का सूर्योदय रायगढ़ दरबार में ही हुआ है।

इन्हीं साहित्यकारों के उज्ज्वल कर्तृत्व के कारण रायगढ़-अंचल एवं दण्डकारण्य की कीर्ति-कौमुदी राष्ट्रीय धरातल पर विद्यमान है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. बल्देवप्रसाद मिश्र रायगढ़ दरबार में दीवान रहे। श्री आनन्दमोहन बाजपेयी जहाँ राजा चक्रधर सिंह के निजी सचिव थे, वहीं आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पथ प्रदर्शक थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सान्निध्य में राजा चक्रधर सिंह ने अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया। 'बैरागढ़िया राजकुमार', 'अल्कापुरी', 'मायाचक्र' प्रभृति उपन्यासों में राजा चक्रधर सिंह की वर्णन-क्षमता देखते बनती है। राजा चक्रधर सिंह ने 'रम्यरास', 'रत्नहार' एवं 'रत्नमंजूषा' नामक हिन्दी-

काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन करके अपनी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया। राजा चक्रधर सिंह हिन्दी के साथ साथ ब्रजभाषा और उर्दू में भी काव्य-रचना करते थे। उनकी ब्रजभाषा कविताओं का संग्रह 'काव्य-कानन' आज भी ब्रजभाषा-प्रेमियों के बीच सत्कृत है। 'जोशे फरहत' और 'निगारे फरहत' नामक संग्रह उर्दू-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। चित्तौड़ के गौरव महाराणा कुम्भा की तरह राजा चक्रधर सिंह की प्रतिभा का भव्य आकाश साहित्य और संगीत के अक्षय नक्षत्रों से सुशोभित है। 'नर्तनसर्वस्वम्', 'तालतोयनिधि', 'रागरत्नमंजूषा', 'मुरजपरनपुष्पाकर' प्रभृति कृतियाँ राजा चक्रधर सिंह के संगीत-ज्ञान की स्थायी स्मारक हैं।

जयपुर घराने के पण्डित जगन्नाथप्रसाद पहले गुरु थे जिन्होंने रायगढ़ दरबार में रहकर राजा चक्रधर सिंह को तीन वर्ष तक कत्थक नृत्य की शिक्षा दी। तत्पश्चात् पण्डित जयलाल सन् 1930 ई. में रायगढ़ आये और राजा चक्रधर सिंह के मृत्यु पर्यन्त रहे। कत्थक के प्रख्यात् गुरु और लखनऊ घराने के गौरव पण्डित कालिकाप्रसाद के तीनों पुत्र अच्छन महाराज, लच्छू महाराज और शम्भू महाराज कई वर्ष तक रायगढ़ में रहे। बिन्दादीन महाराज के शिष्य सीताराम जी भी रायगढ़ दरबार में रहे। उस्ताद कादर बख़्श, अहमद जान थिरकवा जैसे सुप्रसिद्ध तबला-वादक रायगढ़ दरबार को अलंकृत करते रहे हैं। इनके अतिरिक्त मुनीर ख़ां, जमाल ख़ां, करामत ख़ां और सादिक हुसैन आदि भी तबले की शिक्षा देने रायगढ़ दरबार में आते रहे हैं। कत्थक-गायन के लिए हाजी मोहम्मद, अनाथ बोस, नन्हें बाबू, धन्नू मिश्रा और नासिर ख़ां भी रायगढ़ दरबार में रहे हैं। राजा बहादुर चक्रधर सिंह समय समय पर अपने दरबार में देश-विदेश के चोटी के निष्णात कलाकारों और साहित्यकारों को आमन्त्रित करते रहे हैं, जिनके कुशल निर्देशन में रायगढ़ के अनेक बाल कलाकारों को संगीत, नृत्यकला और तबला-वादन की शिक्षा मिली, जिन्होंने कालान्तर में देश-विदेश में रायगढ़ दरबार की यशश्चन्द्रिका को प्रसृत किया। रायगढ़ दरबार के ऐसे ख्यातिनाम संगीतकारों में कार्तिकराम, कल्याणदास, फिरतूदास और बर्मनलाल की जोड़ी प्रसिद्ध है। वस्तुतः राजा चक्रधर सिंह जहाँ साहित्य-जगत् को अपनी मनोहर काव्य-रचनाओं से विभूषित करते हैं, वहीं संगीत-जगत् को 'रायगढ़ घराने' का उपहार भी प्रदान करते हैं।

राजा चक्रधर सिंह 'चक्रप्रिया' उपनाम से हिन्दी-काव्य और 'फरहत' उपनाम से उर्दू-काव्य की रचना करते थे। 'चक्रप्रिया' के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए राजा चक्रधर सिंह लिखते हैं-

लौ लगी जिनसे मेरी वो चक्रप्रिया आते नहीं
कोई कह दो कि प्रीतम आये हुए हैं
नैना दरशन को ललचाये हुए हैं
कहना माने नहीं अकुलाये हुए हैं।

डॉ. ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श' के अनुसार- 'मध्यप्रदेश में विन्ध्यप्रदेश के पच्चीसों राजाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने उच्चकोटि की काव्य-रचना की है। मध्यकाल में इन नरेश-कवियों ने भक्ति और रीतिकालीन काव्यधारा को पुष्ट किया है। इनमें रायगढ़ के कला-मर्मज्ञ राजा चक्रधर सिंह का नाम अग्रगण्य है। वे आधुनिक युग के कवि, शायर और सुलेखक थे।' कवि के रूप में राजा चक्रधर सिंह का वंशस्थ वृत्त में लिखा गया 'रम्यरास' ग्रन्थ आज भी काव्यप्रेमियों के पास सुरक्षित है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला का सरस वर्णन किया गया है। 'रम्यरास' की रचना-शैली पर कवि सम्राट् अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' का स्पष्ट प्रभाव दृग्गत होता है-

मुखेद की स्निग्ध, सुधा समेत थी
लिखी हुई विश्वविभूति-सी लिये।
शरन्निशा सुन्दर सुन्दरी समा,
अभिन्न संयोग-वियोग योगिनी।।

विशुद्ध शान्ति स्फुट थी प्रभामयी
ख़डा हुआ उर्ध्व नभ प्रदेश में।
मृगांक रेखा वपु में प्रसार के
द्विजेश था कानन-सा नरेश का।।

राजा चक्रधर सिंह ने सहज भाव से अपनी कविता में वर्णवृत्त और तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है। उनकी भाषा सहजतः अलंकारिक है-

शशांक-सा आनन कान्त शान्त था,
निरभ्र आकाश समान देह थी।

शरन्निशा में लसते ब्रजेश थे
शरच्छया के नर मूर्तरूप से।।
सजे हुए थे शिखिपंख केश में
तड़ित्प्रभा-सा पट पीत था लसा।
गले लगी थी वनमाल सोहती
ब्रजेश वर्षा छविधाम थे बने।।

डॉ. ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श' ने राजा चक्रधर सिंह को द्विवेदीयुगीन प्रमुख प्रबन्धकाव्य रचयिताओं में से एक माना है। उनका 'रम्यरास' नामक प्रबन्धकाव्य नागपुर विश्वविद्यालय में एम. ए. के पाठ्यक्रम के लिए स्वीकृत है। राजा चक्रधर सिंह की उर्दू-ग़ज़लों के दो संग्रह 'जोशे फरहत' और 'निगारे फरहत' देवनागरी लिपि में प्रकाशित हैं। 'निगारे फरहत' की भूमिका हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री भगवतीचरण वर्मा ने लिखी है। 'जोशे फरहत' सन् 1932 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें 178 ग़ज़ल संगृहीत हैं। राजा चक्रधर सिंह की उर्दू-कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

खालिक ने ये दिन हमको दिखाया है जो फरहत।
आँखों में समा और समाया है जो फरहत।
गुलशन का तमाशा नज़र आया है जो फरहत।
फिर मोस में गुलज़ोश पे' आया है जो फरहत।
क्योंकर वा अनादिल को ये मस्ताना बना दे।।

राजा चक्रधर सिंह की ग़ज़लों में मुहावरेदारी और बन्दिशें काबिले तारीफ हैं-

मिल के क़तरा भी दरिया से दरिया बना
हक़ से बन्दा भी मिलाके ख़ुदा हो गया।

एक ग़ज़ल की चन्द पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

राज़े दिल आज उनको सुनायेंगे हम।
राज़ उल्फत की उनको दिखायेंगे हम।
रूठ जायेंगे गर वो मनाकर उन्हें,
अपने पहलू में लाकर बिठायेंगे हम।।

राजा चक्रधर सिंह साहित्य-जगत् की विशिष्ट विभूति होने के साथ साथ संगीत-जगत् के जाज्ज्वल्यमान नक्षत्र भी थे। एक उत्कृष्ट तबला और सितार-वादक तथा विलक्षण ताण्डव नर्तक के रूप में राजा चक्रधर सिंह की कीर्ति-कौमुदी अमर है। साहित्य-संगीत और नृत्यकला के आयोजनों में राजा चक्रधर सिंह ने अपार धनराशि व्यय किया, जिसके कारण उन्हें 'कोर्ट ऑफ़ वाड्र्स' के अधीन रहना पड़ा। अनेक संगीत सम्मेलनों, साहित्यिक समितियों और कला मण्डलियों को राजा चक्रधर सिंह गुप्तदान दिया करते थे। सन् 1936 ई. और 1939 ई. में इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन के वे सभापति चुने गये थे। लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में दतिया-नरेश ने राजा चक्रधर सिंह को 'संगीत सम्राट्' की उपाधि से सम्मानित किया था। ऐसे कला-साधक और साहित्य-मनीषी राजा चक्रधर सिंह का 7 अक्टूबर, 1947 ई. को मात्र 42 वर्ष की अल्पायु में निधन हो गया। उनके निधन से भारतीय साहित्य और संगीत का एक अद्वितीय नक्षत्र असमय ही अस्त हो गया, लेकिन जब जब साहित्य-संगीत और नृत्यकला की चर्चा होगी, तब तब उन्हें याद किया जायेगा। राजसी ऐश्वर्य, भोग-विलास और झूठी प्रतिष्ठा की लालसा से दूर रहकर राजा चक्रधर सिंह ने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य-संगीत और नृत्यकला को समर्पित कर दिया। लोकतन्त्र के इतिहास में बहुत-सी रियासतें इतिहास के पन्नों में क़ैद होकर गुमनामी के अँधेरे में खो गयीं, लेकिन रायगढ़ रियासत के राजा चक्रधर सिंह का नाम साहित्य-संगीत और कला के क्षेत्र में असाधारण योगदान के लिए हेमाक्षरों में अंकित है।

❑❑